

नारदीयशिक्षा

शिक्षाविवेचन्याख्यया संस्कृतव्याख्यया
...रायणाख्यया' हिन्दीव्याख्यया विविधैः परिशिष्टैश्च सहिता

व्याख्याकारः
शिवराज आचार्यः कौडिन्न्यायनः

प्रकाशक

चौखम्बा विद्याभवन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

चौक (बनारस स्टेट बैंक भवन के पीछे)

पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001

दूरभाष : 420404

पुनर्मुद्रित संस्करण 2002 ई.

मूल्य : 150.00

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर

पो. बा. नं. 2113

दिल्ली 110007

दूरभाष : 3956391

❖

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन

पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001

दूरभाष : 335263, 333431

विषयानुक्रमणिका

भूमिकायाम्

नारदीयशिक्षागद्यपद्यसूत्रविषयानुक्रमणिका

(तत्तद्विषयप्रतिपादकगद्यपद्यसूत्रसङ्ख्यानिर्देशयुता)

परिशिष्टानि

भूमिका

१. शिक्षाशास्त्र का सामान्य परिचय

वेदाङ्गों में पहला अङ्ग शिक्षा है। उसी को हम यहाँ **शिक्षाशास्त्र** कह रहे हैं। शिक्षाशब्द में शास्त्रशब्द जोडकर शिक्षाशास्त्र कहा जाता है। जैसे व्याकरण-शास्त्र छन्दश्शास्त्र ज्योतिषशास्त्र इत्यादि व्यवहार हो सकता है वैसे ही शिक्षा-शास्त्रशब्द का भी व्यवहार हो सकता है। आजकल शिक्षाशास्त्र कहने से लोग शिक्षणविधिसम्बन्धी शास्त्र समझते हैं। इस को अङ्ग्रेजी के एजुकेशन (Education) शब्द का अनुवाद मानते हैं। किन्तु हमारी मौलिक परम्परा को ध्यान में रखकर शिक्षाशास्त्र नाम हमारे परम्पराऽऽगत शिक्षारूप शास्त्र के लिए सुरक्षित रखकर शिक्षणविधिसम्बन्धी प्रचलित शास्त्र को **शिक्षणशास्त्र** कहना उचित है।

वेदाङ्ग छह माने जाते हैं। उन का क्रमबद्ध और प्राचीनतम उल्लेख अथर्ववेदियों के मुण्डकोपनिषद् में है। यथा–

तस्मै स होवाच- द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवाऽपरा च। तत्राऽपरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः *शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति।* अथ परा यया तदक्षरमभिगम्यते। (१।१।४-५)।

आपस्तम्बधर्मसूत्र में भी सभी वेदाङ्गों का उल्लेख है। किन्तु वहाँ क्रम में और नाम में कुछ भेद है। यथा–

षडङ्गो वेदः, छन्दःकल्पो व्याकरणं ज्योतिषं निरुक्तं शीक्षा च्छन्दो-विचितिरिति। (२।४।१।१०,११)।

यहाँ छन्दःकल्प का अर्थ वेदकल्प अर्थात् श्रौतसूत्रादिशास्त्र है। मुण्डको-पनिषद् का कल्प ही यहाँ का छन्दःकल्प है। शीक्षा का इकार का दीर्घत्व तैत्तिरीयोपनिषद् के प्रयोग का अनुरूप है। छन्दोविचिति का अर्थ छन्दःशास्त्र ही है। छन्दोविचितिशब्द का प्रयोग अन्य ग्रन्थों में भी मिलता है।

इन छह वेदाङ्गों की गणना स्मृति-पुराणों में भी मिलती है।

वेदाङ्गशास्त्र सभी ही वस्तुतः मुनियों के द्वारा वेदों से ही उद्धृत किए हुए माने जाते हैं। इस बात को आस्तिक वैदिकशिरोमणि कुमारिलभट्ट ने भी व्यक्त किया है। यथा–

वेदे व्याकरणादीनि सन्त्येवाऽऽभ्यन्तराणि नः।
भवेद् वा तदभिप्राया षडङ्गाध्ययनस्मृतिः॥

(तन्त्रवार्तिक १।३।२४, आनन्दाश्रमसंस्करण, पृ.१९८)

इस बात को ऋग्वेदप्रातिशाख्य के वर्गद्वय की वृत्ति में विष्णुमित्र ने स्पष्ट रूप में लिखा है। यथा–

यस्मात् केवलैर् वेदवाक्यैर् न शक्यतेऽनुष्ठातुं विक्षिप्तत्वाद् वेदवाक्यानां गूढार्थत्वाच्च, अतः कविभिराद्यैर् वेदार्थकुशलैर् वेदार्थेभ्यो निष्कृष्य कर्मार्थं सुबोधानीमानि विद्यास्थानानि प्रवर्तितानि शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषं धर्मशास्त्रं पुराणं न्यायविस्तरो मीमांसादीनि। (१।४)।

पाणिनीयशिक्षा की शिक्षाप्रकाशनामक व्याख्या में भी उक्त बात बताई गई है। यथा–

वैदिकधर्मानुष्ठानात् पुरुषो निश्श्रेयसार्थफलवान् इत्येष वैदिकः सिद्धान्तः। अतिगूढार्थस्य वेदस्याऽज्ञानान् नाऽनुष्ठातुं शक्यो वेदमार्गः। अतः साक्षात्कृतधर्मभिर् वेदार्थेभ्यो निष्कृष्य अर्थार्थिसुखबोधाय विद्यास्थानानि प्रवर्तितानि। (श्लो.१)।

स्वयं वेदों को समझने में असमर्थ लोगों के उपकार के लिए उन को वेद के स्वरूप, प्रयोग, अर्थ और रहस्य तक अच्छी तरह पहुचाने के हेतु ही मुनियों ने ये वेदाङ्गरूप सोपान बनाए हैं। यह बात यास्कमुनिकृत निरुक्तग्रन्थ में आए हुए कथन से स्पष्ट रूप में अवगत होती है। यथा–

साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः, तेऽसाक्षात्कृतधर्मभ्योऽवरेभ्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादुः, उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषुर् वेदं च वेदाङ्गानि च। (१।६।४)।

उक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि वेदाङ्ग छह हैं, और वे हैं (१) शिक्षा, (२) कल्प, (३) व्याकरण, (४) निरुक्त, (५) छन्दश्शास्त्र और (६) ज्योतिष।

इन वेदाङ्गों को परम्परागत रूप में वेदपुरुष के किसकिस अङ्ग के रूप में देखा जाता है, इस विषय में अधोनिर्दिष्ट प्रतिसंस्कृत पद्य याद करने लायक हैं–

शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य हस्तौ *कल्पस्* तु पठ्यते।
मुखं *व्याकरणं* प्रोक्तं *निरुक्तं* श्रोत्रमुच्यते॥
छन्दः पादौ तु वेदस्य *ज्योतिषं* चक्षुरिष्यते।
अतोऽधीत्य श्रुतिं साङ्गां ब्रह्मलोके महीयते॥

(द्रष्टव्य– पाणिनीयशिक्षा, श्लो.४१,४२)।

मुण्डकोपनिषद् के उल्लेख से स्पष्ट है कि मूल वैदिक परम्परा में शिक्षा को वेद का प्रथम अङ्ग माना जाता है। वेद वर्णराशिरूप हैं। वर्ण वेद के सब से छोटे और प्रारम्भिक अवयव हैं। शिक्षा का मुख्य विषय वर्णों का उच्चारण है। अतः शिक्षा का वेदाङ्गों में प्रथम होना स्वाभाविक है।

शिक्षा व्याकरण से भी पूर्व आवश्यक होती है। इस बात को पाणिनीय-व्याकरण के भाष्यकार पतञ्जलि मुनि ने भी स्वीकारा है। वे कहते हैं– **"व्याकरणं नामेयमुत्तरा विद्या। सोऽसौ छन्दश्शास्त्रेष्वभिविनीत उपलब्ध्याऽवगन्तुमुत्सहते"** (१।२।३२)। यहाँ **"छन्दश्शास्त्रेषु"** इस पद का अर्थ नागोजिभट्ट ने **"प्रातिशाख्य-शिक्षादिषु"** कहकर स्पष्ट किया है। दूसरी अनेक उपपत्तियों से भी शिक्षाशास्त्र व्याकरण से पहले आने वाला शास्त्र माना जा सकता है। इस विषय में उपपत्ति **कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा** के उपबन्ध में (पृ.६-८) और शिक्षापरिभाषाप्रकरण में (पृ.९०-९१) दी गई है। जिज्ञासु पाठक वहीं देखें। कौण्डिन्न्यायनशिक्षानामक ग्रन्थ प्रातिशाख्यादि सम्पूर्ण वेदाङ्गशिक्षाग्रन्थों का सारसङ्ग्रह और समीक्षा से तथा शिक्षा के परिपुष्ट सभी अङ्गों से युक्त और ३ हजार वर्षों के संस्कृतवाङ्मय के इतिहास में अपूर्व और विपुलतमकाय वेदाङ्गशिक्षाग्रन्थ है। वह मुद्रित ग्रन्थ वाराणसी में काशीविश्वनाथपुस्तकालय (गोयनकापुस्तकालय), सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालय-पुस्तकालय, काशीविद्यापीठपुस्तकालय, काशीहिन्दूविश्वविद्यालयपुस्तकालय; प्रयाग में गङ्गानाथ झा केन्द्रीय संस्कृतविद्यापीठपुस्तकालय, दिल्ली में राष्ट्रिय-संस्कृत-संस्थानपुस्तकालय, श्रीलालबहादुरशास्त्रिसंस्कृतविद्यापीठपुस्तकालय, कोलकाता में भारतीयभाषापरिषत्पुस्तकालय इत्यादि पुस्तकालयों में उपलब्ध है।

२. शिक्षाशास्त्र का लक्षण

विद्वानों ने अपने अपने ढङ्ग से शिक्षाशास्त्र के लक्षण बताएँ हैं। तैत्तिरीयोपनिषद् के **"अथ शीक्षां व्याख्यास्यामः"** इस वचन के व्याख्या में शङ्करभगवत्पाद

ने "**शिक्षा शिक्ष्यतेऽनयेति वर्णाद्युच्चारणलक्षणम्**" कहा है। काव्यमीमांसा के द्वितीयाध्याय में राजशेखर ने "**वर्णानां स्थानकरणप्रयत्नादिभिर् निष्पत्तिनिर्णयिनी शिक्षा आपिशलीयादिका**" ऐसा कहा है। हरदत्त ने आपस्तम्बधर्मसूत्र की व्याख्या 'उज्ज्वला वृत्ति' में "**शीक्षा वर्णानां स्थानप्रयत्नादिकमध्ययनकाले कर्मणि च मन्त्राणामुच्चारणप्रकारं शिक्षयतीति, पृषोदरादित्वाद् दीर्घः**" ऐसा शिक्षालक्षण बताया है। सायण ने ऋग्वेदभाष्यभूमिका में "**वर्णस्वराद्युच्चारणप्रकारो यत्रोपदिश्यते सा शिक्षा**" ऐसा बोला है। पाणिनीयशिक्षा की पञ्जिका व्याख्या में "**शिक्ष्यतेऽनया वर्णोच्चारणमिति**" (श्लो.१) ऐसा कहा गया है। पाणिनीयशिक्षा की ही शिक्षाप्रकाश व्याख्या में "**शिक्षा स्वरवर्णोच्चारकं शास्त्रम्**" ऐसा और "**शिक्ष्यतेऽनया बालेभ्यो ह्रस्वदीर्घप्लुतोदात्ताऽनुदात्तस्वरितोरःकण्ठशिरोजिह्वामूलदन्तनासौष्ठस्थानानि (सा शिक्षा)**" ऐसा शिक्षालक्षण प्रतिपादित देखा जाता है। शुक्रनीतिसार में "**स्वरतः कालतः स्थानात् प्रयत्नानुप्रदानतः। सवनाद्यैश्च सा शिक्षा वर्णानां पाठशिक्षणात्**" ऐसा शिक्षालक्षण बताया गया है। किन्तु तैत्तिरीयोपनिषद् के "**अथ शीक्षां व्याख्या-स्यामः। वर्णः स्वरः। मात्रा बलम्। साम सन्तानः। इत्युक्तः शीक्षाध्यायः**" इस कथन के अनुसार ही शिक्षा का लक्षण बताना और समझना उत्तम है। तदनुसार *'जिस शास्त्र में अकारादि वर्ण, उदात्तादि स्वर, ह्रस्वदीर्घादि मात्रा, स्थान-करण-प्रयत्ना-ऽनुप्रदानरूप बल, उच्चारणमाधुर्यादिरूप साम, और वर्ण-प्रश्लेष-विकार-लोपा-ऽऽगमादिरूप पदसन्धि और तत्सम्बद्ध अन्य विषय निरूपित होते हैं, वह शास्त्र शिक्षा वा शिक्षाशास्त्र है'* यह शिक्षा का लक्षण परिपूर्ण और समुचिततम लक्षण है। इसी बात को कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा में अधोलिखित रूप में कहा गया है–

वर्णानां च स्वराणां च मात्राया बलसाम्ययोः।
पदान्ताद्योः संहिताया विचारो यत्र लभ्यते॥
तत्सम्बद्धाश् चाऽपरेऽपि विषया यत्र वर्णिताः।
भवन्ति सा हि प्रथमा विद्या शिक्षेति भाषिता॥

(उपक्रमाध्याय, श्लो. २,३)।

३. शिक्षाशास्त्र का प्रयोजन

शिक्षा वा शिक्षाशास्त्र का मुख्य प्रयोजन वेद की उच्चारणशुद्धि की रक्षा करना, यज्ञादि में वेदमन्त्रों का शुद्ध उच्चारण करने के लिए वेदाध्येताओं को समर्थ बनाना और मन्त्रों का यथोक्त फलदायित्व सुरक्षित करना है। यह बात

पाणिनीयशिक्षा में (श्लो.५२), चारायणीयशिक्षा में (४।१), प्रस्तुत नारदीयशिक्षा में (१।१।५) और पाणिनीयव्याकरणभाष्य (पस्पशाह्निक) में भी आए हुए अधोलिखित वचन से स्पष्ट होती है--

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥

लौकिकसंस्कृतवाङ्मय के सामान्य प्रेमियों के लिए संस्कृतभाषा का शुद्ध आदर्श उच्चारण सिखाना और भाषाशास्त्रियों के लिए वैदिक लौकिक संस्कृतभाषा तथा प्राकृतभाषा और अपभ्रंशभाषाओं के वर्णों का मौलिक यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने में साहाय्य करना भी शिक्षाशास्त्र का प्रयोजन माना जा सकता है।

४. शिक्षाशास्त्र का उद्भव और विकास

भारतवर्ष में सभी विद्याओं के मूल उद्भवस्थान वेद भगवान् ही माने जाते हैं। वेद के मन्त्रसंहिता और ब्राह्मण दो प्रधान विभाग हैं। मन्त्रसंहिता में मन्त्रों का सङ्ग्रह है। ब्राह्मण में कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड हैं। कर्मकाण्डभाग का विशेष नाम नहीं है, उस को ब्राह्मण ही कहते हैं। ज्ञानकाण्ड को आरण्यक वा उपनिषद् कहते हैं। कहीं आरण्यक और उपनिषद् संयुक्त नाम भी प्रयुक्त होता है, यथा बृहदारण्यकोपनिषद्। उसी ग्रन्थ को अरण्य में पढे पढाए जाने से आरण्यक और अविद्या को हटाकर ब्रह्म तक पहुंचाने वाली विद्या के प्रतिपादक होने से उपनिषद् कहा जाता है। कोई ज्ञानकाण्ड के उपासनापरक भाग को आरण्यक और ज्ञानपरक भाग को उपनिषद् मानते हैं। किन्तु उपनिषद् आरण्यक में ही अन्तर्भूत होती है। इसी हेतु मनुस्मृति-महाभारत-प्रभृति प्राचीन ग्रन्थों में आरण्यक के नाम से ही उपनिषदों को उल्लिखित किया हुआ मिलता है।

शिक्षाशास्त्र के सिद्धान्तों के बीज वेद के मन्त्रसंहिताओं में भी मिलते हैं। ब्राह्मणग्रन्थ से तो शिक्षा के सिद्धान्तसूत्र चुनकर लिए गए ही हैं। शिक्षा के प्रधान विषयों का निर्देश करने वाला **"अथ शीक्षां व्याख्यास्यामः"** इत्यादि प्रकरण तैत्तिरीयारण्यक का ही है। छान्दोग्योपनिषद् में स्वरों का महाप्राणप्रयत्नत्व का विधान है। मुण्डकोपनिषद् में वेदाङ्गों में शिक्षा का प्राथम्येन उल्लेख है। गोपथ-ब्राह्मण में शिक्षासम्बन्धी अनेक पारिभाषिक शब्द मिलते हैं। इस विषय में विस्तृत विवरण के लिए जिज्ञासु पाठक संस्कृत में कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा के उपबन्ध में सम्बद्ध प्रकरण पढें। अथवा सिद्धेश्वर वर्मा का *क्रिटिकल् ष्टडिज् इन् द फनेटिक्*

अब्जर्वेशञ्ज् अव् इण्डियन् ग्रमेरियज्ज्-नामक ग्रन्थ वा उस का हिन्दी अनुवाद पढें। षड्विंशब्राह्मण में "**षडङ्गान्यङ्गानि**" (५।७।२) इस वाक्य से और माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शतपथब्राह्मण में भी "**अङ्गजिद्ब्राह्मणेषु**" (११।४।३।२०) शब्द से वेदाङ्ग का उल्लेख मिलता है। केनोपनिषद् के "**वेदाः सर्वाङ्गानि**" (४।८) इस वाक्य की शङ्कर की प्रथम व्याख्या अनुपपन्न होने से वहाँ वेदाङ्गों का उल्लेख मानना तो ठीक नहीं लग रहा है।

मन्त्रब्राह्मणात्मक वेद भारतवर्षीय मनीषियों के मत में अनादि हैं। इन कें आविर्भाव के काल का कोई निश्चय नहीं है। पाश्चात्त्य लोग और उन के अनुयायी विचारक वेदों को आज से ६००० से ३००० वर्ष पूर्व तक के मानते हैं।

श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र, स्मृति, पुराण, रामायण, महाभारत, हरिवंश इत्यादि प्राचीन ग्रन्थों में वेदाङ्ग शब्दका उल्लेख अनेक स्थल पर मिलता है। शिक्षा वेदाङ्गों में प्रथम है यह बात उपर लिखी ही जा चुकी है। शिक्षा में अक्षरों का जो लक्षण और जैसा उच्चारण वर्णित है उसी प्रकार के अक्षरों के उच्चारण से युक्त वेदमन्त्रों के पाठ किए जाने के उल्लेख पुराण, रामायण, महाभारत, हरिवंश इत्यादि ग्रन्थों में अनेक स्थल में मिलते हैं।

ऋग्वेदप्रातिशाख्यादि प्रातिशाख्यग्रन्थ, जो पार्षद नाम से भी व्यवहृत होते हैं और पाणिनि अथवा यास्क से भी प्राचीन हैं, शिक्षा के ही ग्रन्थ हैं। उपलब्ध प्रातिशाख्यों में ऋग्वेदप्रातिशाख्य, शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्य, तैत्तिरीयप्रातिशाख्य, ऋक्तन्त्र, और शौनकीयचतुरध्यायिका प्रधान हैं। प्रातिशाख्यों को कतिपय प्राचीन अर्वाचीन पण्डित वैदिक व्याकरण मानते हैं। वस्तुतः प्रातिशाख्य शिक्षाग्रन्थ ही हैं। इस विषय में यह बात स्मरण में रहना चाहिए कि व्याकरण का मुख्य विषय वाक्यगत क्रिया-कारक-विभजन और पदगत प्रकृतिप्रत्यय-विभजन प्रातिशाख्यों में नहीं आता हैं। इस हेतु प्रातिशाख्य व्याकरण नहीं हैं। पदान्त-पदादि-संहिता तो तैत्तिरीयारण्यक के वचन के प्रमाण से शिक्षा का ही विषय है। इस विषय में अधिक जिज्ञासु पाठक कौण्डिन्न्यःग्नशिक्षा के उपबन्ध में "**प्रातिशाख्यानां शिक्षाग्रन्थत्वम्**" प्रकरण देखें। प्रातिशाख्यों में तत्तद्वेदशाखा से सम्बद्ध शिक्षाशास्त्रीय विषयों का विस्तृत और सूक्ष्म प्रतिपादन किया गया है।

व्याकरणों में भी शिक्षाशास्त्र के विषय आए हैं। शिक्षा के स्वतन्त्र ग्रन्थ भी प्रणीत हुए हैं।

प्रातिशाख्य में बताए हुए विषयों को संक्षेप में बताने की आवश्यकता से और कतिपय विषयों के स्पष्टीकरण की आवश्यकता से तत्तत्प्रातिशाख्य के पीछे परिशिष्ट रूप के अनेक ग्रन्थ मुनियों ने और विद्वानों ने रचे हैं। इन ग्रन्थों में से कुछ प्रधानग्रन्थ मुद्रित प्रकाशित भी हैं; किन्तु अनेक ग्रन्थ हस्तलिखित रूप में हस्तलिखितग्रन्थागारों में पडे हुए हैं। इस से हमारे पूर्वजों ने वेद की शुद्धता की रक्षा के हेतु और विद्या के अनुशीलन के हेतु कितने मनोयोग से काम किया यह मालूम होता है। इन ग्रन्थों का विवरण जिज्ञासु पाठक संस्कृत में कौण्डिन्न्यायन-शिक्षा के उपबन्ध में देख सकते हैं, और अङ्ग्रेजी में लघुऋक्तन्त्रसङ्ग्रह के सूर्यकान्तशास्त्रि-लिखित इण्ट्रडक्शन् में पढ सकते हैं।

प्रातिशाख्यों के पीछे तत्तद्वेदशाखाओं से सम्बद्ध अनेक और विविध बडे और,छोटे शिक्षाग्रन्थों का भी मुनियों और विद्वानों से प्रणयन होता रहा। यह क्रम आज भी चल रहा है। इन शिक्षाग्रन्थों का अत्यन्त संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

वेद के शाखा से सम्बन्ध नहीं रखनेवाले लौकिक संस्कृत के प्रयोक्ताओं के लिए लोकवेदसाधारण वा मुख्यतया लौकिक शिक्षाग्रन्थ भी रचे गए हैं। ऐसे ग्रन्थों में आपिशलीयशिक्षासूत्र, चान्द्रवर्णसूत्र इत्यादि ग्रन्थ हैं। इन का भी संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

इस प्रकार भारतवर्ष में बहुत प्राचीन काल से इस शिक्षाविद्या की धारा वहती आ रही है। इस से पाश्चात्त्य लोगों ने भी भरपूर लाभ उठाया है। इस विषय को डब्ल्यू. एस्. यालन् ने *फनेटिक्स् इन् एन्सण्ट् इण्डिया* नाम के ग्रन्थ के *दि इण्डियन् इन्फ्लुअन्स् अन् वेष्टर्न् फनेटिक्स्* नाम के प्रकरण में स्पष्ट रूप से दिखाया है। पाश्चात्त्य लोगों ने इस प्राचीन भारतवर्षीय विद्या की भित्ति में अनेक नए खोज सामेल कर के शिक्षाशास्त्र (Phonetics) में बडी प्रगति भी की है। अब वे भारतवर्षीय लोगों को इस विषय की शिक्षा देने में समर्थ हो गए हैं, और भारतवर्षीय लोग उन से शिक्षा लेने में तत्पर। यह विधि की विडम्बना ही कही जा सकती है। हम लोग अपनी विद्या की साधना में पीछे पड रहे हैं।

५. भारतवर्षीय शिक्षाग्रन्थों का संक्षिप्त विवरण

शिक्षाशास्त्र के विकास के क्रम में भारतवर्ष में प्रातिशाख्यों के पश्चात् आवश्यकतानुसार वेदशाखाविशेष से सम्बद्ध रूप में अथवा सर्ववेदशाखा-लोक-

साधारण रूप में अन्य छोटे अथवा बडे अनेक शिक्षाग्रन्थ विरचित हुए हैं। उन शिक्षाग्रन्थों के परिशिष्ट रूप के ग्रन्थ भी अनेक रचे गए हैं। उन में से कुछ प्रमुख ग्रन्थों का अतिसंक्षिप्त विवरण यहां नीचे उपस्थित किया जा रहा है। प्रातिशाख्य, प्रातिशाख्यपरिशिष्ट, शिक्षा, शिक्षापरिशिष्ट इत्यादि ग्रन्थों के विस्तृत विवरण के लिए जिज्ञासु पाठक कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा का उपबन्ध पढें।

{अ} वेदशाखाविशेष-सम्बद्ध शिक्षाग्रन्थ

उपलभ्यमान शिक्षाग्रन्थों में अधिकतर शिक्षाग्रन्थ वेद के किसी शाखाविशेष से सम्बद्ध हैं। सर्ववेदशाखा-लोक-साधारण शिक्षाग्रन्थ अत्यल्प सङ्ख्या में उपलब्ध हैं। यहां पहले प्रथम वर्ग के कुछ प्रमुख शिक्षाग्रन्थों का विवरण उपस्थापित किया जाता है।

[क] ऋग्वेद से सम्बद्ध शिक्षाग्रन्थ

ऋग्वेद से सम्बद्ध शिक्षाग्रन्थ सङ्ख्या में ज्यादा नहीं हैं, केवल चार पाँच ही हैं। किन्तु वे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। उन में प्रमुख तीन शिक्षाओं का संक्षिप्त विवरण अधोलिखित है–

(१) शैशिरीयशिक्षा–

यह शिक्षा ऋग्वेद के शैशिरीयशाखा से सम्बन्ध रखती है। वर्तमान काल में मुद्रण में आया हुआ ऋग्वेदसंहिताग्रन्थ शैशिरीयशाकलशाखा का ही ज्ञात होता है। उपलभ्यमान मुद्रित ऋग्वेदप्रातिशाख्य भी शैशिरीयशाखा का ही है। यह बात ऋग्वेदप्रातिशाख्य के प्रारम्भ में जुडे हुए वर्गद्वय से स्पष्ट हो जाती है। शैशिरीयशिक्षा का अनुशीलन पाणिनीय शिक्षा को ठीक रूप से समझने के लिए परमावश्यक है। यह शिक्षा *द जर्नल् अव् वेदिक् ष्टडिज्* नाम की पत्रिका में लाहौर में तारापद चौधरी से सम्पादित होकर १९३५क्रै. में मुद्रित हुई थी। अब वह दुर्लभ हो गई है। सम्प्रति यह शिक्षा कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा के अनुबन्ध के रूप में मुद्रित मिलती है। इस शिक्षा में शिक्षाशास्त्र के सभी विषय आए हैं और १७८ पद्य दिखाई देते हैं।

(२) शौनकशिक्षा–

यह भी ऋग्वेद से सम्बन्ध रखने वाली शिक्षा है। पाणिनीयशिक्षा को ठीक-ठीक समझने के लिए इस का अध्ययन आवश्यक है। एक शौनकीया शिक्षा काशिका में (४।३।१०६) भी उल्लिखित है। आजकल उपलभ्यमान शौनकशिक्षा

दक्षिण भारत में प्रसिद्ध है। केरल के त्रिपुणित्तुर-संस्कृत-महाविद्यालय के अध्यापक नम्पूतिरि ब्राह्मण विद्वान् दिवाकर ने प्राचीन अपूर्ण रूप में उपलव्ध व्याख्या को पूर्ण कर के व्याख्यासहित शौनकशिक्षा १९,६२क्रै. में प्रकाशित किया था। शौनकशिक्षा का हस्तलिखित प्रति दिल्ली महानगर में हौजखास मुहल्ले में अवस्थित सरस्वती-विहारपुस्तकालय में रघुवीरजी के सङ्ग्रह में भी है। हम ने रघुवीरजी के पुत्र लोकेश-चन्द्रजी के सौजन्य से वहीं यह ग्रन्थ पहले पढा था। उस में प्राचीन व्याख्या पूर्ण रूप में ही उपलब्ध थी, हमारा ऐसा स्मरण है। अब मूल मात्र यह शिक्षा कौण्डिन्न्यायन-शिक्क्षा के अनुबन्ध के रूप में मुद्रित मिलती है। इस शिक्षा में ६७ पद्य हैं।

(३) पाणिनीयशिक्षा –

पाणिनीयशिक्षा का वर्तमान काल में उपलभ्यमान कथित षष्टिपद्यात्मक पाठ सब को विदित है। किन्तु इस का पाठ निश्चितपरिमाणक नहीं दिखाई देता है। आजकल पाणिनीयशिक्षा में ११ खण्ड बताए जाते हैं। वीरमित्रोदय के परिभाषा-प्रकाश में (पृ.२०) यह शिक्षा पञ्चखण्डात्मिका बताई गई है। शिवमहिम्नस्तोत्र-व्याख्या में (श्लो.७) मधुसूदन सरस्वती ने इस शिक्षा को नवखण्डात्मिका कहा है। मनोमोहन घोष ने पाणिनीयशिक्षा में मूल रूप में १८ पद्य ही माने हैं। अग्निपुराण में (३३६।१-२२) पाणिनीयशिक्षा के २१½ पद्य ही पाए जाते हैं। पाणिनीयशिक्षापञ्जिका में २३ पद्य ही व्याख्यात हैं। शिक्षाप्रकाशव्याख्या में केवल ३२ पद्य चर्चित मालूम पडते हैं। कोई पाणिनीयशिक्षा का ३५ पद्य वाले पाठ को याजुष पाठ और ६० पद्य वाले पाठ को आर्च पाठ भी बताते हैं। पाणिनीयशिक्षा की प्रदीपव्याख्या में रुद्रप्रताप अवस्थी जी ने ५५ पद्यों को ही मूल माना है और २८,३३,४४,५३,५४ सङ्ख्या के पद्यों को प्रक्षिप्त माना है। जो भी हो, आजकल कथित षष्टिपद्यात्मक पाठ ही प्रसिद्ध है। इस में शिक्षाशास्त्र के अधिकतर विषय आए हैं। इस शिक्षा की व्याख्या हम ने भी की है। उस की भूमिका में सङ्क्षेप में पाणिनीयशिक्षा की और उस की व्याख्याओं की सर्वाङ्गीण समीक्षा भी प्रस्तुत की गई है। उस को जिज्ञासु पाठक वहीं देखें।

[ख] शुक्लयजुर्वेद से सम्बद्ध शिक्षाग्रन्थ

शुक्ल-यजुर्वेद से सम्बद्ध शिक्षाग्रन्थों की सङ्ख्या २७-२८ है। इन का मुद्रण शिक्षासङ्ग्रह में दोवार हो चुका है। इन सभी शिक्षा ग्रन्थों का कुछ विस्तृत वर्णन कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा के उपबन्ध में (पृ.४२–४३) उपलब्ध है। शुक्लयजुर्वेद के तीन प्रमुख शिक्षाग्रन्थों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है–

(१) याज्ञवल्क्यशिक्षा –

शुक्लयजुर्वेद से सम्बद्ध शिक्षाग्रन्थों में यह शिक्षा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और सब से प्राचीन है। किन्तु इस के पाठों में कुछ विसंवाद है। शिक्षासङ्ग्रह में मुद्रित पाठ, शुक्लयजुर्वेदसंहिता के परिशिष्ट के रूप में मुद्रित पाठ, और अमरनाथ शास्त्री की शिक्षावल्ली टीका से युक्त पाठ स्थान-स्थान में भिन्न हैं। शिक्षासङ्ग्रह में मुद्रित पाठ में २३२ पद्य दिखाई देते हैं। इस शिक्षा का उल्लेख उव्वट ने शुक्लयजुर्वेद-प्रातिशाख्य की व्याख्या में (४।१६५) किया है। पाराशरीयशिक्षा में (श्लो. ७७) वर्णरत्नप्रदीपिका शिक्षा में (श्लो. ८५) मल्लशर्मशिक्षा में (श्लो. ५) और प्रातिशाख्यप्रदीपशिक्षा में अनेक स्थलों में याज्ञवल्क्यशिक्षा उल्लिखित है।

(२) वर्णरत्नप्रदीपिका शिक्षा –

यह शिक्षा अमरेश की बनाई हुई है। इस को अमरेशी शिक्षा भी कहते हैं। यह विस्तृत शिक्षा है और शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्य का अनुगमन करती है। इस में सन्धिविषय भी आया है। यह शिक्षासङ्ग्रह में मुद्रित है। इस में २२७ पद्य हैं।

(३) प्रातिशाख्यप्रदीपशिक्षा –

इस शिक्षा में शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्य, प्रतिज्ञासूत्र, याज्ञवल्क्यशिक्षा, वर्ण-रत्नप्रदीपिका शिक्षा, केशवीयशिक्षा इत्यादि शुक्लयजुर्वेदीय शिक्षाग्रन्थों से विषयों को लेकर विवेचनपूर्वक उनका प्रतिपादन किया गया है। इस के रचयिता बालकृष्ण गोडशे हैं। रचनाकाल १९३७ वैक्रमाब्द है। यह शिक्षा शिक्षासङ्ग्रह में मुद्रित है।

[ग] कृष्णयजुर्वेद से सम्बद्ध शिक्षाग्रन्थ

कृष्ण यजुर्वेद से सम्बद्ध शिक्षाग्रन्थों की सङ्ख्या २०–२१ है। इन सभी शिक्षाग्रन्थों का कुछ विस्तृत वर्णन कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा के उपबन्ध में (पृ. ५३–६६) उपलब्ध है। इन शिक्षाओं में अधिकतर अब मुद्रित हैं। मुद्रित प्रमुख शिक्षाओं का संक्षिप्त विवरण अधोलिखित है–

(१) चारायणीयशिक्षा –

यह शिक्षा कृष्णयजुर्वेद की सम्प्रति लुप्त चारायणीयशाखा से सम्बन्ध रखती है। इस शिक्षा में शिक्षाशास्त्र के सभी विषय हैं। संहिता (=सन्धि) विषय भी तृतीय अध्याय में है। इस शिक्षा में वर्णस्थान आठ नहीं दश कहे गए हैं। इस शिक्षा को महाशिक्षा कहा गया है। यह शिक्षा कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा के अनुबन्ध के रूप में प्रथम वार मुद्रित है।

(२) भारद्वाजशिक्षा –

इस शिक्षा में तैत्तिरीयसंहिता के कतिपय सन्देहास्पद पदों के विषय में विवेचना है। यह शिक्षा भाण्डारकर ओरिएण्टल् रिसर्च् इन्स्टिच्युट् से मुद्रित रूप में प्रकाशित है। इस शिक्षा का शिक्षाशास्त्रीय विषयों की दृष्टि से उतना महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं है, तथापि तैत्तिरीयशाखा की शिक्षाओं में प्रथम स्थान में यह शिक्षा गिनी गई है। यथा–

भारद्वाज-व्यास-शम्भु-पाणिनि-कौहलीयकम्।
बोधायनो वसिष्ठश्च वाल्मीकिर् हारीतं नव॥
सर्वसम्मतमारण्यं तथा सिद्धान्तमेव च।
उपशिक्षा इमाः प्रोक्ता लक्षणज्ञानकोविदैः॥

(३) व्यासशिक्षा –

तैत्तिरीयशाखा की शिक्षाओं में यह सब से महत्त्वपूर्ण तथा सर्वविषय-व्यापिनी शिक्षा है। यह शिक्षा जर्मनी में गोट्टिञ्जेन् में पहले मुद्रित विदित होती है। दक्षिण भारत में भी दाक्षिणात्य लिपि में यह शिक्षा पहले मुद्रित ज्ञात होती है। इस को १९७६क्रै. में वाराणसी में पट्टाभिराम शास्त्री ने भी मुद्रित कराया है।

(४) कौहलीयशिक्षा –

यह भी महत्त्वपूर्ण शिक्षा है। यह शिक्षा साधुरामद्वारा सम्पादित होकर *द जर्नल् अव् वेदिक् स्टडिज्* में १९३५क्रै. में लाहौर में मुद्रित प्रकाशित हुई थी। वह दुर्लभ हो गई है। अब यह शिक्षा कौण्डिन्न्यायनशिक्षा के अनुबन्ध के रूप में मुद्रित उपलब्ध है।

(५) सर्वसम्मतशिक्षा –

इस शिक्षा के संक्षिप्त पाठ को ओट्टोफ्न्याङ्के से मुद्रित-प्रकाशित बताया जाता है। उस पाठ में ४९ श्लोक ही रहने की बात भी की जाती है। अब इस शिक्षा को दिल्लीस्थ सरस्वती-विहार-पुस्तकालय से रघुवीर जी के पुत्र लोकेशचन्द्र जी के सौजन्य से पूर्ण रूप में प्राप्त कर के कौण्डिन्न्यायनशिक्षा के अनुबन्ध के रूप में मुद्रित किया गया है। तैत्तिरीयशाखा की यह महत्त्वपूर्ण उपशिक्षा है। इस में १२१ पद्यसूत्र हैं।

(६) पारिशिक्षा–

यह भी तैत्तिरीयशाखा की शिक्षा है। इस में शिक्षाशास्त्र के प्रभूत विषय आए हैं। इस में १७३ पद्यसूत्र हैं। इस शिक्षा को भी दिल्लीस्थ सरस्वतीविहार-पुस्तकालय से ही प्राप्त कर के कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा के अनुबन्ध के रूप में प्रथम वार मुद्रित किया गया है।

(७) कौण्डिन्यशिक्षा–

तैत्तिरीयशाखा के सम्प्रदायविद् लोगों से स्वशाखीय शिक्षाग्रन्थों में अपरिगणित यह शिक्षाग्रन्थ वेदविकृतिलक्षणसङ्ग्रह में पुणे में १९७८क्रै. में मुद्रित हुई है। इस में संहिता के भेद, पदलक्षण, क्रमपाठप्रयोजन, क्रमपाठरचना, जटा, घन, विकृतिपाठफल इत्यादि विषय प्रतिपादित हैं।

[घ] सामवेद से सम्बद्ध शिक्षाग्रन्थ

सामवेद से सम्बद्ध शिक्षाग्रन्थों की सङ्ख्या प्रभूत नहीं है। इस वर्ग के जो शिक्षा ग्रन्थ मिलते हैं उन का कुछ विस्तृत ही विवरण नीचे दिया जाता है–

(१) लोमशीयशिक्षा–

इस शिक्षा के प्रारम्भ में यह शिक्षा गर्गाचार्यचिन्तित बताई गई है। जैसे आयुर्वेदशास्त्र में अग्निवेशमुनिकृत ग्रन्थ प्रतिसंस्कार करने वाले मुनि चरक के सम्बन्ध से 'चरकसंहिता' नाम से प्रसिद्ध है, वैसे ही गर्गाचार्यकृत इस शिक्षा की प्रवक्ता वा प्रतिसंस्कारक लोमश के नाम से प्रसिद्धि हुई होगी। प्रसिद्धि से और गानविधान होने से भी यह शिक्षा सामवेदीय शिक्षा ज्ञात होती है। इस शिक्षा को सामवेदसर्वानुक्रमणी में हरदत्त ने कौथुमसामवेदशाखा से सम्बद्ध बताया है। यह शिक्षा युगलकिशोरपाठक-सङ्कलित और सम्पादित शिक्षासङ्ग्रह (१८८९-१८९३क्रै.) में मुद्रित है। यही शिक्षासङ्ग्रह सम्पादक रामप्रसाद त्रिपाठी के नाम से सम्पूर्णानन्द-संस्कृतविश्वविद्यालय से पुनर्मुद्रित (१९८९क्रै.) हुआ है।

इस शिक्षा में कम्पस्वर का निरूपण, कतिपय सन्दिग्ध उदात्त स्वरों के निरूपण के उपाय का प्रदर्शन, व्यञ्जनद्वित्वविचार, संहिताकाल में वर्णों के उच्चारण में करण के भेदाऽभेद का विचार, नादवर्णव्यवस्था, हकार के स्थानविशेष का विचार, रेफस्वरभक्ति, ऋवर्ण और रेफस्वरभक्ति में भी अकार के उच्चारण के सदृश उच्चारण होने की बात, सामगान में श्वास लेने और छोडने का नियम,

अनुस्वार की मात्रा, यकार-वकारों की पूर्वस्वराङ्गता तथा परस्वराङ्गता का विचार, हकार के और श-ष-स के द्वित्व की व्यवस्था, मात्रापरिभाषा इत्यादि विषय प्रतिपादित हैं। इस शिक्षा में ८ खण्ड और ७३ श्लोक तथा १ गद्य कण्डिका हैं।

(२) गौतमीयशिक्षा –

इस शिक्षा के कर्ता गौतम बताए गए हैं। इस शिक्षा के द्वितीय प्रपाठक की अन्तिम कण्डिका में गौतम का उल्लेख भी है। वहीं प्रातिशाख्य का भी उल्लेख है। इस से यह शिक्षा प्रातिशाख्य से अर्वाचीन अवगत होती है। तथापि प्रपाठकों में और गद्यखण्डिकाओं में विभक्त यह शिक्षा प्राचीन ही प्रतीत होती है। प्रातिशाख्य में उदाहृत उदाहरण के रूप में इस शिक्षा के द्वितीय प्रपाठक की अन्तिम खण्डिका में वर्तमान सात व्यञ्जनों के संयोग का उदाहरण उपलभ्यमान सामवेदीयप्रातिशाख्य में उपलब्ध न होने से वह उदाहरण सामवेद की गौतमीयशाखा के प्रातिशाख्य से उद्धृत प्रतीत होता है। इस शिक्षा में उदाहरण सामवेद से दिए जाने से, इस में सामविशेषों का उल्लेख देखे जाने से और प्रसिद्धि से भी यह शिक्षा सामवेदीय शिक्षा अवगत होती है। यह शिक्षा नाम से ही सामवेद की गौतमीयशाखा से सम्बद्ध प्रतीत होती है। यह शिक्षा भी पूर्वोक्त शिक्षासङ्ग्रह में मुद्रित है।

(३) नारदीयशिक्षा –

इस शिक्षा में गान का भी विधान देखे जाने से और प्रसिद्धि से भी यह शिक्षा सामवेद से सम्बद्ध अवगत होती है। किन्तु सामवेद की किस शाखा से इस का विशेष सम्बन्ध है, यह बात निश्चित नहीं है। तथापि हदरत्त ने सामवेद-सर्वानुक्रमणी में भट्टशोभाकरभाष्यसहित इस शिक्षा को भी कौथुमसामवेदशाखा से सम्बद्ध बताया है। इस शिक्षा का कर्ता नारद बताए जाते हैं। इस शिक्षा में नारद के उल्लेख हैं (१।२।२, १।२।३, १।२।७, १।५।१४; २।४।१०, २।७।१३)। वेदमन्त्रद्रष्टा नारद, गान्धर्वशास्त्रकार नारद और नारदीयशिक्षाकार नारद पृथक् पृथक् पुरुष माने जाते हैं। नारदीयशिक्षा में तुम्बुरु, वसिष्ठ, विश्वावसु गन्धर्वों के साथ में गन्धर्व नारद का भी उल्लेख है (२।७।१३)। इस शिक्षा का नारदकृतत्व भट्टशोभाकर ने अपने विवरण के आरम्भ में बताया है। कोई "**पञ्चमसारसंहिता**" को नारदीयशिक्षा-कार नारद के ही सिद्धान्तों के प्रतिपादनार्थ रचित ग्रन्थ मानते हैं (भरत का सङ्गीत सिद्धान्त, कैलासचन्द्रदेव बृहस्पति, प्रकाशनशाखा, सूचनाविभाग, उत्तरप्रदेश, १९५९क्रै., पृ.२९२)। यह शिक्षा प्रातिशाख्यग्रन्थों से बाद की और उपलभ्यमान

अन्य शिक्षाग्रन्थों से पहले की मानी जाती है। इस शिक्षा का छन्दोगपरिशिष्ट में भी उल्लेख है (१०।२)। इस शिक्षा के **"आर्चिकं गाथिकं चैव"** (१।१।२) इत्यादि प्रायः सभी श्लोक बृहन्नारदीय पुराण के पूर्वार्ध के पचाशवें अध्याय में आए हैं। वहाँ श्लोकों में कुछ कुछ पाठभेद और भ्रष्ट पाठ भी बहुत हैं। सामान्यतया वैक्रमाब्द की सप्तमशताब्दी में वर्तमान माने गए आस्तिकशिरोमणि धर्ममीमांसक कुमारिलभट्ट ने तन्त्रवार्तिक में व्याकरणाधिकरण में **"तथा शिक्षायां नारदेन *'प्रत्यूषे ब्रह्म चिन्तयेत्'*** (२।८।१?) **इति गाव्यादिशब्दतुल्य एव प्रयुक्तः"** ऐसा उल्लेख करके नारदीयशिक्षा के **"प्रत्यूषे"** प्रयोगपर कटाक्ष किया है (१।३।२४, आनन्दाश्रमसं.पृ.१९०-१९१)। लौकिक शुद्ध रूप **"प्रत्यूषसि"** के जगह में किए गए **"प्रत्यूषे"** इस आर्षप्रयोग को लेकर वह कटाक्ष किया गया मालूम होता है। वर्तमान पाठ में तो वैसा प्रयोग नहीं मिलता है। हो सकता है कुमारिलभट्ट की उस आलोचना को देखकर प्राचीन आर्षपाठ **"जीर्णाहारः प्रबुद्धः सन् *प्रत्यूषे* ब्रह्म चिन्तयेत्"** को किसी ने **"जीर्णाहारः प्रबुद्धः सन्नुषसि ब्रह्म चिन्तयेत्"** (२।८।१) ऐसा बना दिया गया हो। भरतनाट्यशास्त्रव्याख्या अभिनवभारती में वैक्रमाब्द के एकादश शताब्दी के माने गए अभिनवगुप्त ने भी **"अत्र नारदाद्या नामनिर्वचनमकार्षुः *'नासां कण्ठमुरस्तालु जिह्वां दन्तांश्च संश्रितः। षड्भ्यस् तज् जायते यस्मात् तस्मात् षड्जः'*** **इत्यादि (नार.१।५।७), तदनुपयोगान् मुनिना न स्वीकृतम्"** (२८।२१) ऐसा और **"अत एव सामवेदे ग्रामविभागाऽभावात् तदुपयोगिन्यां नारदीयशिक्षायां तदभिधानमौत्तराधर्यमात्रमुक्तं *'यः सामगानाम्'* (नार.१।५।१) इत्यादिना। दीप्तायताद्याश्च पञ्च श्रुतयः पृथक्स्वरादीनां प्रयुक्तिविशेषसाध्या उक्ताः(नार.१।७।९-१८)"** ऐसा कहकर नारदीयशिक्षा का उल्लेख किया है। नारदीयशिक्षा का **"पुष्पसाधारणे काले कोकिलो वक्ति पञ्चमम्"** (१।५।४) यह वचन भी अभिनवभारती में (२८।२१) उद्धृत है। **"यदाह नारदमुनिः"** कहकर नारदीयशिक्षा का **"यः सामगानां प्रथमः स विशेन् मध्यमः स्वरः"** (ना.शि.१।५।१) इस सूत्र का भी वहाँ उल्लेख किया है (२८।६४-६५)। वहाँ उक्त सूत्र में **"वेणोर् मध्यम इत्यन्ये पठन्ति"** कहकर पाठान्तर भी दिया गया है। नारदीयशिक्षा का **"यः सामगानां प्रथमः स वेणोर् मध्यमः स्वरः"** (१।५।१) यह वचन भी अभिनवगुप्त ने उद्धृत किया है (३०।२)। इस स्थिति में श्रीधर भास्कर वर्णेकर महाशय ने संस्कृत वाङ्मयकोश के ग्रन्थखण्ड में (१९८८ क्रै.) नारदीयशिक्षा के परिचय में जो *"इस की रचना ईसा की १० वीं और १२ वीं शताब्दियों के बीच में हुई होगी"* कहा है वह तो विचारणीय ही प्रतीत होता है।

इस शिक्षा में दो प्रपाठक और प्रत्येक प्रपाठक में आठ-आठ कण्डिकाएँ हैं। प्रत्येक कण्डिका में अनेक पद्यसूत्र हैं। प्रथम प्रपाठक की तृतीय कण्डिका में अधिकतर सूत्र और अन्यत्र एक दो सूत्र गद्यरूप भी हैं। पद्य प्रायः अनुष्टुप् छन्द के हैं। एक दो पद्य अन्यप्रकार के भी हैं।

इस शिक्षा में प्रथम प्रपाठक में अधिकतर गानसम्बद्ध विषय आए हैं, प्रथम प्रपाठक की अष्टम कण्डिका में और द्वितीय प्रपाठक की कण्डिकाओं में अधिकतर आर्चिक-स्वरादि विषयों का प्रतिपादन है। इस शिक्षा में प्रतिपादित विषयों का विस्तृत विवरण विषयानुक्रमणिका में दिया ही गया है। उस विषयानुक्रमणिका से अवगत होता है कि प्रस्तुत नारदीय शिक्षा में वर्णो का, उन के वर्गीकरण का और स्थान-करण-प्रयत्नादि विषयों का भी प्रतिपादन नहीं है, और इस में स्वर-ग्रामादि का ही विशेष निरूपण है, और यह सर्वाङ्गपूर्ण शिक्षाग्रन्थ नहीं है।

इस शिक्षा में आए हुए अनेक पद्य याज्ञवल्क्यशिक्षा में, चारायणीयशिक्षा में, माण्डूकीयशिक्षा में और अन्य कुछ शिक्षाओं में भी पाए जाते हैं।

नारदीयशिक्षा भट्टशोभाकरव्याख्यासहित युगलकिशोरपाठकसम्पादित शिक्षासङ्ग्रह में (१८८९-१८९३ क्रै.) मुद्रित हुई थी। उसी शिक्षासङ्ग्रह का सौ वर्षबाद १९८९क्रै. में सम्पादक रामप्रसादत्रिपाठी के नाम से सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालय से पुनर्मुद्रण हुआ है।

[ङ] अथर्ववेद से सम्बद्ध शिक्षाग्रन्थ

अथर्ववेद से सम्बद्ध शिक्षाग्रन्थ भी अधिक नहीं पाए जाते हैं। इस वर्ग के जो प्रमुख ग्रन्थ मिलते हैं उनका संक्षिप्त विवरण नीचे प्रस्तुत किया जाता है–

(१) माण्डूकीयशिक्षा –

यह शिक्षा पाणिनीयशिक्षा, याज्ञवल्क्यशिक्षा, व्यासशिक्षा, नारदीयशिक्षा इत्यादि प्रधानशिक्षाओं की समकक्षता में आनेवाली शिक्षा है। इस में शिक्षाशास्त्र के प्रायः सभी विषय आए हैं। याज्ञवल्क्यशिक्षा, नारदीयशिक्षा और माण्डूकीयशिक्षा के अनेक पद्य समान रूप के हैं। इस शिक्षा का उल्लेख आथर्वण चरणव्यूह में और शिक्षासङ्ग्रह में सङ्गृहीत अथर्वपरिशिष्ट में छठे पद्य में भी है। यथा–

शिक्षा प्रकल्पिता सम्यङ् मण्डूकेन महर्षिणा।
शिष्याणामुपदेशार्थं सम्यगुच्चारणाय वै॥

यह शिक्षा शिक्षासङ्ग्रह में मुद्रित है। इस को भगवद्दत्त ने भी १९२१ क्रै. में लाहौर में सम्पादित और मुद्रित किया है। इस में १६ खण्ड और १८२ पद्य हैं।

(२) वर्णपटल–

यह अथर्ववेदपरिशिष्टों में सतचालीसवां परिशिष्ट है। इस में शिक्षा-सम्बन्धी प्रायः सभी विषय हैं। यह ग्रन्थ कौशिकप्रोक्त माना जाता है। इस बात का उल्लेख चरणव्यूह नाम के उञ्चासवें परिशिष्ट में है। यह ग्रन्थ अथर्वपरिशिष्ट में अन्य परिशिष्टों के साथ मुद्रित है।

{आ} सर्ववेदशाखा-लोक-साधारण शिक्षाग्रन्थ

सर्ववेदशाखा-लोक-साधारण शिक्षाग्रन्थ अधिकसङ्ख्या में नहीं मिलते हैं। जो प्रमुख ग्रन्थ मिलते हैं उन का विवरण नीचे दिया जाता है–

(१) आपिशलीयशिक्षासूत्र–

यह शिक्षा गद्यसूत्र रूप में उपलब्ध है। आपिशलि का उल्लेख पाणिनि ने अष्टाध्यायी में **"वा सुप्यापिशलेः"** (६।१।९२) कहकर किया है। आपिशलि की शिक्षा का उल्लेख भर्तृहरि ने वाक्यपदीय के ब्रह्मकाण्ड की स्वोपज्ञवृत्ति में (१।११२–११५) किया है। इस बात का स्पष्टीकरण उस वृत्ति की टीका में वृषभदेव ने किया है। कवि राजशेखर ने भी काव्यमीमांसा के द्वितीय अध्याय में **"शिक्षा आपिशलीयादिका"** कहकर आपिशलीयशिक्षा का उल्लेख किया है। हैमशब्दानुशासनवृत्ति में (१।१।७) भी आपिशलीयशिक्षा के सूत्र उद्धृत हुए हैं। तैत्तिरीयप्रातिशाख्य की गार्ग्य गोपालयज्वा की वैदिकाभरण टीका में भी (२।११, २।४६) नामग्रहणपूर्वक आपिशलीयशिक्षा के वचन उद्धृत हुए हैं। महास्वामी ने और अनन्तदेव ने भी कातीयभाषिकसूत्र की व्याख्या में आपिशलि के वचन उद्धृत किए हैं (३।१४)। शौनकीयशिक्षा की प्राचीन व्याख्या के प्रारम्भ में भी **"बह्व्यः सन्ति शिक्षाः शौनकीय-पाणिनीय-शैशिरीया-ऽऽपिशलीयाद्याः"** कहकर आपिशलीयशिक्षा का उल्लेख किया गया है। इस से आपिशलीयशिक्षा की पुराकाल में बहुत बडी ख्याति झलकती है। किन्तु अर्वाचीन काल में आपिशलीयशिक्षा लुप्त सी हो गई थी। डा. रघुवीर ने अड्यार-पुस्तकालय से आपिशलीयशिक्षा के दो हस्तलिखित ग्रन्थ प्राप्त कर के १९३४क्रै. में लाहौर में *द जर्नल् अव् वेदिक् ष्टडिज्* में उस का प्रकाशन किया है। उस के बाद युधिष्ठिर मीमांसक ने भी २००५ वैक्रमाब्द में (१९४९क्रै. में) आपिशलिशिक्षासूत्र

मुद्रित किया है। इस का "शिक्षासूत्राणि आपिशलि-पाणिनि-चन्द्रगोमि-विरचितानि" नाम के ग्रन्थ में संवत् २०२४ में पुनर्मुद्रण हुआ है। इस शिक्षा में उपक्रम, स्थान, करण, अन्तःप्रयत्न, बाह्यप्रयत्न, स्थानपीडन, वृत्तिकार, क्रम, नाभितल (प्रयत्न-स्पष्टीकरण), उपसंहार नाम के १० प्रकरण दिखाई देते हैं। सर्ववेद-लोक-साधारण शिक्षाग्रन्थों में यह ग्रन्थ सर्वोत्तम है।

(२) पाणिनीयशिक्षासूत्र –

यह ग्रन्थ अपूर्ण रूप में संवत् १९३६ वैक्रमाब्द में दयानन्द सरस्वती से सम्पादित-मुद्रित-प्रकाशित हुआ था। १९३९क्रै. में दि इण्डियन् रिसर्च् इन्स्टिच्युट् (कोलकाता) से प्रकाशित तथा अध्यापक अमूल्यचरण विद्याभूषणद्वारा सम्पादित "आपिशलिशिक्षा"को पाणिनीयशिक्षासूत्र मानकर उसी के आधार पर संवत् २०२४ वैक्रमाब्द में उपर्युक्त अपूर्णग्रन्थ को पूर्ण रूप देकर युधिष्ठिर मीमांसक ने "पाणिनीयशिक्षासूत्र{वृद्धपाठ}" के नाम से मुद्रित प्रकाशित किया है। यह ग्रन्थ भी मननीय है।

(३) कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा –

यह सर्ववेदशाखा-लोक-साधारण महाशिक्षा है। इस के उपबन्ध (भूमिका) में वेदाङ्गशिक्षाशास्त्रका संक्षिप्त इतिहास दिया गया है। इसी भाग में उपलभ्यमान समस्त प्रातिशाख्यों का, प्रातिशाख्यपरिशिष्टरूप ग्रन्थों का, शिक्षाओं का और शिक्षापरिशिष्ट रूप ग्रन्थों का विस्तृत परिचय भी दिया गया है। मूल ग्रन्थ के प्रथम उपक्रमाध्याय में शिक्षा की परिभाषा और प्रयोजनादि, वेदादि के अध्ययन के अधिकारी, अध्ययनविधि, अध्यापनविधि इत्यादि विषय विस्तृत रूप से प्रतिपादित हैं। द्वितीयादि अध्यायों में क्रमशः वर्ण, स्वर, मात्रा, बल (स्थान-करण-प्रयत्न-अनुप्रदान), साम, सन्तान (=संहिता=सन्धि) निरूपित हैं। अष्टम तुलनाध्याय में भारतवर्षीय वैदिक शिक्षाशास्त्र की पाश्चात्त्य शिक्षाशास्त्र (फनेटिक्स्) से तुलना की गई है और नवम उपसंहाराध्याय में वैदिक शिक्षाशास्त्र की सार्वभौम उपयोगिता प्रकाशित की गई है। अनुबन्ध में शौनकशिक्षा, शैशिरीयशिक्षा, व्याडिशिक्षा (विकृतिवल्ली), चारायणीयशिक्षा, कौहलीयशिक्षा, सर्वसम्मतशिक्षा, पारिशिक्षा और आपिशलीयशिक्षासूत्र सङ्ग्गृहीत हैं। यह वाराणसीस्थ सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालय से वाचस्पति (डी. लिट्.) उपाधि के लिए स्वीकृत ग्रन्थ है। इस में

मूलग्रन्थ में मुख्य विषय ११५८ कारिकाओं में और अन्य विवेचनीय विषय व्याख्यारूप गद्य में निरूपित हैं। व्याख्या में सम्बद्ध विषय के प्रमाण-वचन मुद्रित अमुद्रित सम्पूर्ण उपलब्ध शिक्षाग्रन्थों से विस्तृतरूप में उद्धृत किए गए हैं। इस ग्रन्थ में प्रातिशाख्यादि सम्पूर्ण भारतवर्षीय शिक्षाशास्त्रीय ग्रन्थों का सार आवश्यक विवेचन-सहित सङ्गृहीत है। कूल ८९६ पृष्ठों में मुद्रित यह ग्रन्थ नेपाल से संवत् २०४९ वैक्रमाब्द में प्रकाशित हुआ है। यह ग्रन्थ शिवराज-आचार्य-कौण्डिन्न्यायन-विरचित है।

६. भारतवर्षीय गानपरम्परा और नारदीयशिक्षा

भारतवर्षीय गानपरम्परा अनादि है। अनादि अपौरुषेय वेदों में गान का उल्लेख होने से यह बात प्रमाणित होती है।

ऋग्वेद में **"देवा अङ्गिरसां *सामभिः* स्तूयमानाः"** (१।१०७।२), **"गायन् *साम* नमन्यं यथा वः"** (१।१७३।१), **"उद्गातेव शकुने *साम* गायसि"** (२।४३।२) **"यो जागार तमु *सामानि* यन्ति"** (५।४४।१४), **"यूयमृषिमवथ *साम*विप्रम्"** (५।५८।१४) इत्यादि स्थल में गेय सामों का वा सामों के गान का उल्लेख उपलब्ध होता है। ऋग्वेद में **"तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः *सामानि* जज्ञिरे। छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस् तस्मादजायत"** (१०।९०।९) इस मन्त्र में सामों की उत्पत्ति भी उल्लिखित है। ऋग्वेद में बृहत् साम का (८।५५।१, ८।९५।७, ८।९८।१, १०।१८१।२), रथन्तर साम का (१०।१८१।१), गायत्र साम का (१०।७१।११) भी उल्लेख मिलता है। अन्त्येष्टि कर्म में भी साम का प्रयोग ऋग्वेद में उल्लिखित मालूम पडता है (१०।१३५।४)।

यजुर्वेद में भी रथन्तर साम का (मा.वा.शु.य.वे.१०।१०, १३।५४, १५।१०), बृहत् साम का (वहीं १०।११, १३।५५, १५।११), वैरूप साम का (वहीं १०।१२, १३।५६, १५।१२), वैराज साम का (वहीं १०।१३, १३।५७, १५।१३) और शाक्वर साम का तथा रैवत साम का (वहीं १०।१४, १३।५८, १५।१४), भी उल्लेख मिलता है। ऐसे और भी उल्लेख यजुर्वेद में मिलते हैं। यजुर्वेद के उल्लेख से सामविशेष का ऋतु, ऋषि, स्तोम इत्यादि से विशेष सम्बन्ध भी अवगत होता है। **"गीताय शैलूषम्"** (मा.वा.शु.य.वे.३०।६) ऐसे उल्लेख से यजुर्वेद से गान की विशिष्ट स्थिति भी अवगत होती है। साम की उत्पत्ति के उल्लेख से युक्त उक्त ऋग्वेद में उपलब्ध मन्त्र यजुर्वेद में भी है (वहीं ३१।७)।

सामवेद तो साममय ही है। साम गीति (गान) ही है। अत एव जैमिनि मुनि ने "**गीतिषु सामाख्या**" (जैमिनीय धर्ममीमांसासूत्र २।१।३३) कहा है। अतः सामवेद में गान के उल्लेख का विशेष विवरण अनावश्यक है। साम वेद में उपलब्ध सामविशेषों की (गीतिविशेषों की) सङ्ख्या बडी है। उन में प्रमुख अग्निष्टोम, आग्नेय, इष्टाहोत्रीय, औशनस, कालेय, गायत्र, गौरीवीत, चन्द्र, तन्व, धेनु, पयः, बृहत्, ब्रह्मसाम, यज्ञायज्ञीय, रथन्तर, रैवत, वसिष्ठ, वामदेव्य, वारवन्तीय, वार्षाहर, वैराज, वैरूप, शफ, शाक्वर, शुक्र, श्यैत इत्यादि हैं।

अथर्ववेद में भी "**ऋचं *साम* यजामहे याभ्यां कर्माणि कुर्वते। एते सदसि राजतो यज्ञं देवेषु यच्छतः**" (शौनक्यथर्ववेदसंहिता ७।५४।१) इत्यादि स्थलों में साम का उल्लेख है।

उक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि भारतवर्ष में गान की परम्परा अनादिकाल से चली आ रही है। उन के विकसित प्रतिपादन का क्रम वेद की मन्त्रसंहिताओं में, ब्राह्मणग्रन्थों में, श्रौतसूत्र-गृह्यसूत्रों में, धर्मसूत्रों में, स्मृतियों में और पुराणों में देखा जा सकता है। विशेष करके सामवेद की गानसंहिता में, ब्राह्मणग्रन्थों में, श्रौतसूत्र-गृह्यसूत्रों में, प्रातिशाख्य में, और शिक्षा में भी गानों के प्रतिपादन का विकसित-क्रम देखा जाता है।

भारतवर्ष में गान की उक्त परम्परा जो है वह मुख्यतः यज्ञ और धार्मिक आध्यात्मिक क्षेत्र की ही है। उस की पृथक् स्वतन्त्र धारा है। दूसरी धारा गान के लौकिक प्रयोग की परम्परा की है। उस का पृथक् विकास हुआ है। इन में प्रथम परम्परा की गानपद्धति को मार्गपद्धति, और दूसरी परम्परा की गानपद्धति को देशी पद्धति कहते हैं। यथा–

गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं सङ्गीतमुच्यते।
मार्गो देशीति तद् द्वेधा तत्र मार्गः स उच्यते॥
यो मार्गितो विरिञ्च्याद्यैः प्रयुक्तो भरतादिभिः।
देवस्य पुरतः शम्भोर् नियताभ्युदयप्रदः॥
देशेदेशे जनानां यद् रुच्या हृदयरञ्जकम्।
गानं च वादनं नृत्यं तद् देशीत्यभिधीयते॥

(सङ्गीतरत्नाकर १।१।२१-२३)।

नारदीयशिक्षा मुख्य रूप में मार्गपद्धति का गानशास्त्रग्रन्थ है। इस में प्रथम प्रपाठक में मुख्य रूप में गानसम्बद्ध विषय आए हैं। इस भाग का सम्बन्ध सामवेद की गानसंहिता से है। द्वितीय प्रपाठक में सामवेद की आर्चसंहिता वा आर्चिकसंहिता से सम्बद्ध और सामान्य शिक्षाशास्त्र से सम्बद्ध विषय आए हैं।

उपलभ्यमान शास्त्रीय गान के स्वरग्रामादि के प्रतिपादक ग्रन्थों में नारदीयशिक्षा का स्थान प्रथम और उच्च माने जाने से गानशास्त्रवाङ्मय में इस शिक्षा की गौरवपूर्ण स्थिति है। सामवेद में ग्रामविभाग विशेष उपयोगी न होने पर भी नारदीयशिक्षा में ग्रामादि का प्रतिपादन किया गया है। इस से इस ग्रन्थ का केवल वेदाङ्गत्व न होकर लौकिकगानोपकारत्व भी प्रमाणित होता है। इस से भी सामवेदाध्ययन में ही नहीं भारतवर्षीय सङ्गीताध्ययनक्षेत्र में भी नारदीयशिक्षा का विशिष्ट स्थान माना जाता है।

नारदीयशिक्षा में इस शिक्षाग्रन्थ को सङ्गीतशास्त्र वा गानशास्त्र नहीं, स्वरशास्त्र माना गया मालूम होता है (१।१।१, १।१।२, १।२।१)। इस में मुख्य पाठ में वेदनिश्चय की बात की गई है (१।१।१)। इस में आर्चिक और सामिक स्वर की चर्चा है (१।१।२)। इस ग्रन्थ को वेदाङ्ग माना गया है (१।२।१)। इस ग्रन्थ में साम का वारवार उल्लेख किया गया है (१।१।७, १।१।९, १।१।१२, १।२।१, १।५।१, १।६।१, १।६।९, १।६।१४, १।६।१९, १।७।८, १।७।१४, २।७।१३)। इस में वेदशाखाओं में से कठशाखा का (१।१।९), कालापशाखा का (१।१।९), तैत्तिरीयशाखा का (१।१।९, ११) आह्वरक-शाखा का (१।१।९,११), ताण्डिशाखा का (१।१।१३), भाल्लविशाखा का (१।१।१३), और वाजसनेयिशाखा का (१।१।१३) उल्लेख मिलता है। शतपथब्राह्मण का भी इस में उल्लेख है (१।१।१३)। इस में ब्रह्म (वेद) के चिन्तन का विधान है (२।८।१)। सार्ववैदिक स्वरों की चर्चा भी इस शिक्षा में है (१।१।१४)।

यद्यपि नारदीयशिक्षा मुख्य रूप में वेदाङ्ग ही मानी गई है और यह शिक्षा मुख्यतया सामवेद से सम्बद्ध दिखाई देती है, तथापि इस में सामवेद के मुख्य अध्ययन और गान से विशेष रूप से असम्बद्ध लौकिक गान से सम्बद्ध विषय भी बहुत ही आए हैं। ये विषय केवल गान्धर्वस्वरादि से सामस्वरादि के तुलनादि के लिए ही प्रतिपादित नहीं माने जा सकते हैं। इस शिक्षा में कण्ठरव से ही गाथिक स्वरान्तर भी प्रयोक्तव्य बताया गया है (१।१।२)। गाथास्वर की विशेषता भी बताई गई है (१।१।३)।

इस में लौकिक गान से सम्बद्ध सात स्वरों का (१।२।२,४,५-१६), श्रुति का (१।६।१५,१६, १।७।९,१०,११,१५,१७,१८), श्रुति के दीप्तादि भेद का (१।७।९, १०,११,१२,१३,१८), स्वरमण्डल का (१।२।४, १।६।५), ग्राम का (१।२।२,४,६,७,८; १।४।७,८, ११), मूर्च्छनाओं का (१।२।२,४,९,१०,११,१२,१३,१४), तानों का (१।२।२, ४,८), राग का (१।२।२, ७; १।४।५), षाडव राग का (१।४।५), कारुप्रयोज्य वाद्य का (१।४।१२), वेणु (वाँसुरी) का (१।५।१), दारवी वीणा का (१।६।१), वीणिओं का (वीणावादकों का) (१।६।१९) उल्लेख मिलता है। षड्जादि स्वरों का तो अनेक प्रकार का प्रतिपादन मिलता है (१।२।५,६,८,१५; १।४।१,२,३,४,५,६,७,८,११; १।५।१-१९)।

इस शिक्षा में गायक के रूप में **अग्नि** का (१।५।१३), **ब्रह्मा** का (१।५।१३), **सोम** का (१।५।१३), **विष्णु** का (१।५।१३), **नारद** का (१।५।१४, २।७।१३), **तुम्बुरु** का (१।५।१४, २।७।१३), **वसिष्ठ** का (२।७।१३), और **विश्वावसु** का (२।७।१३) उल्लेख मिलता है। ग्रामविशेषज्ञ के रूप में **कश्यप** का भी उल्लेख मिलता है (१।४।११)। प्रथम प्रपाठक की तृतीय कण्डिका में तो केवल दश गानगुण और चौदह गीतिदोष ही प्रतिपादित हैं। चतुर्थ कण्डिका में भी गान के षड्जादिस्वर का ही विविध प्रतिपादन है।

इस शिक्षा में शिक्षाशास्त्र के विज्ञों के रूप में आचार्यों का (१।३।१५(३), १।७।९, १।८।५, २।५।३), पण्डितों का (१।३।१५(३), २।३।११), शैक्षिकों का (१।८।७), सोमशर्मा का (२।३।८) और प्राचीन औदव्रजि का (२।८।५) भी उल्लेख मिलता है।

भारतवर्ष की मौलिक परम्परा में धर्म और अध्यात्मज्ञान की शिक्षा मुख्य रूप में पितापुत्र-सम्बन्ध से और गुरुशिष्य-सम्बन्ध से ही दी जाने की व्यवस्था होने की बात "**आचार्यैर् विहितं शास्त्रं पुत्र-शिष्य-हितैषिभिः**" (१।८।५) इस वचन से नारदीयशिक्षा में ध्वनित है।

सम्प्रति उपलभ्यमान नारदीयशिक्षा के अन्तिम सम्पादन का काल अनिश्चित है। वेदाङ्गशिक्षाग्रन्थों के इतिहास के अन्वेषक लोग नारदीयशिक्षा को उपलभ्यमान शिक्षाग्रन्थों में प्राचीनतम शिक्षाग्रन्थों में से एक मानते हैं। सामवेदीय वंशब्राह्मण के "**भद्रशर्मा कौशिकः पुण्ययशस औदव्रजेः, पुण्ययशा औदव्रजिः सङ्कराद् गौतमाद्**" (३।४,५) इस स्थल में उल्लिखित औदव्रजि का नारदीयशिक्षा में "**वर्णांश्च कुरुते सम्यक् प्राचीनौदव्रजिर् यथा**" (२।८।५) इस वाक्य में उल्लेख प्राप्त होने से और

सामवेदीय सामविधानब्राह्मण के "**तद् योऽसौ क्रुष्टतम इव साम्नः स्वरस् तं देवा उपजीवन्ति**" (१।१।८) इत्यादि वर्णन का नारदीयशिक्षा में "**क्रुष्टेन देवा जीवन्ति प्रथमेन तु मानुषाः**" (१।७।६) इत्यादि वचन से अनुगमन किए जाने की बात अवगत होने से भी नारदीयशिक्षा उक्त ब्राह्मण ग्रन्थों का निकटतया अनुसरण करने वाली प्राचीनतम शिक्षा दिखाई देती है। सामवेद के क्रुष्ट-प्रथम-द्वितीयादि (सामविधान-ब्राह्मण १।१।१४, नार.१।१।१२) स्वरों के स्वरूप के ज्ञान के लिए सामतन्त्र का भी नारदीयशिक्षा ही उपजीव्य दिखाई देने से नारदीयशिक्षा बहुत ही प्राचीन दिखाई देती है। भरतनाट्यशास्त्र में भी नारद के अनेक उल्लेख प्राप्त होने से और अभिनव-गुप्त की नाट्यशास्त्राऽभिनवभारती में नारदीयशिक्षा के सिद्धान्तविशेष को भरत-नाट्यशास्त्र में अस्वीकृत करने की बात उपलब्ध (२८।२१) होने से भी नारदीयशिक्षा भरतनाट्यशास्त्र से भी प्राचीन प्रतीत होती है। उपलभ्यमान भरतनाट्यशास्त्र के अन्तिम सम्पादन का काल विवादास्पद है। इस का काल इतिहास के अन्वेषक लोग शुङ्गकाल से गुप्तकाल तक बताते हैं। कुमारिल भट्ट ने भी नारदीयशिक्षा का उल्लेख किया है (तन्त्रवार्तिक, व्याकरणाधिकरण, आनन्दाश्रम, पृ.१९०-१९१)। अतः श्रीधर भास्कर वर्णेकर ने संस्कृतवाङ्मयकोश ग्रन्थखण्ड (१९८८क्रै., पृ.१६०) में नारदीयशिक्षा (नारदशिक्षा) के काल के विषय में जो *'इस की रचना ईसा की १० वीं और १२ वीं शताब्दियों के बीच हुई होगी'* ऐसा कहा है वह तो असङ्गत ही दिखाई देता है। पाण्डुरङ्ग वामन काणे ने स्मृतिकार नारद का समय १००-३००क्रै. सुझाया है। शिक्षाकार नारद और स्मृतिकार नारद एक ही पुरुष हों तो नारदीय-शिक्षा के काल के विचार में उक्त बात को भी ध्यान में रखना चाहिए। इस विषय में यह बात भी ध्यान में रखना उचित है कि शरच्चन्द्र श्रीधर पराञ्जपे के *'भारतीय संगीत का इतिहास'* नाम के ग्रन्थ में (१९८५क्रै., पृ.१२७) *'सम्भव है कि जिस प्रकार नारद के शिक्षाविषयक मन्तव्यों का सङ्ग्रह इस में हुआ है, उसी प्रकार गान्धर्व सम्बन्धी विचारों का सङ्ग्रह इस शिक्षा में परवर्ती काल में हुआ है'* ऐसा उल्लेख है, और *'ग्रामरागविषयक विवेचन ही (की?) स्थूलता एवं अस्पष्टता ऐसे ही सङ्कलन की द्योतक है, जो बहुत परवर्ती काल में सम्भवतः ऐसे व्यक्ति के द्वारा हुआ है, जो संगीत का विशेषज्ञ न रहा हो'* ऐसा भी कहा गया है।

उक्त विचार-विमर्श से अवगत होता है कि नारदीयशिक्षा में भले ही अर्वाचीन काल में कुछ प्रक्षेप भी हुए हों, फिर भी इस शिक्षा का मूल रूप बहुत ही प्राचीन है।

७. नारदीयशिक्षा के प्रस्तुत संस्करण की विशेषता

नारदीयशिक्षा की कुमारिल भट्ट के समय से बराबर चर्चा हो ही रही है। तथापि भारतवर्ष में बाह्य लोगों के आक्रमण और शासन की स्थितियों में वैदिक-सनातन-वर्णाश्रमधर्मानुयायियों के समाज में कोलाहल उत्पन्न हो जाने से वैदिक अध्ययन में बहुत विघ्न उपस्थित हुए हैं, और वैदिक अध्ययन-परम्परा शिथिल होती आ रही है। ऐसी स्थिति में अनेक वैदिक ग्रन्थों की अध्ययन-अध्यापन-परम्परा में व्यवधान आने की बात मालूम होती है। ऐसी ही स्थिति नारदीयशिक्षा की भी अवगत होती है। इस प्रकार नारदीयशिक्षा के मूल पाठ में भी कुछ स्थलों में सन्दिग्धता उत्पन्न हो गई दिखाई देती है। भारतवर्षीय हस्तलिखितग्रन्थों के आगारों में उपलभ्य नारदीयशिक्षा के हस्तलेखों में इस की ग्रन्थसंख्या १२० से २९६ तक पाई जाने की बात अन्वेषक बताते हैं। कहीं ग्रन्थ(श्लोक)संख्या १२० है तो कहीं २०० है, कहीं २४० है, कहीं २५० है, और कहीं २९६ है। हरदत्त ने सामवेदसर्वानुक्रमणी में नारदीय-शिक्षा में २३५ श्लोक रहने की बात की है। भट्टशोभाकरविवरणयुक्त सम्प्रति प्राप्त संस्करणों में तो २३८ श्लोक बताए गए हैं। किन्तु हमारे इस संस्करण में २४३ गद्यपद्यसूत्र हैं। मुद्रित संस्करणों में भी कहीं (पूना १८८६क्रै.) दो प्रपाठकों में केवल ११४ श्लोक ही रहे हुए मालूम होते हैं। इस से नारदीयशिक्षा के मूलपाठ की अव्यवस्थितता का कुछ ज्ञान हो जाता है। इस विषय में भारतवर्षीय-द्रविडदेशस्थ-मायूरक्षेत्राभिजन रामनाथ दीक्षित की **"मूलग्रन्थाश्च अशुद्धिरहिता नोपलभ्यन्ते"** यह उक्ति (सामप्रातिशाख्यसङ्ग्रह, प्रथम भाग, १९७८ क्रै., पृ.१४) भी स्मरणीय है। तथापि सामवेदीय ग्रन्थों के प्राचीन व्याख्याता भट्टशोभाकर का नारदीयशिक्षाविवरण उपलब्ध होने से इस की सहायता से नारदीयशिक्षा के प्रमाणिक पाठ को और अर्थ को समझने में थोडा बहुत अच्छा ही सहयोग मिल रहा है। भट्टशोभाकर प्राचीन और प्रामाणिक ग्रन्थकार माने जाते हैं। भट्टशोभाकर का और इन के नारदीय-शिक्षाविवरण का सामवेदसर्वानुक्रमणी में हरदत्त ने भी उल्लेख किया है। यथा–

प्रपाठकौ द्वौ शिक्षायां नारदस्य तु शैक्षकम्।
खण्डाश् च षोडश प्रोक्ता अष्टावष्टौ प्रपाठयोः॥
श्लोकेन पञ्चत्रिंशेन समं द्विशतसंख्यकम्।
अथाऽतः स्वरशास्त्राणां यवकारं समं विदुः॥
भट्टशोभाकरेणोक्तमिदङ्ग्रन्थस्य विवृतम्।

(ऋक्तन्त्र, दिल्ली, १९७०क्रै., परिशिष्ट)

यद्यपि हरदत्त ने सामवेदसर्वानुक्रमणी में स्तोभानुसंहारसूत्र का उल्लेख करते समय "**अथ स्तोभानुसंहारे चत्वारिंशच् च पाद्यकम्। आद्यन्तदर्शनस्तोभस् तत्रादौ तु प्रपठ्यते**" इस पद्य में भट्टशोभाकर के भाष्य का उल्लेख नहीं किया है, तथापि भारतवर्षीय द्रविडदेशस्थ मायूरक्षेत्राभिजन रामनाथ दीक्षित ने भट्टशोभाकर-कृत स्तोभभाष्य मुद्रित कराया है (१९८४क्रै.)। यद्यपि श्रीधर भास्कर वर्णेकर महाशय ने संस्कृतवाङ्मयकोश के ग्रन्थखण्ड में (१९८८क्रै., पृ.१६०) नारदशिक्षा पर शुभङ्कर (ई.१७ वीं शताब्दी) की टीका होने की बात लिखी है, और शुभङ्कर के अन्य ग्रन्थ सङ्गीतदामोदर, रागनिरूपण और पञ्चमसारसंहिता बताए हैं, तथापि भट्टशोभाकर को ही शुभङ्कर कहा गया है अथवा शुभङ्कर अन्य ही पुरुष हैं ज्ञात नहीं होता है। भट्टशोभाकर का विवरण प्रसिद्ध और अनेकवार मुद्रित भी है। शुभङ्कर की टीका प्रसिद्ध नहीं है। वर्णेकरजी ने भट्टशोभाकर के विवरण की चर्चा नहीं की है।

उक्त विवरण से भट्टशोभाकर सामवेद के ग्रन्थों के विज्ञ अवगत होते हैं। अतः उन के विवरण का अनुसरण करना उचित लगता है। तथापि भट्टशोभाकर-विवरण सर्वत्र सुलभ न होने से और उस का समुचित अध्ययन और विवेचनपूर्ण सम्पादन आजतक न होने से नारदीयशिक्षा का अध्ययन कठिन ही रहा है। इस प्रसङ्ग में शरच्चन्द्र श्रीधर पराञ्जपे का *'नारदीयशिक्षा में पाया जाने वाला यह ग्रामरागविषयक विवेचन न केवल गूढ अपि तु स्थूल एवं सन्दिग्ध दिखाई देता है। इन श्लोकों पर शोभाकर का भाष्य भी तद्गत गूढग्रन्थि को सुलझाने में सहायता नहीं प्रदान करता'* इत्यादि कथन (भारतीय संगीत का इतिहास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९८५क्रै., पृ.११९) भी स्मरणीय है। प्रकाशविवरणसंस्कृत-व्याख्या के विषय में भी "**मैसूरुमहाराजपाठशालाध्यापकैः श्रीनारायणस्वामिदीक्षितैः विवरणप्रकाश इति व्याख्या कृताऽस्ति। सोऽपि ग्रन्थः मूलपद्यानाम् अर्थवैशद्ये न प्रभवति**" यह मायूरक्षेत्राभिजन रामनाथ दीक्षित की उक्ति (सामप्रातिशाख्यसङ्ग्रह, प्रथम भाग, १९७८क्रै., पृ.१४) स्मरणीय है।

नारदीयशिक्षा की उक्त प्रकार की स्थिति से इस संस्करण से पूर्व मूल मात्र वा भट्टशोभाकरविवरणयुक्त वा हिन्दीभाषाटीकासहित वा अन्य संस्कृत-विवरणयुक्त वा आङ्लभाषानुवादटिप्पणीयुत जो भी नारदीयशिक्षा के संस्करण मुद्रित हुए हैं उन से नारदीयशिक्षा की पूर्ण सन्तोषजनक व्याख्या नहीं हो सकी प्रतीत होती है। अतः इस शिक्षा की और सन्तोषजनक व्याख्या प्रस्तुत करने के प्रयास की आवश्यकता वर्तमान ही है। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए इस संस्करण में यत्न किया गया है। नारदीयशिक्षा का मूलपाठ और शोभाकरविवरण

शुद्ध रूप में उपलब्ध न हो सकने से तथा नारदीयशिक्षा में वर्णित लौकिक-गाथागानपद्धति अतिप्राचीन होने से और उस की परम्परा लुप्तप्राय होने से और सामवेदियों की सामगानपद्धति में भी विभेद देखे जाने से आज नारदीयशिक्षा की पूर्ण यथार्थ व्याख्या असम्भवप्राय हो गई है। तथापि व्याख्या के लिए यथासम्भव यत्न किया गया है।

नारदीयशिक्षा के इस संस्करण को हम ने छात्रों, अनुसन्धानार्थियों तथा गानशास्त्रप्रेमियों की उपयोगिता की दृष्टि से प्रस्तुत किया है। वेदाङ्गशिक्षा के अध्ययन में अध्येताओं की अभिरुचि जगाने के लिए भूमिका में भारतवर्षीय वेदाङ्ग-शिक्षाशास्त्र का थोडा सा परिचय भी दिया गया है। नारदीयशिक्षा के अध्ययन में सौकर्य बढाने के लिए विस्तृत विषयानुक्रमणिका दी गई है। ग्रन्थ के अनुशीलन में सौविध्य बढाने के लिए ग्रन्थ का मूलपाठ पृथक् भी दिया गया है। मूलपाठ को समालोचनात्मक उपकरण से यथासम्भव शुद्ध रूप देने का प्रयास किया गया है। नारदीयशिक्षा के युगलकिशोरपाठकसम्पादित शिक्षासङ्ग्रह (१८८९-१८९३क्रै.) के पाठ में और उस के पुनर्मुद्रण (१९८९क्रै.) के पाठ में तथा दतिया के (२०२१ वै.) पाठ में जो अशुद्धियाँ और असङ्गतियाँ दिखाई दी उन को इस संस्करण में कुछ कुछ अंशों में शोभाकर के विवरण की सहायता से तथा दत्तात्रेय शास्त्री के और सत्यव्रत सामश्रमी के संस्करण की सहायता से भी यथासम्भव हटाया गया है। इस से प्रथम प्रपाठक की तृतीय कण्डिका में और पञ्चम कण्डिका में गद्य-पद्यसूत्रसङ्ख्या में भी वृद्धि हुई है। षष्ठ कण्डिका में क्षेपक को हटाया गया है। उस को द्वितीय प्रपाठक की चतुर्थ कण्डिका में यथास्थान रखा गया है। द्वितीय प्रपाठक की अष्टम कण्डिका में ३१ ही श्लोकसूत्र मुख्य रूप में माने गए हैं। "गुरुशुश्रूषया विद्या" इत्यादि ३२ वाँ सूत्र क्वाचित्क होने से उस को पृथक् प्रकार से प्रस्तुत किया गया है, उस को २८ वें सूत्र के "**शुश्रूषारहिता विद्या**" इत्यादि के साथ में रखा गया है। मूल पद्य में यदि कोई महत्त्वपूर्ण पाठान्तर दिखाई देता है तो उस का स्पष्टीकरण व्याख्या में किया गया है। नारदीयशिक्षा के श्लोकों को पाणिनीयशिक्षा, याज्ञवल्क्यशिक्षा, माण्डूकीयशिक्षा इत्यादि प्रमुख शिक्षाओं के समानार्थक सदृश श्लोकों से तुलना करके भी कहीं कहीं आवश्यक स्थल में नारदीयशिक्षा के श्लोकों के पाठों का संशोधन किया गया है। वैसे स्थलों में किए गए पाठसंशोधनों को व्याख्या में स्पष्ट करदिया गया है। बृहन्नारदीयपुराण के पूर्वार्ध के पचाशवें अध्याय में उपलब्ध नारदीयशिक्षा का पाठ भी प्रायशः भ्रष्ट ही है, तथापि कहीं कहीं

समुचिततर पाठ भी उस में उपलब्ध हैं। नारदीयशिक्षा के पाठविशेष के अवलम्बन में उस पाठ को भी विचार में रक्खा गया है।

नारदीयशिक्षा के गद्यपद्यसूत्रों की व्याख्या प्रस्तुत करते समय यथोपलब्ध सभी सामग्रियों का उपयोग किया गया है और अर्थ स्पष्ट करने की भरपूर चेष्टा की गई है।

व्याख्या में सुबोधता के लिए अन्वय, संस्कृत में शब्दार्थ प्रायः सर्वत्र और सरलार्थ तथा हिन्दीअनुवाद सर्वत्र ही दिए गए हैं। आवश्यक स्थलों में संस्कृत तथा हिन्दी दोनों भाषाओं में भी विशेष व्याख्या भी प्रस्तुत की गई है। **धार्याक्षर** इत्यादि कतिपय दुरूह शब्दों का अर्थ सप्रमाण स्पष्ट किया गया है। परिशिष्ट में शिक्षाग्रन्थों में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों की व्याख्यासहित अनुक्रमणिका देकर नारदीयशिक्षा के साथ साथ ही अन्य शिक्षाग्रन्थों के अध्ययन में भी सौविध्य बढाने का भी प्रयास किया गया है।

८. उपसंहार

हमारे प्रस्तुत प्रयास से भारतवर्षीय वेदाङ्ग शिक्षाशास्त्र के अध्ययनअनुशीलन को आगे बढाने में कुछ काम हो सकेगा यह हमारी आशा है। छात्र, अनुसन्धानार्थी, गानशास्त्री तथा भारतवर्षीय विद्याओं के प्रेमी अन्य पाठक भी हमारे इस प्रयास को सफल बनावें और भारतवर्ष की विद्यापरम्परा को सुरक्षित कर के अपना और भारतवर्ष का गौरव रक्षित करें– यही हमारी प्रार्थना है। जब परचक्री लोग भूमण्डल में अपनी आर्थिक और सैनिक सर्वश्रेष्ठता के साथ साथ शैक्षिक सांस्कृतिक तथा धार्मिक सर्वश्रेष्ठता को भी स्थापित करने के लिए विविध प्रकार से सतत प्रयत्नशील हैं उस समय में भारतवर्ष के लोगों को हरक्षेत्र में अपने गौरव को और स्वाधीनता को सुरक्षित करने के लिए जागरूक होना है। परमात्मा हम लोगों की बुद्धि को इस दिशा में प्रेरित करे।

वैदिक-मधु-शुक्लषष्ठी,
पञ्चाब्दक-वैदिकयुग का संवत्सराख्य प्रथमवर्ष,
वैदिकयुगानुसारी चान्द्र षड्विंश नन्दन संवत्सर।
५०६६ कलियुगाब्द;
सौरसायनकुम्भमास १७, बुधवार, २०५७ वैक्रमाब्द।

वेदवेदाङ्गोपाङ्गस्मृतिपुराणादिशास्त्रवशवँवदः
शिवराज आचार्यः कौण्डिन्न्यायनः

स्वाद्ध्यायशाला, च २/४१९, सरस्स्वतीमार्ग,
लाजिम्पाट्, काठमाण्डु–२, नेपाल।
☎ (००९७७-१-)४४३३३२७।

नारदीयशिक्षामूलपाठः

अथ प्रथमे प्रपाठके प्रथमा कण्डिका

अथाऽतः स्वरशास्त्राणां सर्वेषां वेदनिश्चयम्।
उच्चनीचविशेषाद् धि स्वराऽन्यत्वं प्रवर्तते॥१॥
आर्चिकं गाथिकं चैव सामिकं च स्वरान्तरम्।
कृतान्ते स्वरशास्त्राणां प्रयोक्तव्यं विशेषतः॥२॥
एकान्तरः स्वरो ह्यृक्षु गाथासु द्व्यन्तरः स्वरः।
सामसु त्र्यन्तरं विद्यादेतावत् स्वरतोऽन्तरम्॥३॥
ऋक्-साम-यजुरङ्गानि ये यज्ञेषु प्रयुञ्जते।
अविज्ञानाद् धि शास्त्राणां तेषां भवति विस्वरः॥४॥
मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥५॥
प्रहीणः स्वरवर्णाभ्यां यो विमन्त्रः प्रयुज्यते।
यज्ञेषु यजमानस्य रुषत्यायुः प्रजाम् पशून्॥६॥
उरः कण्ठः शिरश्चेति स्थानानि त्रीणि वाङ्मये।
सवनान्याहुरेतानि साम वाऽप्यर्थतोऽन्तरम्॥७॥
उरः सप्तविचारं स्यात् तथा कण्ठस् तथा शिरः।
न च सप्तोरसि व्यक्तास् तथा प्रावचनो विधिः॥८॥
कठ-कालाप-वृत्तेषु तैत्तिरीया-ऽऽह्वरकेषु च।
ऋग्वेदे सामवेदे च वक्तव्यः प्रथमः स्वरः॥९॥
ऋग्वेदस् तु द्वितीयेन तृतीयेन च वर्तते।
उच्च-मध्यम-सङ्घात-स्वरो भवति पार्थिवः॥१०॥
तृतीय-प्रथम-क्रुष्टान् कुर्वन्त्याह्वरकाः स्वरान्।
द्वितीयाद्यांस्तु मन्द्रान्तांस्तैत्तिरीयाश्चतुरः स्वरान्॥११॥
प्रथमश्च द्वितीयश्च तृतीयोऽथ चतुर्थकः।
मन्द्रः क्रुष्टो ह्यतिस्वार एतान् कुर्वन्ति सामगाः॥१२॥

द्वितीयप्रथमावेतौ ताण्डिभाल्लविनां स्वरौ।
तथा शातपथावेतौ स्वरौ वाजसनेयिनाम् ॥१३॥
एते विशेषतः प्रोक्ता स्वरा वै सार्ववैदिकाः।
इत्येतच् चरितं सर्वं स्वराणां सार्ववैदिकम् ॥१४॥

अथ प्रथमे प्रपाठके द्वितीया कण्डिका

सामवेदे तु वक्ष्यामि स्वराणां चरितं यथा।
अल्पग्रन्थं प्रभूतार्थं श्रव्यं वेदाङ्गमुत्तमम् ॥१॥
तान-राग-स्वर-ग्राम-मूर्छनानां तु लक्षणम्।
पवित्रं पावनं पुण्यं नारदेन प्रकीर्तितम् ॥२॥
शिक्षामाहुर् द्विजातीनामृग्-यजुः-सामलक्षणम्।
नारदीयमशेषेण निरुक्तमनुपूर्वशः ॥३॥
सप्त स्वरास् त्रयो ग्रामा मूर्छनास् त्वेकविंशतिः।
ताना एकोनपञ्चाशदित्येतत् स्वरमण्डलम् ॥४॥
षड्जश्च ऋषभश्चैव गान्धारो मध्यमस् तथा।
पञ्चमो धैवतश्चैव निषादः सप्तमः स्वरः ॥५॥
षड्ज-मध्यम-गान्धारास् त्रयो ग्रामाः प्रकीर्तिताः।
भूर्लोकाज् जायते षड्जो भुवर्लोकाच्च मध्यमः ॥६॥
स्वर्गान् नाऽन्यत्र गान्धारो नारदस्य मतं यथा।
स्वररागविशेषेण ग्रामरागा इति स्मृताः ॥७॥
विंशतिं मध्यमग्रामे षड्जग्रामे चतुर्दश।
तानान् पञ्चदशेच्छन्ति गान्धारग्राममाश्रितान् ॥८॥
नन्दी विशाला सुमुखी चित्रा चित्रवती सुखा।
बला या चाऽथ विज्ञेया देवानां सप्त मूर्छनाः ॥९॥
आप्यायनी विश्वभृता चन्द्रा हेमा कपर्दिनी।
मैत्री च बार्हती चैव पितृणां सप्त मूर्छनाः ॥१०॥

षड्जे तूत्तरमन्द्रा स्यादृषभे चाऽभिरुद्गता।
अश्वक्रान्ता तु गान्धारे तृतीया मूर्छना स्मृता॥११॥
मध्यमे खलु सौवीरा ह्रष्यका पञ्चमे स्वरे।
धैवते चाऽपि विज्ञेया मूर्छना तूत्तरायता॥१२॥
निषादे रजनी विद्याद् ऋषीणां सप्त मूर्छनाः।
उपजीवन्ति गन्धर्वा देवानां सप्त मूर्छनाः॥१३॥
पितृणां मूर्छनाः सप्त तथा यक्षा न संशयः।
ऋषीणां मूर्छनाः सप्त यास्त्विमा लौकिकाः स्मृताः॥१४॥
षड्जः प्रीणाति वै देवानृषीन् प्रीणाति चर्षभः।
पितॄन् प्रीणाति गान्धारो गन्धर्वान् मध्यमः स्वरः॥१५॥
देवान् पितॄनृषींश् चैव स्वरः प्रीणाति पञ्चमः।
यक्षान् निषादः प्रीणाति भूतग्रामं च धैवतः॥१६॥

अथ प्रथमे प्रपाठके तृतीया कण्डिका

गानस्य तु दशविधा गुणवृत्तिः॥१॥

तद् यथा– रक्तं पूर्णमलङ्कृतं प्रसन्नं व्यक्तं विक्रुष्टं श्लक्ष्णं समं सुकुमारं मधुरमिति गुणाः॥२॥

तत्र रक्तं नाम– वेणु-वीणा-स्वराणामेकीभावे रक्तमित्युच्यते॥३॥

पूर्णं नाम– स्वरश्रुतिपूरणाच् छन्दःपादाक्षरसंयोगात् पूर्णमित्युच्यते॥४॥

अलङ्कृतं नाम– उरसि शिरसि कण्ठयुक्तमित्यलङ्कृतमित्युच्यते॥५॥

प्रसन्नं नाम– अपगतगद्गदं निर्विशङ्कं प्रसन्नमित्युच्यते॥६॥

व्यक्तं नाम– पद-पदार्थ-प्रकृति-विकारा-ऽऽगम-लोप-कृत्-तद्धित-समास-धातु-निपातोपसर्ग-स्वर-लिङ्ग-वृत्ति-वार्त्तिक-विभक्त्यर्थ-वचनानां सम्यगुपपादने व्यक्तमित्युच्यते॥७॥

विक्रुष्टं नाम– उच्चैरुच्चारितं व्यक्तपदाक्षरं विक्रुष्ट-
मित्युच्यते॥८॥

श्लक्ष्णं नाम– अद्रुतमविलम्बितमुच्चनीचप्लुतसमाहारं
लयतालोपनयादिभिरुपपादनाभिः श्लक्ष्णमिच्युच्यते॥९॥

समं नाम– आवाप-निर्वाप-प्रदेशं प्रति अन्तरस्थानानां समासः
सममित्युच्यते॥१०॥

सुकुमारं नाम– मृदुपदं वर्णस्वरकुहरणयुक्तं सुकुमार-
मित्युच्यते॥११॥

मधुरं नाम– स्वभावोपनीत-ललित-पदाक्षर-गुणसमृद्धं
मधुरमित्युच्यते॥१२॥

एवमेतैर् दशभिर् गुणैर् युक्तं गानं भवति॥१३॥

एतद्-विपरीता गीतिदोषा उच्यन्ते॥१४॥

भवन्ति चाऽत्र श्लोकाः–

शङ्कितं भीतमुद्घृष्टमव्यक्तमनुनासिकम्।
काकस्वरं शीर्षगतं तथा स्थानविवर्जितम्॥१॥
विस्वरं विरसं चैव विश्लिष्टं विषमाहतम्।
व्याकुलं तालहीनं च गीतिदोषाश् चतुर्दश॥२॥
आचार्याः सममिच्छन्ति पदच्छेदं तु पण्डिताः।
स्त्रियो मधुरमिच्छन्ति विक्रुष्टमितरे जनाः॥३॥१५॥

अथ प्रथमे प्रपाठके चतुर्थी कण्डिका

पद्मपत्रप्रभः षड्ज ऋषभः शुकपिञ्जरः।
कनकाभस् तु गान्धारो मध्यमः कुन्दसप्रभः॥१॥
पञ्चमस् तु भवेत् कृष्णः पीतकं धैवतं विदुः।
निषादः सर्ववर्णः स्यादित्येताः स्वरवर्णताः॥२॥
पञ्चमो मध्यमः षड्ज इत्येते ब्राह्मणाः स्मृताः।
ऋषभो धैवतश् चापीत्येतौ हि क्षत्रियावुभौ॥३॥

गान्धारश्च निषादश्च वैश्यावर्धेन वै स्मृतौ।
शूद्रत्वं विद्धि चाऽर्धेन पतितत्वान् न संशयः॥४॥
ऋषभोत्थितषड्जहतो धैवतसहितश्च पञ्चमो यत्र।
निपतति मध्यमरागे तं निषादं *षाडवं* विद्यात्॥५॥
यदि पञ्चमो विरमते गान्धारश्चाऽन्तरस्वरो भवति।
ऋषभो निषादसहितस् तं *पञ्चम*मीदृशं विद्यात्॥६॥
गान्धारस्याऽऽधिपत्येन निषादस्य गतागतैः।
धैवतस्य च दौर्बल्यान् *मध्यमग्राम* उच्यते॥७॥
ईषत् स्पृष्टो निषादस् तु गान्धारश् चाऽधिको भवेत्।
धैवतः कम्पितो यत्र *षड्जग्रामं* तु निर्दिशेत्॥८॥
अन्तरस्वरसंयुक्ता काकलिर् यत्र दृश्यते।
तं तु साधारितं विद्यात् पञ्चमस्थं तु कैशिकम्॥९॥
कैशिकं भावयित्वा तु स्वरैः सर्वैः समन्ततः।
यस्मात् तु मध्यमे न्यासस्तस्मात् कैशिकमध्यमः॥१०॥
काकलिर् दृश्यते यत्र प्राधान्यं पञ्चमस्य तु।
कश्यपः कैशिकं प्राह मध्यमग्रामसम्भवम्॥११॥
गेति गेयं विदुः प्राज्ञा धेति कारुप्रवादनम्।
वेति वाद्यस्य संज्ञानं गान्धर्वस्य विरोचनम्॥१२॥

अथ प्रथमे प्रपाठके पञ्चमी कण्डिका

यः सामगानां प्रथमः स वेणोर् मध्यमः स्वरः।
यो द्वितीयः स गान्धारस् तृतीयस् त्वृषभः स्मृतः॥१॥
चतुर्थः षड्ज इत्याहुः पञ्चमो धैवतो भवेत्।
षष्ठो निषादो विज्ञेयः सप्तमः पञ्चमः स्मृतः॥२॥
षड्जं वदति मयूरो गावो रम्भन्ति चर्षभम्।
अजाविके तु गान्धारं क्रौञ्चो वदति मध्यमम्॥३॥

पुष्पसाधारणे काले कोकिला वक्ति पञ्चमम्।
अश्वस् तु धैवतं वक्ति निषादं वक्ति कुञ्जरः॥४॥
कण्ठादुत्तिष्ठते षड्जः शिरसस् त्वृषभः स्मृतः।
गान्धारस् त्वनुनासिक्य उरसो मध्यमः स्वरः॥५॥
उरसः शिरसः कण्ठादुत्थितः पञ्चमः स्वरः।
ललाटाद् धैवतं विद्यान् निषादं सर्वसन्धिजम्॥६॥
नासां कण्ठमुरस् तालु जिह्वां दन्ताँश् च संश्रितः।
षड्भिः सञ्जायते यस्मात् तस्मात् षड्ज इति स्मृतः॥७॥
वायुः समुत्थितो नाभेः कण्ठशीर्षसमाहतः।
नर्दत्यृषभवद् यस्मात् तस्मादृषभ उच्यते॥८॥
वायुः समुत्थितो नाभेः कण्ठशीर्षसमाहतः।
नासागन्धावहः पुण्यो गान्धारस् तेन हेतुना॥९॥
वायुः समुच्छ्रितो नाभेरुरोहृदि समाहतः।
नाभिं प्राप्तो महानादो मध्यमत्वं समश्नुते॥१०॥
वायुः समुत्थितो नाभेरुरोहृत्कण्ठशिरोहतः।
पञ्चस्थानोत्थितस्याऽस्य पञ्चमत्वं विधीयते॥११॥
धैवतं च निषादं च वर्जयित्वा स्वरद्वयम्।
शेषान् पञ्च स्वराँस्त्वन्यान् पञ्चस्थानोच्छ्रितान् विदुः॥१२॥
(पञ्चस्थानस्थितत्वेन सर्वस्थानानि धार्यते।)
अग्निगीतः स्वरः षड्ज ऋषभो ब्रह्मणोच्यते।
सोमेन गीतो गान्धारो विष्णुना मध्यमः स्वरः॥१३॥
पञ्चमस् तु स्वरो गीतो नारदेन महात्मना।
धैवतश् च निषादश् च गीतौ तुम्बुरुणा स्वरौ॥१४॥
आद्यस्य दैवतं ब्रह्मा षड्जस्याऽप्युच्यते बुधैः।
तीक्ष्णदीप्तिप्रकाशत्वादृषभस्य हुताशनः॥१५॥

गावः प्रगीते तुष्यन्ति गान्धारस् तेन हेतुना।
श्रुत्वा चैवोपतिष्ठन्ति सौरभेया न संशयः॥१६॥
सोमस् तु पञ्चमस्याऽपि दैवतं ब्रह्मराट् स्मृतम्।
निर्ह्रासो यच् च वृद्धिश्च ग्राममासाद्य सोमवत्॥१७॥
अति सन् धीयते यस्मादेतान् पूर्वोत्थितान् स्वरान्।
तस्मादस्य स्वरस्याऽपि धैवतत्वं विधीयते॥१८॥
निषीदन्ति स्वरा यस्मान् निषादस् तेन हेतुना।
सर्वांश् चाऽभिवत्येष यदादित्योऽस्य दैवतम्॥१९॥

अथ प्रथमे प्रपाठके षष्ठी कण्डिका

दारवी गात्रवीणा च द्वे वीणे गानजातिषु।
सामिकी गात्रवीणा तु तस्याः श्रृणुत लक्षणम्॥१॥
गात्रवीणा तु सा प्रोक्ता यस्यां गायन्ति सामगाः।
स्वरव्यञ्जनसंयुक्ता अङ्गुल्यङ्गुष्ठरञ्जिता॥२॥
हस्तौ सुसंयतौ धार्यौ जानुभ्यामुपरि स्थितौ।
गुरोरनुकृतिं कुर्याद् यथा ज्ञानमतिर् भवेत्॥३॥
प्रणवं प्राक् प्रयुञ्जीत व्याहृतीस् तदनन्तरम्।
सावित्रीं चाऽनुवचनं ततो वृत्तान्तमारभेत्॥४॥
प्रसार्य चाऽङ्गुलीः सर्वा रोपयेत् स्वरमण्डलम्।
न चाऽङ्गुलीभिरङ्गुष्ठमङ्गुष्ठेनाऽङ्गुलीः स्पृशेत्॥५॥
विरला नाऽङ्गुलीः कुर्यान् मूले चैना न संस्पृशेत्।
अङ्गुष्ठाग्रेण ता नित्यं मध्यमे पर्वणि स्पृशेत्॥६॥
मात्र-द्विमात्र-वृद्धानां विभागार्थं विभागवित्।
अङ्गुलीभिर् द्विमात्रं तु पाणेः सव्यस्य दर्शयेत्॥७॥
त्रिरेखा यत्र दृश्येत सन्धिं तत्र विनिर्दिशेत्।
स पर्व इति विज्ञेयः शेषमन्तरमन्तरम्॥८॥

यवान्तरं तु सामसु ऋक्षु कुर्यात् तिलान्तरम्।
स्वरान् मध्यमपर्वसु सुनिविष्टान् निवेशयेत्॥९॥
न चाऽत्र कम्पयेत् किञ्चिदङ्गस्याऽवयवं बुधः।
अधस्तनं मृदु न्यस्य हस्तमास्ते यथाक्रमम्॥१०॥
कूर्मोऽङ्गानीव संहृत्य चेष्टां दृष्टिं दिशं मनः।
स्वस्थः प्रशान्तो निर्भीतो वर्णानुच्चारयेद् बुधः॥११॥
नासिकायास् तु पूर्वेण हस्तं गोकर्णवद् धरेत्।
निवेश्य दृष्टिं हस्ताग्रे शास्त्रार्थमनुचिन्तयेत्॥१२॥
सममुच्चारयेद् वाक्यं हस्तेन च मुखेन च।
यथैवोच्चारयेद् वर्णांस् तथैवैनान् समापयेत्॥१३॥
नाऽत्याहन्यान् न निर्हण्यान् न प्रगायेन् न कम्पयेत्।
समं सामानि गायेत व्योम्नि श्येनगतिर् यथा॥१४॥
यथाऽप्सु चरतां मार्गो मीनानां नोपलभ्यते।
आकाशे वा विहङ्गानां तद्वत् स्वरगता श्रुतिः॥१५॥
यथा दधनि सर्पिः स्यात् काष्ठस्थो वा यथाऽनलः।
प्रयत्नेनोपलभ्येत तद्वत् स्वरगता श्रुतिः॥१६॥
स्वरात् स्वरं सङ्क्रामँस् तु स्वरसन्धिमनुल्बणम्।
अविच्छिन्नं समं कुर्यात् सूक्ष्मं छायाऽऽतपोपमम्॥१७॥
अनागतमतिक्रान्तं विच्छिन्नं विषमाहतम्।
तन्वन्तमस्थितान्तं च वर्जयेत् कर्षणं बुधः॥१८॥
स्वरः स्थानाच् च्युतो यस् तु स्वस्थानमतिवर्तते।
विस्वरं सामगा ब्रूयुर् विरक्तमिति वीणिनः॥१९॥
अभ्यासार्थे द्रुतां वृत्तिं प्रयोगार्थे तु मध्यमाम्।
शिष्याणामुपदेशार्थे कुर्याद् वृत्तिं विलम्बिताम्॥२०॥
गृहीतग्रन्थ एवं तु ग्रन्थोच्चारणशिक्षकान्।
हस्तेनाऽध्यापयेच् छिष्यान् शैक्षेण विधिना द्विजः॥२१॥

अथ प्रथमे प्रपाठके सप्तमी कण्डिका

क्रुष्टस्य मूर्धनि स्थानं ललाटे प्रथमस्य तु।
भ्रुवोर् मध्ये द्वितीयस्य तृतीयस्य तु कर्णयोः॥१॥
कण्ठः स्थानं तु तुर्यस्य मन्द्रस्योरसि तूच्यते।
अतिस्वारस्य नीचस्य हृदि स्थानं विधीयते॥२॥
अङ्गुष्ठस्योत्तमे क्रुष्टोऽङ्गुष्ठे तु प्रथमः स्वरः।
प्रदेशिन्यां तु गान्धार ऋषभस् तदनन्तरम्॥३॥
अनामिकायां षड्जस् तु कनिष्ठायां च धैवतः।
तस्याऽधस्ताच्च याऽन्या तु निषादं तत्र विन्यसेत्॥४॥
अपर्वत्वादसंज्ञत्वादव्ययत्वाच् च नित्यशः।
मन्द्रो हिनुहिभूतस् तु परिस्वार इति स्मृतः॥५॥
क्रुष्टेन देवा जीवन्ति प्रथमेन तु मानुषाः।
पशवस् तु द्वितीयेन गन्धर्वाऽप्सरसस् त्वनु॥६॥
आण्डजाः पितरश् चैव चतुर्थस्वरजीविनः।
मन्द्रं चैवोपजीवन्ति पिशाचा-ऽसुर-राक्षसाः॥७॥
अतिस्वारेण नीचेन जगत् स्थावरजङ्गमम्।
सर्वाणि खलु भूतानि धार्यन्ते सामिकैः स्वरैः॥८॥
दीप्ता-ऽऽयता-करुणानां मृदु-मध्यमयोस् तथा।
श्रुतीनां योऽविशेषज्ञो न स आचार्य उच्यते॥९॥
दीप्ता मन्द्रे द्वितीये च प्र चतुर्थे तथैव तु।
अतिस्वारे तृतीये च क्रुष्टे तु करुणा श्रुतिः॥१०॥
श्रुतयोऽन्या द्वितीयस्य मृदु-मध्या-ऽऽयताः स्मृताः।
तासामपि तु वक्ष्यामि लक्षणानि पृथक्पृथक्॥११॥
आयतात्वं भवेन् नीचे मृदुत्वं तु विपर्यये।
स्वे स्वरे मध्यमत्वं तु तत् समीक्ष्य प्रयोजयेत्॥१२॥

द्वितीये विरता या तु क्रुष्टस्य परतो भवेत्।
दीप्तां तां तु विजानीयात् प्रथमेन मृदुः स्मृता ॥१३॥
अत्रैव विरता या तु चतुर्थेन प्रवर्तते।
तथा मन्द्रे भवेद् दीप्ता साम्नश् चैव समापने ॥१४॥
नाऽविरते श्रुतिं कुर्यात् स्वरयोर् नाऽपि चाऽन्तरे।
न च ह्रस्वे च दीर्घे च न चाऽपि घुटसञ्ज्ञके ॥१५॥
द्विविधा गतिः पदान्तः स्थितसन्धिः सहोष्मभिः।
पञ्चस्वेतेषु स्थानेषु विज्ञेयं घुटसञ्ज्ञितम् ॥१६॥
स्वरान्तराऽविरतानि ह्रस्व-दीर्घ-घुटानि च।
श्रुतिस्थानेष्वशेषाणि श्रुतिवत् स्वरतो भवेत् ॥१७॥
दीप्तामुदात्ते जानीयाद् दीप्तां च स्वरिते विदुः।
अनुदात्ते मृदुर् ज्ञेया गान्धर्वाः श्रुतिसम्पदः ॥१८॥
उदात्तश् चाऽनुदात्तश् च स्वरित-प्रचिते तथा।
निघातश् चेति विज्ञेयः स्वरभेदस् तु पञ्चधा ॥१९॥

अथ प्रथमे प्रपाठके अष्टमी कण्डिका

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि आर्चिकस्य स्वरत्रयम्।
उदात्तश् चाऽनुदात्तश् च तृतीयः स्वरितः स्वरः ॥१॥
य एवोदात्त इत्युक्तः स एव स्वरितात् परः।
प्रचयः प्रोच्यते तज्ज्ञैर् न चाऽत्राऽन्यत् स्वरान्तरम् ॥२॥
वर्णस्वारोऽतीतस्वारः स्वरितो द्विविधः स्मृतः।
मात्रिको वर्ण एवं तु दीर्घस् तूच्चरितादनु ॥३॥
स तु सप्तविधो ज्ञेयः स्वारः प्रत्ययदर्शनात्।
पदेन तु स विज्ञेयो भवेद् यो यत्र यादृशः ॥४॥
सप्त स्वरान् प्रयुञ्जीत दक्षिणं श्रवणं प्रति।
आचार्यैर् विहितं शास्त्रं पुत्त्रशिष्यहितैषिभिः ॥५॥

उच्चादुच्चतरं नास्ति नीचान् नीचतरं तथा।
त्रैस्वर्ये स्वारसञ्ज्ञायां किंस्थानः स्वार उच्यते॥६॥
उच्चनीचस्य यन् मध्ये साधारणमिति श्रुतिः।
तं स्वारं स्वारसञ्ज्ञायां प्रतिजानन्ति शैक्षिकाः॥७॥
उदात्ते निषाद-गान्धारावनुदात्त ऋषभ-धैवतौ।
स्वरितप्रभवा ह्येते षड्ज-मध्यम-पञ्चमाः॥८॥
यत्र कखपरा ऊष्मा जिह्वामूलप्रयोजना।
तामथाऽऽज्ञापयेन् मात्रां प्रकृत्यैव तु सा कला॥९॥
जात्यः क्षैप्रोऽभिनिहितस् तैरोव्यञ्जन एव च।
तिरोविरामः प्रश्लिष्टः पादवृत्तश् च सप्तमः॥१०॥
स्वराणामहमेतेषां पृथग् वक्ष्यामि लक्षणम्।
उद्दिष्टानां यथान्यायमुदाहरणमेव च॥११॥

अथ द्वितीये प्रपाठके प्रथमा कण्डिका

स-यकारं स-वं वाऽपि अक्षरं स्वरितं भवेत्।
न चोदात्तं पुरस् तस्य जात्यः स्वारः स उच्यते॥१॥
इ-उ-वर्णौ यदोदात्तावापद्येते य-वौ क्वचित्।
अनुदात्ते प्रत्यये तद् विद्यात् क्षैप्रस्य लक्षणम्॥२॥
ए-ओ आभ्यामुदात्ताभ्यामकारो निहतश्च यः।
अकारं यत्र लुम्पन्ति तमभिनिहितं विदुः॥३॥
उदात्तपूर्वं यत् किञ्चिच् छन्दसि स्वरितं भवेत्।
एष सर्वबहुस्वारस् तैरोव्यञ्जन उच्यते॥४॥
अवग्रहात् परं यत्र स्वरितं स्यादनन्तरम्।
तिरोविरामं तं विद्यादुदात्तो यद्यवग्रहः॥५॥
इकारं यत्र पश्येयुरिकारेणैव संयुतम्।
उदात्तमनुदात्तेन प्रश्लिष्टं तं निबोधत॥६॥

स्वरे चेत् स्वरितं यत्र विवृता यत्र संहिता।
एतत् पादान्तवृत्तस्य लक्षणं शास्त्रचोदितम्॥७॥
जात्यः स्वारः सजात्येन श्रुष्ट्यग्ने क्षैप्र उच्यते।
तेऽमन्वताऽभिनिहितस् तैरोव्यञ्जन ऊतये॥८॥
तिरोविरामो विष्कभिते प्राश्लिष्टो हीन्द्र गिर्वणः।
पादवृत्तः क ईं वेद स्वाराः सप्तैवमादयः॥९॥
उच्चादेकाक्षरात् पूर्वात् स्वर्यते यदिहाक्षरम्।
स्वाराणां जात्यवर्ज्यानामेषा प्रकृतिरुच्यते॥१०॥
चत्वारस् त्वादितः स्वाराः कम्पं पुष्यन्ति शास्त्रतः।
उदात्ते वैकनीचे वा जुह्वो३ऽग्ने तत्र दर्शनम्॥११॥

अथ द्वितीये प्रपाठके द्वितीया कण्डिका

इकारान्ते पदे पूर्वे उकारे परतः स्थितेः।
ह्रस्वं कम्पं विजानीयान् मेधावी नाऽत्र संशयः॥१॥
इकारान्ते पदे चैवोकारद्वयपदे परे।
दीर्घं कम्पं विजानीयाच् शग्ध्यूष्विति निदर्शनम्॥२॥
त्रयो दीर्घास् तु विज्ञेया ये च सन्ध्यक्षरेषु वै।
समन्या पथ्या इन्द्राभ्या शेषा ह्रस्वाः प्रकीर्तिताः॥३॥
अनेकानामुदात्तानामनुदात्तः परो यदि।
शिवकं तं विजानीयादुदात्तः प्रत्ययो यदि॥४॥
यत्र द्विप्रभृतीनि स्युरुदात्तान्यक्षराणि तु।
नीचं चोच्चं च परतस् तत्रोदात्तं विदुर् बुधाः॥५॥
न रेफे वा हकारे वा द्विर्भावो जायते क्वचित्।
न च वर्गद्वितीयेषु न चतुर्थे कदाचन॥६॥
चतुर्थं तु तृतीयेन द्वितीयं प्रथमेन तु।
आद्यमन्त्यं च मध्यं च स्वाक्षरेणैव पीडयेत्॥७॥

अनन्त्यश् च भवेत् पूर्वो अन्त्यश् च परतो यदि।
तत्र मध्ये यमस् तिष्ठेत् सवर्णः पूर्ववर्णयोः॥८॥
वर्गान्त्याञ् छषसैः सार्धमन्तस्थैर् वाऽपि संयुतान्।
दृष्ट्वा यमा निवर्तन्ते आदेशिकमिवाऽध्वगाः॥९॥
तृतीयश् च चतुर्थश् च चतुर्थादि परं पदम्।
द्वौ तृतीयौ चतुर्थश् च हकारादि परं पदम्॥१०॥
अनुस्वारोपध्ममूलानां क्वचित् क्रमते परम्।
रहपूर्वे संयुते चाऽप्युत्तरं क्रमतेऽक्षरम्॥११॥
संयोगे स्वरितं यत्र चोद्घाते पतने यथा।
पूर्वाङ्गमादितः कृत्वा पराङ्गादौ निवेशयेत्॥१२॥
संयोगे यत्र दृश्येत व्यञ्जनं विरते पदे।
पूर्वाङ्गं तद् विजानीयाद् येनाऽऽरम्भस् तत् पराङ्गम्॥१३॥
संयोगात् तु परं स्वर्यं परं संयोगनायकम्।
संयुक्तस्य तु वर्णस्य त्वस्वरं पूर्वमक्षरम्॥१४॥
अनुस्वारः पदान्तश् च क्रमजः प्रत्यये स्वके।
स्वरभक्तिस् तथा रेफः सर्वं पूर्वाङ्गमुच्यते॥१५॥
पादादौ च पदादौ च संयोगाऽवग्रहेषु च।
यशब्द (जशब्द) इति विज्ञेयो योऽन्यः स य इति स्मृतः॥१६॥
पदादावप्यविच्छेदे संयोगान्ते च तिष्ठताम्।
वर्जयित्वा रहयाणां न जादेशः प्रदृश्यते॥१७॥
स्वसंयुक्तो गुरुर् ज्ञेयः साऽनुस्वाराग्रिमः स्फुटः।
अणुशेषोऽध्रिगोर् वाऽपि युगलादिरविस्फुटः॥१८॥

अथ द्वितीये प्रपाठके तृतीया कण्डिका

यदुदात्तमुदात्तं तद् यत् स्वरितं तत् पदे भवति नीचम्।
यन् नीचं नीचमेव तद् यत् प्रचयस्थं तदपि नीचम्॥१॥

अयमग्निः सुतो मित्रमिदं वयमया वहाः।
प्रियं दूतं घृतं चित्तमभिशब्दश् च नीचतः॥२॥
अर्केष्वेव सुतेष्वेव यज्ञेषु कलशेषु च।
शतेषु सपवित्रेषु नीचादुच्चार्यते श्रुतिः॥३॥
हरि-वरुण-वरेण्येषु धारा-पुरुषेषु च स्वरति रेफः।
विश्वानरे नकारश् च शेषा रस्वरिता नराः॥४॥
द्वौ वरुणौ वस्वरितावुदुत्तमन्-त्वंवरुणौ।
धाकारे चोरुधारायामुरुधारेव दोहने॥५॥
मात्रिकं वा द्विमात्रं वा स्वर्यते यदिहाऽक्षरम्।
तस्याऽऽदितोऽर्धमात्रा वै शेषं तु परतो भवेत्॥६॥
अदीर्घं दीर्घवत् कुर्याद् द्विस्वरं यत् प्रयुज्यते।
कम्पोत्स्वरिताऽभिगीतं ह्रस्वकर्षणमेव च॥७॥
निमेषकाला मात्रा स्याद् विद्युत्कालेति चाऽपरे।
ऋस्वरा तुल्ययोगा वा मतिः स्यात् सोमशर्मणः॥८॥
समासेऽवग्रहं कुर्यात् पदं चाऽत्राऽनुसंहितम्।
यतोऽक्षरादिकरणं पदान्तं तस्य तं विदुः॥९॥
सर्वत्र पुत्र-मित्र-सखिशब्दा अद्रिशतक्रतुरवग्राह्याः।
आदित्य-विप्र-जातवेदाश्च सत्पति-गोपति-वृत्रहा समुद्रश्च।१०।
स्वर्युवो देवयवश्चाऽरतिं देवतातये।
चिकितिश् चुक्रुधं चैव नाऽवगृह्णन्ति पण्डिताः॥११॥

अथ द्वितीये प्रपाठके चतुर्थी कण्डिका

विवृत्तयश् चतस्रो वै विज्ञेया इति मे मतम्।
अक्षराणां नियोगेन तासां नामानि मे शृणु॥१॥
ह्रस्वादिर् वत्सानुसृता वत्सानुसारिणी चाऽग्रे।
पाकवत्युभयोर् ह्रस्वा दीर्घवृद्धा पिपीलिका॥२॥

चतसृणां विवृत्तीनामन्तरं मात्रिकं भवेत्।
अर्धमात्रिकमन्येषामन्येषामणुमात्रिकम् ।।३।।
अभ्रमध्ये यथा विद्युद् दृश्यते मणिसूत्रवत्।
एष च्छेदो विवृत्तीनां यथा वालेषु कर्तरी।।४।।
आपद्यते मकारो रेफोष्मसु प्रत्ययेष्वनुस्वारम्।
यलवेषु परसवर्णं स्पर्शेषु चोत्तमापत्तिम् ।।५।।
नकारान्ते पदे पूर्वे स्वरे च परतः स्थिते।
आकारं रक्तमित्याहुर् नकारेण तु रज्यते।।६।।
नकारान्ते पदे पूर्वे व्यञ्जनैश् च यवोह्विषु।
अर्धमात्रा तु पूर्वस्य रज्यते त्वणुमात्रया।।७।।
नकारः स्वरसंयुक्तश् चतुर्युक्तो विधीयते।
रेफो रङ्गश् च लोपश् च अनुस्वारोऽपि वा क्वचित् ।।८।।
हृदयादुत्तिष्ठते रङ्गः कांस्येन समनिःस्वनः।
मृदुश् चैव द्विमात्रश् च दधन्वाँ इति दर्शनम् ।।९।।
यथा सौराष्ट्रिका नारी तक्रऽाँ इत्यभिभाषते।
एवं रङ्गः प्रयोक्तव्यो नारदस्य मतं यथा।।१०।।

अथ द्वितीये प्रपाठके पञ्चमी कण्डिका

स्वरा गडदबाश् चैव ङणनमाः सहोष्मभिः।
चतुर्णां पदजातीनां पदान्ता दश कीर्तिताः।।१।।
स्वर उच्चः स्वरो नीचः स्वरः स्वरित एव च।
व्यञ्जनान्यनुवर्तन्ते यत्र तिष्ठति स स्वरः।।२।।
स्वरप्रधानं त्रैस्वर्यमाचार्याः प्रतिजानते।
मणिवद् व्यञ्जनं विद्यात् सूत्रवच् च स्वरं विदुः।।३।।
दुर्बलस्य यथा राष्ट्रं हरते बलवान् नृपः।
दुर्बलं व्यञ्जनं तद्वद् धरते बलवान् स्वरः।।४।।

ओभावश्च विवृत्तिश् च शषसा रेफ एव च।
जिह्वामूलमुपध्मा च गतिरष्टविधोष्मणः॥५॥
स्वरप्रत्यया विवृत्तिः संहितायां तु या भवेत्।
विसर्गस् तत्र मन्तव्यस् तालव्यो वाऽत्र जायते॥६॥
सन्ध्यक्षरोपधे सन्धौ प्राप्तलुप्तौ यवौ यदि।
व्यञ्जनाख्या विवृत्तिस् तु स्वराख्या प्रकृतिसंहिता॥७॥
ऊष्मान्तं विरते यत्र सन्धावो भवते च यत्।
विवृत्तिर् या भवेत् तत्र स्वराख्यां तां विनिर्दिशेत्॥८॥
यद्योभावप्रसन्धानमुकारादिपरं पदम्।
स्वरान्तं तादृशं विद्याद् यदन्यद् व्यक्तमूष्मणः॥९॥
प्रथमा उत्तमाश् चैव पदान्तेषु यदि स्थिताः।
द्वितीयं स्थानमापन्नाः शषसाः प्रत्यया यदि॥१०॥
प्रथमानूष्मसंयुक्तान् द्वितीयानिव दर्शयेत्।
न चैनान् प्रतिजानीयाद् यथा मत्स्यः क्षुरोऽप्सरा॥११॥

अथ द्वितीये प्रपाठके षष्ठी कण्डिका

छन्दो मानं च वृत्तं च पादस्थानं त्रिकारणम्।
ऋचः स्वच्छन्दवृत्तास् तु पादास् त्वक्षरमानतः॥१॥
ऋवर्णं स्वरभक्तिं च च्छन्दोमानेन निर्दिशेत्।
प्रत्ययेन सहाऽरेफं मिमीत स्वरभक्तिषु॥२॥
ऋवर्णे तु पृथग् रेफः प्रत्ययस् तु पृथग् भवेत्।
विद्याल् लघुमृकारं तु संयुतो यदि नोष्मणा॥३॥
ऊष्मणैव हि संयुक्त ऋकारो यत्र पीड्यते।
गुरुवर्णः स विज्ञेयः शृतासोऽत्राऽनुदर्शनम्॥४॥
ऋषभं च गृहीतं च बृहस्पतिं पृथिव्यां च।
निर्ऋतिपञ्चमा ह्यत्र ऋकारा नाऽत्र संशयः॥५॥

श-ष-स-ह-रादौ रेफः स्वरभक्तिर् जायते द्विपदा सन्धौ।
इ-उ-वर्णाभ्यां हीना क्वचिदेकपदा क्रमवियुक्ता॥६॥
स्वरभक्तिस् तु द्विविधा ऋकारो रेफ एव च।
स्वरोदा व्यञ्जनोदा च विहिताऽक्षरचिन्तकैः॥७॥
शषसेषु स्वरोदयां हकारे व्यञ्जनोदयाम्।
शषसेषु विवृतां तु हकारे संवृतां विदुः॥८॥
स्वरभक्तिं प्रयुञ्जानस् त्रीन् दोषान् परिवर्जयेत्।
इकारं वाऽप्युकारं च ग्रस्तदोषं तथैव च॥९॥
संयोगपरं छपरं विसर्जनीयं द्विमात्रिकं चैव।
अवसानिकं च न लघु साऽनुस्वारं घुटान्तं च॥१०॥

अथ द्वितीये प्रपाठके सप्तमी कण्डिका

पथ्यापादः प्रथमो द्वादशमात्रस् तथा तृतीयोऽपि।
अष्टादशो द्वितीयः समापनः पञ्चदशमात्रः॥१॥
पथ्यालक्षणमुक्तं या त्वन्या सा स्मृता विपुला।२॥
अक्षराणां लघु ह्रस्वमसंयोगपरं यदि।
तत् संयोगोत्तरं विद्याद् गुरु दीर्घाक्षरं च हि॥३॥
विवृत्तिर् यत्र दृश्येत स्वरस्यैवाऽग्रतः स्थिता।
गुरुः स्वरः स विज्ञेयः क्षैप्रस् तत्र न विद्यते॥४॥
अन्तोदात्तमाद्युदात्तमुदात्तमनुदात्तं नीचस्वरितम्।
मध्योदात्तं स्वरितं द्विरुदात्तमित्येता अष्टौ पदसंज्ञाः॥५॥
अष्टप्रकारं विज्ञेयं पदानां स्वरलक्षणम्।
अग्निः सोमः प्र वो वीर्यं हविषा स्वर् वनस्पतिः॥६॥
अन्तमध्यमयोर् नापि उदमनुदनिपाते।
आद्यात् स्वरितमुपसर्गे द्विर् नीचमाख्यात इति॥७॥

स्वरितात् पराणि यानि तानि धार्याक्षराणि तु।
सर्वाणि प्रचयस्थानि उपोदात्तं निहन्यते॥८॥
प्रचयो यत्र दृश्येत तत्र हन्यात् स्वरं बुधः।
स्वरितः केवलो यत्र मृदुं तत्र निपातयेत्॥९॥
पञ्चविधमाचार्यकं नाम मुखं न्यासः करणं प्रतिज्ञोच्चारणा।१०।
अत्रोच्यते श्रेयः खलु वै सप्रतिज्ञोच्चारणा॥११॥
यस्य कस्य चिद् वर्णस्य करणं नोपलभ्यते।
प्रतिज्ञा तत्र वोढव्या करणं हि तदात्मकम्॥१२॥
तुम्बुरु-नारद-वसिष्ठ-विश्वावस्वादयश् च गन्धर्वाः।
सामसु निभृतं करणं स्वरसौक्ष्म्यात् तेऽपि हि न कुर्युः॥१३॥

अथ द्वितीये प्रपाठके अष्टमी कण्डिका

कौक्षेयाऽग्निं सदा रक्षेदश्नीयादशनं हितम्।
जीर्णाहारः प्रबुद्धः सन्नुषसि ब्रह्म चिन्तयेत्॥१॥
शरद्विषुवतोऽतीतादुषस्युत्थानमिष्यते।
यावद् वासन्तिकी रात्रिर् मध्यमा पर्युपस्थिता॥२॥
आम्रपौलासबिल्वानामपामार्गशिरीषयोः।
वाग्यतः प्रातरुत्थाय भक्षयेद् दन्तधावनम्॥३॥
खदिरस्य कदम्बस्य करवीर-करञ्जयोः।
सर्वे कण्टकिनः पुण्याः क्षीरिणश्च यशस्विनः॥४॥
तेनाऽस्य करणे सौक्ष्म्यं माधुर्यं चोपजायते।
वर्णांश् च कुरुते सम्यक् प्राचीनौदव्रजिर् यथा॥५॥
त्रिफलां लवणाख्येन भक्षयेच् छिक्षकः सदा।
अग्निमेधाजननन्येषा स्वरवर्णकरी तथा॥६॥
कृत्वा चाऽऽवश्यकान् धर्मान् जाठरं पर्युपास्य च।
पीत्वा धूमं घृतं चैव शुचिर् भूत्वा ततो वदेत्॥७॥

मन्द्रेणोपक्रमेत् पूर्वं सर्वशाखास्वयं विधिः।
सप्त मन्त्राननतिक्रम्य यथेष्टां वाचमुत्सृजेत्॥८॥
न तां समीरयेद् वाचं या प्राणमुपरोधयेत्।
प्राणानामुपरोधेन वैस्वर्यं चोपजायते।
स्वरव्यञ्जनमाधुर्यं लुप्यते नाऽत्र संशयः॥९॥
कुतीर्थादागतं दग्धमपवर्णं च भक्षितम्।
न तस्य पाठे मोक्षोऽस्ति पापाहेरिव किल्बिषात्॥१०॥
सुतीर्थादागतं व्यक्तं स्वाम्नातं सुव्यवस्थितम्।
सुस्वरेण सुवक्त्रेण प्रयुक्तं ब्रह्म राजते॥११॥
न करालो न लम्बोष्ठो न च सर्वानुनासिकः।
गद्गदो बद्धजिह्वश् च प्रयोगान् वक्तुमर्हति॥१२॥
एकचित्तो निरुद्भ्रान्तस् तान-गान-विवर्जितः।
स तु वर्णान् प्रयुञ्जीत दन्तोष्ठं यस्य शोभनम्॥१३॥
पञ्च विद्यां न गृह्णन्ति चण्डाः स्तब्धाश् च ये नराः।
अलसाश् चाऽनरोगाश् च येषां च विसृतं मनः॥१४॥
शनैर् विद्यां शनैरर्थानारोहेत् पर्वतं शनैः।
शनैरध्वसु वर्तेत योजनानां परं व्रजेत्॥१५॥
योजनानां सहस्राणि शनैर् याति पिपीलिका।
अगच्छन् वैनतेयोऽपि पदमेकं न गच्छति॥१६॥
न हि पार्ष्णिहता वाणी प्रयोगान् वक्तुमर्हति।
बधिरस्येव तल्पस्था विदग्धा वामलोचना॥१७॥
उपांशु त्वरितं चैव योऽधीते वित्रसन्निव।
अपि रूपसहस्रेषु सन्देहेष्वेव वर्तते॥१८॥
पुस्तकप्रत्ययाऽधीतं नाऽधीतं गुरुसन्निधौ।
राजते न सभामध्ये जारगर्भा इव स्त्रियः॥१९॥
अञ्जनस्य क्षयं दृष्ट्वा वल्मीकस्य तु सञ्चयम्।
अवन्ध्यं दिवसं कुर्याद् दानाऽध्ययनकर्मसु॥२०॥

यत् कीटैः पांसुभिः श्लक्ष्णैर् वल्मीकः क्रियते महान्।
न तत्र बलसामर्थ्यमुद्योगस् तत्र कारणम्॥२१॥
सहस्रगुणिता विद्या शतशः परिकीर्तिता।
आगमिष्यति जिह्वाग्रे स्थलान् निम्नमिवोदकम्॥२२॥
हयानामिव जात्यानामर्धरात्रार्धशायिनाम्।
न हि विद्यार्थिनां निद्रा चिरं नेत्रेषु तिष्ठति॥२३॥
न भोजनविलम्बी स्यान् न चाऽशननिबन्धनः।
सुदूरमपि विद्यार्थी व्रजेद् गरुडहंसवत्॥२४॥
योऽहेरिव गणाद् भीतः सौहित्यान् नरकादिव।
राक्षसीभ्य इव स्त्रीभ्यः स विद्यामधिगच्छति॥२५॥
न शठाः प्राप्नुवन्त्यर्थान् न क्लीबा न च मानिनः।
न च लोकरवाद् भीता न च श्वःश्वः प्रतीक्षकाः॥२६॥
यथा खनन् खनित्रेण भूतले वारि विन्दति।
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति॥२७॥
शुश्रूषारहिता विद्या यद्यपि मेधागुणैः समुपयाति।
वन्ध्येव यौवनवती न तस्य विद्या फलवती भवति॥२८॥
गुरुशुश्रूषया विद्या पुष्कलेन धनेन वा।
अथवा विद्यया विद्या चतुर्थेन न लभ्यते॥२९॥
द्यूतं पुस्तकवाच्यं च नाटकेषु च सक्तिका।
स्त्रियस् तन्द्रा च निद्रा च विद्याविघ्नकराणि षट्॥३०॥
यथा व्याघ्री हरेत् पुत्रान् दंष्ट्राभिर् न च पीडयेत्।
भीता पतनभेदाभ्यां तद्वद् वर्णान् प्रयोजयेत्॥३१॥
एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या नाऽव्यक्ता न च पीडिताः।
सम्यग्वर्णप्रयोगेण ब्रह्मलोके महीयते॥३२॥

॥ इति नारदीयशिक्षामूलपाठः॥

अथ

नारदीयशिक्षा

{शिक्षाविवेचन्याख्यया संस्कृतव्याख्यया नारायण्याख्यया हिन्दीव्याख्यया च समेता}

ओउम् नमो वागीश्वराय।

सरस्वतीं च ब्रह्माणं लक्ष्मीं नारायणं तथा।
शिवां शिवं तथाऽम्बां च पितरं कलये हृदि॥
शिक्षाया नारदीयाया व्याख्या शिक्षाविवेचनी।
क्रियतेऽविशदां दृष्ट्वा शोभाकरकृतिं स्फुटा॥

अथ प्रथमे प्रपाठके प्रथमा कण्डिका

सामवेदवित् कोऽपि नारदमतानुयायी प्राचीन आचार्यः ताण्डिकौथुम-राणायनीयसामवेदाध्यायिनां द्विजानामुपकाराय अथाऽतः स्वरशास्त्राणामित्या-दिकां शिक्षां प्रणयति–

अथाऽतः स्वरशास्त्राणां सर्वेषां वेदनिश्चयम्।
उच्चनीचविशेषाद् धि स्वराऽन्यत्वं प्रवर्तते॥१॥

अन्वयः– अथ अतः सर्वेषाम् स्वरशास्त्राणाम् वेदनिश्चयम् (वक्ष्यामि)। उच्च-नीचविशेषात् हि स्वरान्यत्वं प्रवर्तते।

शब्दार्थः– अथ=वेदप्रवचनाऽनन्तरम्, अतः=स्वरशास्त्रोपदेशस्य सप्रयोजनत्वात्, सर्वेषाम्=निखिलानाम्, स्वरशास्त्राणाम्=स्वरानुशासनानाम्, वेदनिश्चयम्=वेदानुकूलं निर्णयम् (वक्ष्यामि=कथयिष्यामि)। उच्चनीचविशेषात्=उच्चत्वे नीचत्वे च तारतम्यात्, हि=अवश्यम्, स्वराणाम्=उदात्तादीनां क्रुष्टादीनां षड्जादीनां च स्वरविशेषाणाम्, अन्यत्वम्=पृथक्त्वम्, प्रवर्तते=समुत्पद्यते।

सरलार्थः– वेदप्रवचनानन्तरं स्वरशास्त्रोपदेशस्य आवश्यकत्वाद् अहं निखिलानाम् आर्चिक-सामिक-गाथिकस्वरानुशासनानां वेदाध्ययनोपकाराय

निर्णयं वक्ष्यामि। तत्र स्वरेषु उच्चत्वे नीचत्वे च तारतम्याद् हि उदात्तादीनां क्रुष्टादीनां षड्जादीनां च स्वरविशेषाणां परस्परं वैलक्षण्यं समुत्पद्यते।

विशेषः– अत्र 'वेदनिश्चयम्' इत्यस्य स्थाने 'वच्मि निश्चयम्' इति पाठान्तरं शोभाकरेणोल्लिखितमस्ति।

हिन्दी– वेदप्रवचन के बाद स्वरशास्त्रोपदेश आवश्यक होने से मैं सभी ऋचासम्बन्धी, सामसम्बन्धी और गानसम्बन्धी स्वरों के अनुशासनों का वेदानुकूल निर्णय बताउँगा। स्वरों में उच्चत्व (तारत्व) और नीचत्व (मन्द्रत्व) में तर-तमभाव होने से ही उदात्तादि क्रुष्टादि और निषादादि स्वरों में परस्पर विलक्षणता आती है॥१॥

आर्चिकं गाथिकं चैव सामिकं च स्वरान्तरम्।
कृतान्ते स्वरशास्त्राणां प्रयोक्तव्यं विशेषतः॥२॥

अन्वयः– स्वरशास्त्राणाम् कृतान्ते आर्चिकम् गाथिकम् च एव सामिकम् च स्वरान्तरम् विशेषतः प्रयोक्तव्यम्।

शब्दार्थः– स्वरशास्त्राणाम्=उदात्तादि-षड्जादि-क्रुष्टादिस्वरप्रतिपादकानां शास्त्राणाम्, कृतान्ते=सिद्धान्ते, आर्चिकम्=ऋक्सम्बन्धि, गाथिकम्=गाथासम्बन्धि, च=अपि, एव=हि, सामिकम्=सामसम्बन्धि, च=अपि, स्वरान्तरम्=स्वरवैशेष्यम्, विशेषतः=स्पष्टभेदेन, प्रयोक्तव्यम्=उच्चारणीयम्।

सरलार्थः– उदात्तादि-षड्जादि-क्रुष्टादि-स्वरप्रतिपादकानां शास्त्राणां सिद्धान्ते ऋक्सम्बद्धं गाथासम्बद्धं सामसम्बद्धं चापि स्वरवैशेष्यं स्पष्टरूपेण भिन्नतयोच्चारणीयं स्वीक्रियते।

विशेषः– यद्यपि आर्चिक-गाथिक-सामिकाः सर्वेऽपि स्वराः उच्च-नीचविशेषेणैव स्वस्ववैशिष्ट्यं लभन्ते तथाऽपि तेषां प्रयोगे स्वस्ववैशिष्ट्येन योगात् ते भिद्यन्ते इति ज्ञेयम्। एवं हि गान-पाठभेदप्रतिपादनं कौण्डिन्न्यायन-शिक्षायां स्वरनिरूपणाध्याये (श्लो. ४९) कृतम्–

ग्रामोत्थमूर्छनातानरागयोगविशेषतः।
गानम् पाठात् पृथक् तुल्या उभयोर् यद्यपि स्वराः॥ इति।

प्रायेणैवमेवोक्तं भरतनाट्यशास्त्राभिनवभारत्याम् अभिनवगुप्तेन "उदात्तानुदात्तस्वरितकम्पितरूपतया स्वराणां यद् रक्तिप्रधानत्वम् अनुरणनमयम्, ... तत्त्यागेन उच्चनीचमध्यमस्थानस्पर्शित्वमात्रं पाठ्योपयोगीति दर्शितम्" इति वदतेति (ना.शा.१७।१०२) च ज्ञेयम्।

"आर्चिकं गाथिकं चैव" इत्यादयो नारदीयशिक्षाश्लोका बृहन्नारदीयपुराणेऽपि पठ्यन्ते (१।५०।२-२३६)

हिन्दी – उदात्तादि क्रुष्टादि तथा षड्जादि स्वरों के प्रतिपादक शास्त्रों के सिद्धान्त में ऋक्सम्बन्धी, गाथासम्बन्धी तथा सामसम्बन्धी स्वरों का अपनी-अपनी विशेषता से युक्त स्वरभेद उच्चारणीय माने जाते हैं॥२॥

एकान्तरः स्वरो ह्यृक्षु गाथासु द्व्यन्तरः स्वरः।
सामसु त्र्यन्तरं विद्यादेतावत् स्वरतोऽन्तरम्॥३॥

अन्वयः– ऋक्षु हि स्वरः एकान्तरः (भवति), गाथासु स्वरः द्व्यन्तरः (भवति), सामसु (स्वरम्) त्र्यन्तरम् विद्यात्, (आर्चिक-गाथिक-सामिक-स्वरेषु) एतावत् स्वरत अन्तरम् (विद्यात्)।

शब्दार्थः– ऋक्षु=पादविभागयुक्तेषु छन्दोबद्धेषु वेदमन्त्रेषु, हि=एव, स्वरः=उदात्तादिस्वरः, एकान्तरः=एकतिलान्तरः (भवति=प्रयुज्यते), गाथासु=लौकिकगीतेषु, स्वरः=षड्जादिस्वरः, द्व्यन्तरः=तिलद्वयान्तरः, (भवति=प्रयुज्यते), सामसु=गायत्रादिकेषु सामसु, (स्वरम्=क्रुष्टादिस्वरम्), त्र्यन्तरम्=तिलत्रयान्तरम्, यवान्तरमिति यावत्; विद्यात्=जानीयात्, एतावत्=एतन्मात्राकम्, स्वरतः=स्वरेण कृतम्, अन्तरम्=भेदम् (विद्यात्=जानीयात्)।

सरलार्थः– ऋचासु उदात्तादिस्वर एकान्तरः प्रयुज्यते, लौकिकगीतेषु षड्जादिस्वरो द्व्यन्तरः प्रयुज्यते, सामसु क्रुष्टादिस्वरस् त्र्यन्तरः प्रयुज्यते, ऋगादिषु तत्तत्-स्वराणां प्रयोगे एतादृशं वैशिष्ट्यं जानीयात्। एकस्य स्वरस्योच्चारणाद् द्वितीयस्य स्वरस्योच्चारणे अन्तरमृगादिषु परस्परं विलक्षणं जानीयादित्यर्थः।

विशेषः– एतस्य श्लोकस्य विचारे **"यवान्तरं तु सामसु ऋक्षु कुर्यात् तिलान्तरम्"** (ना.शि.१।६।९) इति वचनमपि अनुसन्धेयम्।

हिन्दी– ऋचाओं में स्वर एकान्तर होता है, गानों में स्वर द्व्यन्तर होता है, साम में स्वर त्र्यन्तर होता है, ऋगादि स्वरों के उच्चारण में इस प्रकार के वैशिष्ट्य को समझना चाहिए ॥३॥

ऋक्-साम-यजुरङ्गानि ये यज्ञेषु प्रयुञ्जते।
अविज्ञानाद् धि शास्त्राणां तेषां भवति विस्वरः॥४॥

अन्वयः– ये यज्ञेषु ऋक्-साम-यजुरङ्गानि प्रयुञ्जते तेषाम् शास्त्राणाम् अविज्ञानात् हि विस्वरः भवति।

शब्दार्थः– ये=साकाङ्क्षबुद्धिविशेषविषया ऋत्विगादयः, यज्ञेषु=यागेषु, ऋक्-साम-यजुरङ्गानि=ऋचः सामानि यजूंषि निविदः प्रैषादींश्च, प्रयुञ्जते=उपयुञ्जते, तेषाम्=आकाङ्क्षापूरणबुद्धिविषयाणां ऋत्विगादीनाम्, शास्त्राणाम्=शिक्षाकल्पव्याकरणादीनां लक्षणशास्त्राणाम्, अविज्ञानात्=विशेषेण अज्ञानात्, हि=एव, विस्वरः=स्वरकृतं वैरूप्यम्, भवति=जायते।

सरलार्थः– ये ऋत्विगादय अग्न्याधानाऽग्निहोत्रदर्शपूर्णमासादियागेषु ऋचः सामानि यजूंषि निविदः प्रैषादींश्च प्रयुञ्जते, शास्त्राणां सम्यग् ज्ञानस्याऽभावे हि तेषाम् ऋत्विगादीनाम् ऋगादिप्रयोगेषु वैस्वर्यं जायते।

विशेषः– बृहन्नारदीयपुराणे शास्त्राणाम् इत्यस्य स्थाने शिक्षाया इति पाठोऽस्ति।

हिन्दी– जो ऋत्विक् प्रभृति जन यज्ञों में ऋचा, साम, यजु, निवित्, प्रैष इत्यादि का प्रयोग करते हैं, शास्त्रों के सम्यग् ज्ञान न होने पर उन के ऋचा आदि के प्रयोग में विस्वरता आजाती है॥४॥

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा
मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति
यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥५॥

अन्वयः– स्वरतः वर्णतः वा हीनः मिथ्याप्रयुक्तः मन्त्रः तम् अर्थम् न आह। स वाग्वज्रः स्वरतः अपराधात् इन्द्रशत्रुः यथा यजमानम् हिनस्ति।

शब्दार्थः– स्वरतः=स्वरात्, वर्णतः=वर्णात्, वा=अथवा, हीनः= अपकृष्टः (=दुष्टः), मिथ्याप्रयुक्तः=अयथावदुच्चारितः, मन्त्रः=मनुः, तम्=बुद्धिस्थं विवक्षितम्, अर्थम्=अभिधेयम्, न=नैव, आह=ब्रूते, सः=तथाऽयथावत् प्रयुक्तः, वाग्वज्रः=वाणीरूपः पविः, स्वरतः=स्वरकृतात्, अपराधात्=दोषात्, इन्द्रशत्रुः= इन्द्रशत्रु-शब्दः, यथा=इव, यजमानम्=यष्टारम्, हिनस्ति=तृणेढि (=पीडयति)।

सरलार्थः– स्वराद् वर्णाद् वा अपकृष्टः अयथावदुच्चारितो मन्त्रो बुद्धिस्थं विवक्षितमर्थं न बोधयति; अयथावत् प्रयुक्तो वाग्वज्ररूपः स मन्त्रः स्वरदोषाद् दुष्ट इन्द्रशत्रुशब्द इव यजमानं हिनस्ति।

विशेषः– एतत् पद्यं पाणिनीयशिक्षायां (श्लो.५२) चारायणीयशिक्षायां च उपलभ्यते। पाणिनीयव्याकरणभाष्ये पस्पशाह्निके चैतत् पद्यमुपात्तम्। तत्र "**दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा**" इति पाठः। एतेनाऽत्राऽपि मन्त्रशब्दः शब्दमात्र-पर इत्यवगम्यते। तथापि भाष्यस्थमेतं पाठभेदमुपादाय "**दुष्टः शब्द इत्यत्रापि बहुजनप्रसिद्धशिक्षाकारपठितमन्त्रपदोद्धारेण शब्दपदं प्रक्षिपता स्वपक्षानुरागो दर्शितः। दुष्टमन्त्रप्रयोगे त्विष्यत एव यजमानस्य प्रत्यवायः**" इति तन्त्रवार्त्तिके व्याकरणाधिकरणपूर्वपक्षे कुमारिलभट्टः। एवं च कुमारिलसमयेऽपि मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वेत्यादिकं शिक्षासु पठितं पद्यं बहुजनप्रसिद्धमासीदित्यवगम्यते। अत्र पद्ये निदर्शनरूपेणाऽऽगतं वृत्रवधोपाख्यानं च शतपथब्राह्मणे तैत्तिरीय-संहितायां च श्रूयते। तथा हि माध्यन्दिनीयवाजसनेयिशतपथब्राह्मणे–"**त्वष्टुर्ह वै पुत्रस् त्रिशीर्षा षडक्ष आस तस्य त्रीण्येव मुखान्यासुस् त्तद्यदेवं-रूपऽआस तस्माद् विश्वरूपो नाम**" इत्यादि (१।६।३।१-)। तत्र चोक्तम्– "**अथ यदब्रवीदिन्द्रशत्रुर्व्वर्द्धस्वेति तस्मादु हैनमिन्द्र एव जघानाऽथ यद् ध शश्वदवक्ष्यदिन्द्रस्य शत्रुर्व्वर्द्धस्वेति शश्वदु ह स एवेन्द्रमहनिष्यत्**" इति (१।६।३।१०)। तैत्तिरीयसंहितायां च– "**विश्वरूपो वै त्वाष्ट्रः पुरोहितो देवाना-मासीत् स्वस्रीयोऽसुराणाम्**" इत्यादिका विश्वरूपवधाख्यायिका (२।५।२।१–२)। तत्र चोक्तम्– "**तस्य यदत्यशिष्यत तत् त्वष्टाऽऽहवनीयमुप प्रावर्तयत् स्वाहेन्द्र-शत्रुर्वर्धस्वेति तस्मादस्येन्द्रः शत्रुरभवत्**" इति (२।५।२।१–२)। तत्र

"दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा" इत्यादिकस्य पद्यस्य भर्तृहरिकृतायां महाभाष्य-टीकायां दीपिकायां व्याख्यानं यथा– "दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा। आद्यादित्वात् तसिः। स्वरवर्णाभ्यां दुष्टः। यश्चाभ्यां दुष्टः स उच्यते मिथ्याप्रयुक्त इति। स एवंभूतो न तमर्थमाह। स तमर्थमनभिदधद् वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति। वागेव वज्रो वाग्वज्रः। असावेनसो योगात्, तेन चैनसा प्रयुक्तोऽमुत्र प्रत्यवायात् हिंसितो भवति, यजमानो हीज्यायां प्रधानम्। अथवा ऋत्विजो हिंसायामयमपि हिंसितः। यथेन्द्रशत्रुः। यथाऽयमिन्द्रशत्रुर्यजमानं हिंसितवानेवमन्योऽपि मिथ्या-प्रयुक्तो मा हिंसीदित्यध्येयं व्याकरणम्। दुष्टशब्दप्रयोग इति श्रूयते– "स्वाहेन्द्र-शत्रुर्वर्धस्व" इति मन्त्रः। अत्रान्तोदात्तः कर्तव्यः। आद्युदात्तः कृतः। ततोऽस्येन्द्र एव शातयिता संवृत्त इति। अत्र चोद्यते यद्यपि समासान्तोदात्तत्वमेवमपि नायमर्थो व्यावर्तत इति, इन्द्रः शत्रुरस्येति यथा सोमसखो राजसख इति। इदं चाऽत्र वक्तव्यम्– इन्द्रशत्रो वर्धस्वेति कस्मादामन्त्रितप्रथमा न भवति? यत् तावदुक्तमन्तोदात्तत्वेऽपि न तस्यार्थस्य व्यावृत्तिरिति। नैष दोषः। योऽयं शत्रु-शब्दो मन्त्रे प्रयुक्त एष रूढिशब्दोऽपि सन् अर्थप्रकरणवशात् त्यक्त्वा निरूढिं निमित्तमपेक्षमाणः प्रयुक्तः। तस्मान्नायमेवाऽऽश्रीयते इन्द्रस्याऽमित्र इन्द्रो वाऽमित्रोऽस्येति। कथं तर्हि? क्रियामेव निमित्तत्वेनोपादाय प्रयुक्तः। शातयिता शमयिता वा शत्रुरिति। तत्रेन्द्रस्य शातयिता भवेति प्रयुयुक्षिते इन्द्रः शातयिताऽस्येति प्रयुक्तम्। यच्च चोक्तमामन्त्रितविभक्त्या भवितव्यमिति। योऽर्थः स्वेन धर्मेण प्रसिद्धो धर्मान्तरसम्बन्धं प्रत्यभिमुखः क्रियते तत्राऽऽमन्त्रितविभक्तिः, यथा देवदत्तं क्रियान्तरसम्बन्धं प्रत्यभिमुखीकरोति देवदत्ताऽधीष्व भुङ्क्ष्वेति। यस्य चाभिधीयमानः (=विधीयमानः) एवाऽसौ धर्मस्तस्य कुत आमन्त्रित-विभक्तिः? तद् यथा राजा भव युद्ध्यस्व पुरुषो भवेति। राजत्वमेवाऽभिधीय-मानं पुरुषत्वं चेति नास्त्यामन्त्रणविभक्तिः। एवमिहापीन्द्रशत्रुत्वमेवाभिधीय-मानमित्यदोषः। तत्र पूर्वस्मिन् वर्णदोषः प्रदर्शितो 'हेऽलयो हेऽलयः' इति, सम्प्रति स्वरदोषः" इति (पृ.११–१२)। एतेनैव प्रायेण कय्यट-नागोजिभट्टादि-व्याख्यानानि च गतार्थानि।

नागोजिभट्टेन लघुशब्देन्दुशेखरे साधारणस्वरप्रकरणे (१।२।३४ सूत्रे) "**ऊहे त्रैस्वर्यमेव प्रयोज्यम्**" इति प्रतिपादितम्। मन्त्रेऽपि विकल्पेन त्रैस्वर्यस्य शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्यादिषु विहितत्वाद् ऊहेऽपि विकल्पेन त्रैस्वर्यं निर्बाधमिति च बोध्यम्। अधिकं कौण्डिन्न्यायनशिक्षायामूहविचारे द्रष्टव्यम् (पृ. ३९५-३९७)।

यत् तु काशिकायाम् "**अपादाने चाऽहीयरुहोः**" (अष्टा. ५।४।४५) इति सूत्रे "**कथं मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वेति? नैषा पञ्चमी; किं तर्हि? तृतीया, स्वरेण वर्णेन वा हीन इत्यर्थः**" इति, तत् तु विचार्यमेव, अत्र अपादानपञ्चमीत्वमनाश्रित्य हेतुपञ्चमीत्वस्याऽऽश्रयितुं शक्यत्वात्।

हिन्दी– स्वर से अथवा वर्ण से अपकृष्ट मन्त्र मिथ्याप्रयुक्त होने के कारण बुद्धिस्थ विवक्षित अर्थ को नहीं कहता है। अयथावत् प्रयुक्त वाग्वज्ररूप वह मन्त्र स्वरदोष से दुष्ट इन्द्रशत्रु शब्द की तरह यजमान को नष्ट करदेता है।

विशेष– चारायणीयशिक्षा में और पाणिनीयशिक्षा में भी यह पद्य है। पाणिनीयव्याकरणभाष्य में पस्पशाह्निक में भी यह पद्य उद्धृत है। किन्तु वहां "दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा" ऐसा पाठ है। भाष्यकार के इस पाठ के विषय में कुमारिल भट्ट ने भी तन्त्रवार्तिक में व्याकरणाधिकरण के पूर्वपक्ष में समीक्षा प्रस्तुत की है। इस पद्य की व्याख्या महाभाष्यटीका दीपिका में भर्तृहरि ने प्रस्तुत की है। कय्यट-नागोजिभट्टप्रभृति व्याख्याताओं ने उसी का अनुसरण किया है।

इस पद्य में उल्लिखित इन्द्रशत्रुशब्द से सम्बद्ध उपाख्यान माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शतपथब्राह्मण में (१।६।३।१–१०) और तैत्तिरीयसंहिता में (२।५।१।१–२) भी आया है। शतपथब्राह्मण के इस उपाख्यान का सारांश यह है– त्वष्टा का पुत्र तीन शिर वाला और छह आँखों वाला था। उस के मुख भी तीन थे। इस रूप के होने से उस को विश्वरूप कहते थे। इन्द्र विश्वरूप का द्वेष करते थे। इन्द्र ने विश्वरूप के तीनों शिर काटे। तब त्वष्टा इन्द्र से क्रुद्ध हो गए। त्वष्टा ने इन्द्र को बुलाए विना ही सोमयाग किया। इन्द्र को यह बात विदित हुई। इन्द्र ने आकर बलात् द्रोणकलश से सोम को पीडाला। इस प्रकार बलात् पीने से क्रुद्ध सोम ने भी इन्द्र को क्षति पहुंचाई। पीछे सौत्रामणी इष्टि से देवताओं ने इन्द्र की चिकित्सा की। क्रुद्ध त्वष्टा ने द्रोणकलश में अवशिष्ट सोम को "इन्द्रशत्रुर्वर्द्धस्व" कह कर अग्नि में होमा। अग्नि में पहुंचकर वह सोम वृत्र होकर उठा। त्वष्टा "इन्द्र का नाश करने वाला होकर बढो" कहना चाहते थे। किन्तु त्वष्टा ने इन्द्रशत्रु पदको आद्युदात्त बोला।

इस से उस पद ने "इन्द्र का नाश करने वाला" ऐसा अर्थ नहीं दिया। उस पद का अर्थ "इन्द्र है नाश करने वाला जिस का वह" ऐसा हो गया। इसी से पीछे इन्द्र ने वृत्र का वध किया। इस प्रकार स्वरदोष से दुष्ट मन्त्र (शब्द) के प्रयोग से त्वष्टा की महती क्षति हुई। यदि त्वष्टा स्पष्ट रूप से "इन्द्रस्स्य शत्त्रुर्व्वर्द्धस्स्व" अथवा "इ॒न्द्र॒श॒त्त्रु॒र्व्वर्द्धस्स्व" कहते तो वृत्र ही इन्द्र का वध करता।

यहां शत्रुशब्द रूढ नहीं है यौगिक है। इस लिए यहां शत्रु का अर्थ सामान्य वैरी नहीं है, शातयिता (=नाश करने वाला) है। तत्पुरुष समास सामान्यतया अन्तोदात्त होता है। इस बात को पाणिनि ने "समासस्य" (६।१।२२३) सूत्र से समझाया है। बहुव्रीहि समास में सामान्यतया पूर्वपद प्रकृतिस्वर में ही रहता है। इस बात को पाणिनि ने "बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्" (६।२।१) इस सूत्र से समझाया है। इन्द्र शब्द आद्युदात्त है। बहुव्रीहि समास से बने हुए इन्द्रशत्रुशब्द में "इन्" यह अक्षर उदात्त होता है॥५॥

प्रहीणः स्वरवर्णाभ्यां यो विमन्त्रः प्रयुज्यते।
यज्ञेषु यजमानस्य रुषत्यायुः प्रजाम् पशून्॥६॥

अन्वयः– यः स्वर-वर्णाभ्याम् प्रहीणः विमन्त्रः यज्ञेषु प्रयुज्यते (स विमन्त्रः) यजमानस्य आयुः प्रजाम् पशून् रुषति।

शब्दार्थः– यः=आकाङ्क्षाबुद्धिविषयः, स्वरवर्णाभ्याम्=उदात्तादिस्वरा-ऽकारादिवर्णाभ्याम्, प्रहीणः=च्युतः, विमन्त्रः=मन्त्राभासः, यज्ञेषु=अग्न्याधाना-ऽग्निहोत्र-दर्शपूर्णमासयागादिषु मखेषु, प्रयुज्यते=उपयुज्यते, (सः=आकाङ्क्षा-पूरणबुद्धिविषयः, विमन्त्रः=मन्त्राभासः), यजमानस्य=यष्टुः, आयुः=जीवित-कालम्, प्रजाम्=सन्ततिम्, पशून्=गवादीन् पशूंश्च, रुषति=हिनस्ति।

सरलार्थः– यः उदात्तादिस्वरा-ऽकारादिवर्णाभ्यां हीनो विकृतो मन्त्रो मखेषु उपयुज्यते स विकृतो मन्त्रो यष्टुः आयुः सन्ततिं पशूंश्च विनाशयति।

विशेषः– एतत् पद्यं बृहन्नारदीयपुराणपाठे न दृश्यते।

हिन्दी– जो उदात्तादि स्वर के और अकारादि वर्ण के शुद्ध उच्चारण से हीन विकृत मन्त्र यज्ञों में प्रयुक्त होता है वह विकृत मन्त्र यजमान के आयु, सन्तति और पशुओं को क्षति पहुँचाता है॥६॥

उरः कण्ठः शिरश्चेति स्थानानि त्रीणि वाङ्मये।
सवनान्याहुरेतानि साम वाऽप्यर्थतोऽन्तरम्॥७॥

अन्वयः– वाङ्मये उरः कण्ठः शिरः च इति त्रीणि स्थानानि (सन्ति), एतानि सवनानि आहुः, (एतानि) वा साम अपि (आहुः), (एतयोः सवनसाम्नोः) अर्थतः अन्तरम् (अस्ति)।

शब्दार्थः– वाङ्मये=वाग्विकारे विषये, उरः=वक्षः, कण्ठः=गलः, शिरः=मूर्धा, च=अपि, इति=एवंप्रकारकाणि, त्रीणि=अग्निसङ्ख्याकानि, स्थानानि=उत्पत्तिस्थलानि, (सन्ति=भवन्ति), एतानि=निर्दिष्टानि त्रीणि स्थानानि, सवनानि=सोमसवनानुगतानि, आहुः=कल्पशास्त्रविद ऋषयः कथयन्ति, वा=अथवा, (एतानि=निर्दिष्टानि त्रीणि स्थानानि), साम=सामानि, अपि=च, (आहुः=शिक्षाशास्त्रविदो मुनयः कथयन्ति), (एतयोः=निर्दिष्टयोः, सवनसाम्नोः= सोमसवन-वाचःस्थानविशेषयोः), अर्थतः=अर्थेन, अन्तरम्=भेदः, (अस्ति=भवति)।

सरलार्थः– वाङ्मयस्योच्चारणे उरः, कण्ठः, शिरः इति त्रीणि स्थानानि वाङ्मयोत्पत्तिस्थलरूपेण स्थितानि भवन्ति, एतानि त्रीणि स्थानानि कल्पशास्त्रविद ऋषयः सोमयागप्रातस्सवनादिसवनानुगतानि कथयन्ति, अथवा निर्दिष्टानि त्रीणि स्थानानि शिक्षाशास्त्रविदो मुनयः सामानि कथयन्ति, एतयोः सवनसाम्नोः अर्थतो भेदोऽस्ति।

विशेषः– त्रयाणां वाचःस्थानानां निर्देशः शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्येऽप्यस्ति। तथा हि "**त्रीणि स्थानानि**" इति (१।१०)। ऋग्वेदप्रातिशाख्येऽपि "**त्रीणि मन्द्रं मध्यममुत्तमं च स्थानान्याहुः सप्त यमानि वाचः। अनन्तरश्चात्र यमोऽविशेषः सप्त स्वरा ये यमास् ते पृथग् वा**" इति (१२।४२,४३) त्रयाणां स्थानानामुल्लेखोऽस्ति। त्रिस्थानस्थिताया वाण्या उल्लेखो वाल्मीकिरामायणेऽपि– "**अनया चित्रया वाचा त्रिस्थानव्यञ्जनस्थया। कस्य नाराध्यते चित्तमुद्यतासेररेरपि**" इति (४।३।३४) कृतो दृश्यते। तैत्तिरीयप्रातिशाख्ये तु "**सप्त वाचः स्थानानि भवन्ति**" इत्युक्तम् (२३।४), चतुरध्यायिकायां च "**समानयमे**" इत्युक्त्वैतत् सूचितम् (१।१४)। पाणिनीयव्याकरणभाष्येऽपि तेषां

निर्देशः कृतः। तथा हि– "सिद्धमेतत्, कथम्? समाने प्रक्रम इति वक्तव्यम्। कः पुनः प्रक्रमः? उरः कण्ठः शिर इति" इति (१।२।२९-३०)। वायुपुराणेऽपि– "स्थानानि त्रीणि जानीयादुरः कण्ठः शिरस् तथा। एतेषु त्रिषु स्थानेषु प्रवृत्तो विधिरुत्तमः" इति (२।२५।४) पठ्यते। भरतनाट्यशास्त्रेऽपि– "शारीर्यामिथ वीणायां त्रिभ्यः स्थानेभ्य एव तु। उरसः शिरसः कण्ठात् स्वरः काकुः प्रवर्तते" इति (१७।१०६) प्रोक्तम्। वाचःस्थानानां सवनैः सम्बन्धश्च शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्ये– "सवनक्रमेणोरःकण्ठभ्रूमध्यानि" इति (१।३०), कात्यायनश्रौतसूत्रे च– "प्रातःसवने चोच्चैः कर्माणि, मध्यमेन माध्यन्दिने, उत्तमेन तृतीयसवने" इति (९।६।१७-१९)। पाणिनीयशिक्षायां च– "मारुतस्तूरसि चरन् मन्द्रं जनयते स्वरम्। प्रातस्सवनयोगं तं छन्दो गायत्रमाश्रितम्। कण्ठे माध्यन्दिनयुगं मध्यमं त्रैष्टुभानुगम्। तारं तार्तीयसवनं शीर्षण्यं जागतानुगम्" इति (श्लो.७,८), "प्रातः पठेन् नित्यमुरस्थितेन स्वरेण शार्दूलरुतोपमेन। मध्यन्दिने कण्ठगतेन चैव चक्राह्वसङ्कूजितसन्निभेन॥ तारं तु विद्यात् सवनं तृतीयं शिरोगतं तच्च सदा प्रयोज्यम्। मयूरहंसान्यभृतस्वराणां तुल्येन नादेन शिरस्स्थितेन" इति च (श्लो.३६,३७)। एवमेव चारायणीयशिक्षायाम्– "प्रातर् वदेन् नित्यमुरस्स्थितेन" इत्यादि प्रोक्तम्, माण्डूकीयशिक्षायां च तथैव प्रोक्तम्।

हिन्दी– वाङ्मय के उच्चारण में छाती (वक्षःस्थल), गला, और सिर ये तीन स्थान उत्पत्तिस्थल होते हैं, इन को कल्पशास्त्रविद् ऋषि लोग सोमयाग के प्रातस्सवनादि सवन से सम्बद्ध बताते हैं, अथवा शिक्षाशास्त्रविद् मुनिलोग इन स्थानों को साम (यम) कहते हैं; इन सवन और सामों का अर्थतः भेद है। (सवन यज्ञगत क्रियाविशेष है, साम वा यम वाणी के उच्चारण में व्यापृत होने वाले शरीर के अङ्गविशेष वा उन अङ्गों से उच्चरित मन्द्रादि स्वरविशेष हैं) ॥७॥

उरः सप्तविचारं स्यात् तथा कण्ठस् तथा शिरः।
न च सप्तोरसि व्यक्तास् तथा प्रावचनो विधिः॥८॥

अन्वयः– उरः सप्तविचारम् स्यात्, कण्ठः तथा (स्यात्), शिरः तथा (स्यात्), उरसि च सप्त व्यक्ताः न, प्रावचनः विधिः तथा।

शब्दार्थः– उरः=वक्षःस्थलम्, सप्तविचारम्=सप्तविचरणकम्, सप्तस्वरम्, स्यात्=भवेत्, कण्ठः=गलः, तथा=सप्तविचारम्, (स्यात्=भवेत्), शिरः=मूर्धा, तथा=सप्तविचारम्, (स्यात्=भवेत्), उरसि=वक्षसि, च=तु, सप्त=सप्तविचारकाः स्वराः, व्यक्ताः=स्पष्टाः, न=न स्युः, प्रावचनः=वेदप्रवचनसम्बद्धः, विधिः=प्रयोगः, तथा=व्यक्तसप्तविचारकस्वरयुतो न स्यात्।

सरलार्थः– वाचःस्थानविशेषरूपम् उरः स्वरसप्तकोत्पत्तिभूमिरूपं स्यात्, गलोऽपि स्वरसप्तकोत्पत्तिभूमिरूपं स्यात्, मूर्धापि स्वरसप्तकोत्पत्तिभूमिरूपं स्यात्, उरसि सप्त स्वराः स्पष्टा न भवन्ति, वेदप्रवचनसम्बद्धः प्रयोगोऽपि व्यक्तस्वरसप्तको न भवति।

विशेषः– स्वराणामुत्पत्तये उरःप्रभृतिषु विभिन्नानि हि स्थानानि आवश्यकानि भवन्ति, तथा हि द्वाविंशतेः श्रुतीनामुत्पत्तये उरःप्रभृतिषु द्वाविंशतेर्-द्वाविंशतेः स्थानानां स्पर्शस्यावश्यकतां दर्शयति नाट्यशास्त्राभिनवभारत्यामभिनवगुप्तः– "**तथा ह्युरःस्थाने द्वाविंशतिः स्थानानि यत्र श्रुतयः स्वराश्च, एवं कण्ठे, एवं मूर्ध्नि च**" इति (१७।१०५) तैत्तिरीयप्रातिशाख्येऽपि "**उरसि मन्द्रम्, कण्ठे मध्यमम्, शिरसि तारम्**" (२३।१०,११,१२) इत्युक्त्वा "**मन्द्रादिषु त्रिषु स्थानेषु सप्तसप्त यमाः**" इति (२३।१३) चोक्तमिति च स्मर्तव्यम्।

हिन्दी– वाणी के उत्पत्तिस्थानरूप छाती सात स्वरों के स्थानविशेषों से युक्त होता है, गला भी सात स्वरों के स्थानविशेषों से युक्त होता है, मूर्धा (शिर) भी सात स्वरों के स्थानविशेषों से युक्त होता है, छाती में सात स्वर स्पष्ट नहीं होते हैं, वेद के प्रवचन से सम्बद्ध प्रयोग भी स्पष्ट सात स्वरवाला नहीं होता है॥८॥

कठ-कालाप-वृत्तेषु तैत्तिरीया-ऽऽह्वरकेषु च।
ऋग्वेदे सामवेदे च वक्तव्यः प्रथमः स्वरः॥९॥

अन्वयः– कठ-कालाप-वृत्तेषु तैत्तिरीया-ऽऽह्वरकेषु च ऋग्वेदे सामवेदे च प्रथमः स्वरः वक्तव्यः।

शब्दार्थः– कठ-कालाप-वृत्तेषु=कठशाखायाः कालापशाखायाश् च कण्डिकासु, तैत्तिरीयाऽऽह्वरकेषु=तैत्तिरीयशाखायाः आह्वरकशाखायाः वृत्तान्तेषु,

च=अपि, ऋग्वेदे=बाह्वृच्ये, सामवेदे=गेयमन्त्रके वेदविशेषे, च=अपि, प्रथमः= आद्यः, स्वरः=स्वनविशेषः, क्रुष्ट इति यावत्; वक्तव्यः=प्रयोक्तव्यः।

सरलार्थः– कठशाखायाः कालापशाखायाश्च कण्डिकासु, तैत्तिरीय-शाखायाः आह्वरकशाखायाश्च खण्डिकासु, ऋग्वेदे सामवेदे च क्रुष्टः स्वरः प्रयोक्तव्यः।

हिन्दी– कृष्णयजुर्वेद की कठशाखा की और कालापशाखा की कण्डिकाओं में, तैत्तिरीयशाखा की और आह्वरकशाखा की खण्डिकाओं में, ऋग्वेद में और सामवेद में भी प्रथम स्वर अर्थात् क्रुष्ट स्वर प्रयोज्य है॥९॥

ऋग्वेदस् तु द्वितीयेन तृतीयेन च वर्तते।
उच्च-मध्यम-सङ्घात-स्वरो भवति पार्थिवः॥१०॥

अन्वयः– ऋग्वेदः तु द्वितीयेन तृतीयेन च वर्तते, उच्च-मध्यम-सङ्घात-स्वरः पार्थिवः भवति।

शब्दार्थः– ऋग्वेदः=बाह्वृच्यम्, तु=एव, द्वितीयेन=द्वितीयस्थानकेन, तृतीयेन=तृतीयस्थानकेन, च=प्रथमेन अपि स्वरेण, वर्तते=प्रवर्तते। उच्च-मध्यम-सङ्घातस्वरः=उदात्त-स्वरित-निघातस्वरः, पार्थिवः=पृथिवीस्थानकाग्निना सम्बद्धस्य ऋग्वेदस्य कृते योग्यः स्वरः, भवति=जायते।

सरलार्थः– ऋग्वेदः खलु द्वितीयेन तृतीयेन पूर्वोक्तेन प्रथमेन च स्वरेण प्रवर्तते। उदात्त-स्वरिता-ऽनुदात्तस्वरः खलु ऋग्वेदस्य कृते योग्यः स्वरो भवति।

हिन्दी– ऋग्वेद द्वितीय तृतीय और प्रथम स्वर से चलता है। उदात्त-स्वरित-अनुदात्त स्वर पृथिवीस्थानक अग्नि से विशेषतया सम्बद्ध ऋग्वेद के लिए योग्य है॥१०॥

तृतीय-प्रथम-क्रुष्टान् कुर्वन्त्याह्वरकाः स्वरान्।
द्वितीयाद्यांस्तु मन्द्रान्तांस्तैत्तिरीयाश्चतुरः स्वरान्॥११॥

अन्वयः– आह्वरकाः तृतीय-प्रथम-क्रुष्टान् स्वरान् कुर्वन्ति, तैत्तिरीयाः द्वितीयाद्यान् मन्द्रान्तान् चतुरः स्वरान् तु (कुर्वन्ति)।

शब्दार्थः– आह्वरकाः=आह्वरक-कृष्णयजुर्वेदशाखाध्यायिनः, तृतीय-प्रथम-क्रुष्टान्=सप्तसु सामस्वरेषु मध्ये त्रीन् क्रुष्ट-प्रथम-तृतीयान् स्वरान्, कुर्वन्ति=प्रयुञ्जते, तैत्तिरीयाः=तैत्तिरीयकृष्णयजुर्वेदशाखाध्यायिनः द्वितीयाद्यान्=सप्तसु सामस्वरेषु द्वितीयप्रभृतीन्, मन्द्रान्तान्=सप्तसु सामस्वरेषु मन्द्रपर्यन्तान्, चतुरः=वेदमितान्, स्वरान्=स्वनविशेषान्, तु=एव, (कुर्वन्ति=प्रयुञ्जते)।

सरलार्थः– आह्वरक-कृष्णयजुर्वेदशाखाध्यायिनः खलु सप्तसु सामस्वरेषु मध्ये क्रुष्ट-प्रथम-तृतीयान् त्रीन् स्वरान् प्रयुञ्जते। तैत्तिरीयकृष्णयजुर्वेदशाखाध्यायिनस्तु सप्तसु सामस्वरेषु मध्ये द्वितीयादीन् मन्द्रान्तान् (द्वितीय-तृतीय-चतुर्थ-मन्द्रान् चतुरः) स्वरान् प्रयुञ्जते।

विशेषः– तैत्तिरीयप्रातिशाख्येऽपि "**द्वितीयप्रथमक्रुष्टास् त्रय आह्वरकस्वराः, मन्द्रादयो द्वितीयान्ताश्चत्वारस्तैत्तिरीयकाः**" इत्युक्तमस्ति (२३।१६,१७)। आह्वरकावान्तरशाखाकानां चरकाणां ब्राह्मणस्वरस्य विषये "**मन्त्रस्वरवद् ब्राह्मणस्वरश्चरकाणाम्, तेषां खाण्डिकेयौखेयानां चातुःस्वर्यमपि क्वचित्**" इति भाषिकसूत्रे (३।२६,२७) प्रोक्तम्। यत् तु तत्राऽनन्तभट्टेन चरकास्तैत्तिरीया उक्ताः, तत् तु अबोधमूलकमेव, चरकाणां ब्राह्मणे त्रैस्वर्यस्य तैत्तिरीयाणां ब्राह्मणे चातुःस्वर्यस्य च स्थितेः नारदीयशिक्षातोऽवगम्यमानत्वात्; तैत्तिरीय-प्रातिशाख्येऽपि (२३।१६,१७) तथैव प्रतिपादितत्वात्, उक्ताद् भाषिकसूत्र-वचनाच्च तथैव प्रतीयमानत्वात्, चरणव्यूहसूत्रादपि चरकचरणात् तैत्तिरीय-चरणस्य भिन्नताया अवगम्यमानत्वात्, ऋग्वेदव्याख्याकारेण वेङ्कटमाधवेनाऽपि "**न भाल्लवकमस्माभिस् तथा मैत्रायणीयकम्। ब्राह्मणं चरकाणां च श्रुतं मन्त्रोपबृंहणम्** (अष्टमाष्टकारम्भे) इति वदता तैत्तिरीयकाच् चरकब्राह्मणस्य भिन्नतया उल्लिखितत्वाच् च।

हिन्दी– कृष्णयजुर्वेद की आह्वरकशाखा पढनेवाले लोग अपनी शाखा के वेद के अध्ययन में क्रुष्ट प्रथम तृतीय इन तीन स्वरों का प्रयोग करते हैं। कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीयशाखा पढनेवाले लोग अपनी शाखा के वेद के अध्ययन में द्वितीय तृतीय चतुर्थ मन्द्र इन चार स्वरों का प्रयोग करते हैं॥११॥

प्रथमश्च द्वितीयश्च तृतीयोऽथ चतुर्थकः।
मन्द्रः क्रुष्टो ह्यतिस्वार एतान् कुर्वन्ति सामगाः॥१२॥

अन्वयः– सामगाः प्रथमः च द्वितीयः च तृतीयः अथ चतुर्थकः मन्द्रः क्रुष्टः हि अतिस्वारः (इति) एतान् (स्वरान्) कुर्वन्ति।

शब्दार्थः– सामगाः=छन्दोगाः (सामवेदिनः), प्रथमः=प्रथमाख्यः स्वरः, च=अपि, द्वितीयः=द्वितीयाख्यः स्वरः, च=अपि, तृतीयः=तृतीयाख्यः स्वरः, अथ=अनन्तरम्, चतुर्थकः=चतुर्थाख्यः स्वरः, मन्द्रः=गम्भीरः स्वरविशेषः, क्रुष्टः=कृष्टापरपर्यायः उच्चतमः स्वरविशेषः, हि=एव, अतिस्वारः=अतिस्वार्यापरपर्यायः स्वरविशेषः, (इति=एवं प्रकाशितान्), एतान्=प्राक् निर्दिष्टान्, (स्वरान्=स्वनविशेषान्), कुर्वन्ति=प्रयुञ्जते।

सरलार्थः– सामवेदिनः खलु क्रुष्टं प्रथमं द्वितीयं तृतीयं चतुर्थं मन्द्रम् अतिस्वार्यं च स्वरं स्वशाखावेदाध्ययने प्रयुञ्जते।

विशेषः– सामवेदिभिः प्रयोज्या एते सप्त स्वराः कौथुमराणायनीयसामवेदशाखाध्यायिनां प्रसिद्धेषु अष्टसु प्रौढब्राह्मणादिषु मध्ये एकस्मिन् सामविधानब्राह्मणे एकत्र **"तद् योऽसौ क्रुष्टतम इव साम्नः स्वरस् तं देवा उपजीवन्ति। योऽवरेषां प्रथमस् तं मनुष्या यो द्वितीयस् तं गन्धर्वाप्सरसो यस् तृतीयस् तं पशवो यश् चतुर्थस् तं पितरो ये चाऽण्डेषु शेरते यः पञ्चमस् तमसुररक्षांसि योऽन्त्यस् तमोषधयो वनस्पतयो यच् चाऽन्यज् जगत्"** इति {१।१।१(8)}, अन्यत्र पुनः **"क्रुष्टः प्राजापत्यो ब्राह्मो वा वैश्वदेवो वाऽऽदित्यानां प्रथमः, साध्यानां द्वितीयोऽग्नेस् तृतीयो वायोश् चतुर्थः सौमो मन्द्रो मित्रावरुणयोरतिस्वार्यः"** इति {१।१।५(14)} श्रुताः। बृहद्देवतायां च– **"वैश्वदेवः स्वरः क्रुष्टो नित्यं यो मूर्ध्नि तिष्ठति। तालव्यः प्रथमः साम्नां स्वर आदित्यदैवतः॥ स्वरो द्वितीयः साध्यानां भ्रुवोर् देशं समाश्रितः। आश्विनस् तु तृतीयोऽत्र स्वरः कर्णौ समाश्रितः॥ चतुर्थस् त्वत्र वायव्यो नासिक्यः स्वर उच्यते। पञ्चमस् तु स्वरः प्रोक्तश् चाक्षुषः सूर्यदैवतः॥ यस्तु सामस्वरः षष्ठः स सौम्यो मन्द्र उच्यते। विकर्षेण तु मन्द्रस्य युक्तोऽतिस्वार्य उच्यते॥ स मैत्रावरुणो**

ज्ञेयो मन्द्रस्थानसमाहितः" इति (८।११६-१२०)। अत्र गान्धर्वस्वरस्य पञ्चमस्य सामिकषष्ठस्वर-मन्द्रस्थानीयस्याऽपि मन्द्रात् पृथगुल्लेखो सामविधानब्राह्मणे {१।१।१(४)} पञ्चमत्वेनोल्लिखितत्वेऽपि मन्द्रस्य देवताभेदेनाऽपि गान्धर्व-पञ्चमाद् भेदं स्फुटीकर्तुं कृतो वेदितव्यः। तैत्तिरीयप्रातिशाख्ये च एते स्वराः "**क्रुष्ट-प्रथम-द्वितीय-तृतीय-चतुर्थ-मन्द्रा-ऽतिस्वार्याः**" (२३।१४) इत्युल्लिखिताः। सामवेदीय-संहितोपनिषद्-ब्राह्मणादौ, पुष्पसूत्रे, सामतन्त्रादौ च क्रुष्टादीनां स्वराणां विनियोगा बहुशः प्रदर्शिताः, तथापि क्रुष्टादिस्वरूपतदुत्पत्तिप्रक्रियादयो विषयास्तु पुष्पसूत्रादिषु सामवेदप्रातिशाख्यादिषु प्रतिपादिता न दृश्यन्ते। तेषां स्वरूपादिकं तत्स्थानीयषड्जादिस्वरूपादिभ्य एवाऽवसेयमवगम्यते। भाषिक-सूत्रे तु "**सप्त साम्नाम्, षड्जर्षभगान्धारमध्यमपञ्चमधैवतनिषादाः**" (३।१६, १७) इति षड्जादय एव सामस्वरत्वेनोक्ता दृश्यन्ते। अत एवाऽस्यां नारदीय-शिक्षायामपि षड्जादीनामेवोत्पत्तिस्थानादिकं विशेषेण वर्णितं दृश्यते (१।२।६-१।५।१८), न क्रुष्टादीनाम्। सामस्वरेषु क्रुष्टादिका हि स्वरगणना भवति, तथापि छन्दोनुरोधात् "**प्रथमश्च द्वितीयश्च**" इत्यादि पठितं वेदितव्यम्।

हिन्दी – सामवेदी लोग प्रथम द्वितीय तृतीय चतुर्थ मन्द्र क्रुष्ट अतिस्वार इन स्वरों को अपने वेद के अध्ययन में प्रयोग में लाते हैं॥१२॥

द्वितीयप्रथमावेतौ ताण्डिभाल्लविनां स्वरौ।
तथा शातपथावेतौ स्वरौ वाजसनेयिनाम्॥१३॥

अन्वयः – ताण्डि-भाल्लविनाम् एतौ द्वितीय-प्रथमौ स्वरौ (भवतः), तथा वाजसनेयिनाम् शातपथौ एतौ स्वरौ (भवतः)।

शब्दार्थः – ताण्डि-भाल्लविनाम्=कौथुमराणायनीयसामवेदशाखा-ध्यायिविशेषाणां ताण्डिनाम्, सामवेदशाखाविशेषाध्यायिनां भाल्लविनां च, एतौ=पूर्वनिर्दिष्टौ, द्वितीय-प्रथमौ=द्वितीयाख्य-प्रथमाख्यौ, स्वरौ=स्वनविशेषौ, (भवतः=प्रयोज्यौ स्तः), तथा=तेनैव प्रकारेण, वाजसनेयिनाम्=वाजसनेय-याज्ञवल्क्यप्रोक्ताऽऽदित्यब्रह्मसम्प्रदायक-यजुर्वेदशाखाविशेषाध्यायिनां माध्य-न्दिनीय-काण्वादीनाम्, शातपथौ=शतपथब्राह्मणे भवौ, एतौ=पूर्वनिर्दिष्टौ, स्वरौ=स्वनविशेषौ, (भवतः=प्रयोज्यौ स्तः)।

सरलार्थः– सामवेदशाखाविशेषाध्यायिनां ताण्डिनां भाल्लविनां च एतौ द्वितीयप्रथमौ स्वरौ स्वशाखाब्राह्मणाध्ययने प्रयाज्यौ भवतः, तथैव वाजसनेय-याज्ञवल्क्यप्रोक्ताऽऽदित्यसम्प्रदायागतशुक्लयजुर्वेदशाखाविशेषाध्यायिनां माध्यन्दिनीय-काण्वादीनां च शतपथब्राह्मणाध्ययने एतौ द्वितीयप्रथमौ स्वरौ प्रयोज्यौ भवतः।

विशेषः– एतयोः द्वितीयप्रथमयोः स्वरयोः प्रयोगस्य विषये "**शतपथवत् ताण्डिभाल्लविनां ब्राह्मणस्वरः**" इति भाषिकसूत्रेऽपि (३।१५) प्रोक्तमस्ति। भाल्लविनोऽपि छन्दोगविशेषा एवेति भट्टशोभाकरो वदन् प्रतीयते।

हिन्दी– ये द्वितीय और प्रथम स्वर कौथुमराणायनीयसामवेदशाखाविशेषाध्यायी ताण्डियों के और वेदशाखाविशेषाध्यायी भाल्लवियों के ब्राह्मणग्रन्थ के अध्ययन में प्रयोज्य हैं, साथ ही वाजसनिपुत्त्र याज्ञवल्क्य से प्रोक्त आदित्यसम्प्रदाय से आगत शुक्लयजुर्वेद-शाखाविशेष के अध्येता माध्यन्दिनीय-काण्वादि वेदशाखाविशेषाध्यायियों के शतपथब्राह्मण में भी ये द्वितीय और प्रथम स्वर प्रयोज्य हैं ॥१३॥

एते विशेषतः प्रोक्ता स्वरा वै सार्ववैदिकाः।
इत्येतच् चरितं सर्वं स्वराणां सार्ववैदिकम् ॥१४॥

अन्वयः– एते वै विशेषतः सार्ववैदिकाः स्वराः प्रोक्ताः, इति एतत् स्वराणाम् सार्ववैदिकम् सर्वम् चरितम् (अस्ति)।

शब्दार्थः– एते=इदानीमेव निर्दिष्टाः, वै=हि, विशेषतः=वेदशाखा-विशेषमात्रसम्बन्धव्यावृत्त्या, सार्ववैदिकाः=सर्ववेदसम्बद्धाः, स्वराः=उदात्तादि-स्वनविशेषाः, प्रोक्ताः=प्रकर्षेण व्याहृताः, इति=एतादृशम्, एतत्=अत्र निर्दिष्टम्, स्वराणाम्=उदात्तादिस्वनविशेषाणाम्, सार्ववैदिकम्=सर्ववेदसम्बद्धम्, सर्वम्=निखिलम्, चरितम्=चरित्रम्, लक्षणमिति यावत्; (अस्ति=विद्यते)।

सरलार्थः– एते विशेषेण सर्ववेदसम्बद्धाः स्वराः प्रोक्ता ज्ञेयाः, एतद् हि स्वराणां सर्ववेदसम्बद्धं निखिलं सामान्यं लक्षणमस्ति।

हिन्दी– ये विशेषतः सभी वेदों से सम्बद्ध स्वर बताए गए हैं। यही स्वरों का सभी वेदों से सम्बद्ध सम्पूर्ण सामान्य लक्षण है ॥१४॥

॥ इति प्रथमे प्रपाठके प्रथमा कण्डिका॥

अथ प्रथमे प्रपाठके द्वितीया कण्डिका

सामवेदे तु वक्ष्यामि स्वराणां चरितं यथा।
अल्पग्रन्थं प्रभूतार्थं श्रव्यं वेदाङ्गमुत्तमम्॥१॥

अन्वयः– सामवेदे तु स्वराणां चरितम् यथा (अस्ति) (तथा) अल्पग्रन्थम्, प्रभूतार्थम् श्रव्यम् उत्तमम् वेदाङ्गम् वक्ष्यामि।

शब्दार्थः– सामवेदे=गेयवेदविशेषे तृतीये वेदे, तु=हि, स्वराणाम्=उदात्तादीनां क्रुष्टादीनाञ्च स्वनविशेषाणाम्, चरितम्=चरित्रम्, स्वरूपादिकम्; यथा=येन प्रकारेण स्थितम्, (अस्ति=वर्तते), (तथा=तदनुरूपम्), अल्पग्रन्थम्=स्वल्पैः श्लोकाक्षरपरिमितग्रन्थैर्, युतम्, प्रभूतार्थम्=भूरिप्रमेयम्, श्रव्यम्=श्रोतुमर्हम्, उत्तमम्=श्रेष्ठम्, वेदाङ्गम्=वेदस्वरूपप्रयोगार्थरहस्यव्यञ्जकशास्त्रेषु अन्यतमं शास्त्रम्, वक्ष्यामि=उपदेक्ष्यामि।

सरलार्थः– सामवेदे उदात्तादीनां क्रुष्टादीनाञ्च स्वराणां स्वरूपं यादृशं भवति तदनुरूपं स्वल्पपरिमाणं महार्थं श्रोतुमर्हम् उत्तमं वेदाङ्गं वक्ष्यामि।

विशेषः– वेदाङ्गानि खलु शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति षट्। तत्र **शिक्षा** नाम वर्ण-स्वर-मात्रा-स्थानकरणप्रयत्नाऽनुप्रदान-रूपबल-साम-सन्तानादिप्रतिपादकं शास्त्रम्, **कल्पो** नाम शाखान्तरस्थोपसंहर-णीयगुणोपसंहारपूर्वकं वैदिक-यज्ञानुष्ठानक्रम-विशेषादिकस्य ब्राह्मणग्रन्थगत-विधिवाक्यानुसारेण कल्पकं शाङ्खायन-कात्यायन-लाट्यायनादिप्रणीतं शास्त्रम्; **व्याकरणं** नाम वाक्यतदर्थसम्बन्धज्ञानस्य स्फुटप्रकृतिप्रत्ययादिकल्पनपूर्वकैः पद-तदर्थसम्बन्ध-ज्ञापनादिभिरुपकारकं शास्त्रं शब्दानुशासनाऽपरपर्यायं शाकटायनादिप्रणीतम्, **निरुक्तं** नाम व्याकरणेन व्याकर्तुमशक्यस्य पदपदार्थ-सम्बन्धस्य निरूपणाय सिद्धान्तरूपाणां नियमानां प्रतिपादकं तेषां नियमानां प्रयोगाणां प्रदर्शकं देवतावाचकपदपदार्थसम्बन्धस्य निरूपकं वैदिकदेवविद्या-रूपं च यास्कप्रणीतं शास्त्रम्; **छन्दश्शास्त्रं** नाम पाठ्यवस्तुगतस्वरपरिमाणा-ऽवच्छेदविशेषनियमबोधकं पिङ्गलादिप्रणीतं शास्त्रम्; **ज्योतिषं** नाम सूर्यादीनां

गतेर् विज्ञानेन कालानुपूर्वयज्ञानुविधानज्ञानस्य साधनं पञ्चसंवत्सरमयमित्यादिकं लगधादिप्रोक्तं शास्त्रम्, वैदिकयज्ञविशेषे आवश्यकस्य पञ्चसंवत्सरमयस्य युगस्य प्रतिपादनेन सर्वथा रहितम् आर्यभटीय-ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त-सूर्यसिद्धान्तादिकं तु वेदमूलकलगधप्रोक्तवेदाङ्गयाजुषज्योतिषग्रन्थप्रतिपादितसिद्धान्त-प्रतिकूलत्वान् न वेदाङ्गज्योतिषशास्त्रग्रन्थत्वेन स्वीकर्तुमर्हम्। आर्यभटीयादीनां धार्मिकवेदाङ्गज्योतिषग्रन्थत्वाभावेऽपि भौतिकव्यावहारिकज्योतिषग्रन्थत्वं तु स्वीकर्तुं शक्यमिति च सुधीभिर्विवेक्तव्यम्। एतस्मिन् विषये सम्पूर्णानन्दसंस्कृत-विश्वविद्यालयाऽनुसन्धानपत्रिकायां सारस्वत्यां सुषमायां (५० वर्षे,३-४ अङ्कयोः, २०५२) प्रकाशिते "**वेदाङ्गज्योतिषं युगवर्षायनर्तुमासाधिमासादिगणना च**" इति निबन्धे विस्तरेण सप्रमाणं विचारः प्रस्तुतोऽस्ति।

हिन्दी – सामवेद में उदात्तादि तथा क्रुष्टादि स्वरों का स्वरूपादि जैसा होता है उस स्वरूपादि का अनुरूप अल्प परिमाण वाला होने पर भी प्रभूत अर्थ का प्रतिपादक श्रवणार्ह और श्रेष्ठ वेदाङ्ग बताऊँगा॥१॥

तान-राग-स्वर-ग्राम-मूर्छनानां तु लक्षणम्।
पवित्रं पावनं पुण्यं नारदेन प्रकीर्तितम्॥२॥

अन्वयः– पवित्रम् पावनम् पुण्यम् तान-राग-स्वर-ग्राम-मूर्छनानाम् तु लक्षणम् नारदेन प्रकीर्तितम् (अस्ति)।

शब्दार्थः– पवित्रम्=स्वराद्युच्चारणशुद्धिकरणम्, पावनम्=अध्येतुः शुद्धेः करणम्, पुण्यम्=अध्ययने इष्टादृष्टजनकम्, तान-राग-स्वर-ग्राम-मूर्छनानाम्=तानादीनां पदार्थानाम्, तु=हि, लक्षणम्=अव्याप्त्यतिव्याप्त्य-सम्भवरूपदोषरहितं स्वरूपवर्णनम्, नारदेन=नारदनामकेन आचार्येण, प्रकीर्तितम्=प्रोक्तम्, (अस्ति=वर्तते)।

सरलार्थः– स्वराद्युच्चारणशुद्धिकरणमध्येतुश्च शुद्धेः करणम् अध्ययने इष्टादृष्टजनकञ्च तानादीनां पदार्थानां स्वरूपाणां वर्णनं नारदनामकेनाऽऽचार्येण प्रोक्तमस्ति।

विशेषः– सामवेदे ग्रामविभागाभावेऽपि नारदीयशिक्षायां ग्रामविभागादीनां वर्णनस्य प्रयोजनम् अभिनवगुप्तेन भरतनाट्यशास्त्राभिनवभारत्यामुक्तम्– "**अत एव सामवेदे ग्रामविभागाभावात् तदुपयोगिन्यां नारदीयशिक्षायां तदभिधानमौत्तराधर्यमात्रमुक्तं** *'यः सामगानाम्'* (नार.१।५।१) **इत्यादिना**" इति। एवं च सामवेदे जाति-ग्राम-मूर्छना-तान-रागाणां प्रयोगस्याऽभावेऽपि नारदीयशिक्षायां ग्रामादय उल्लिखिता दृश्यन्ते। एतस्य प्रयोजनं विद्वद्भिः सम्यक् चिन्तनीयम्। के चन तु नारदीयशिक्षायां षड्जादीनां स्वराणां ग्रामादीनां च प्रतिपादनं प्रक्षिप्तं प्रतीयते इति कथयन्ति। तथापि अभिनवगुप्तलेखात् तु नारदीयशिक्षायां षड्जादीनां निरूपणं तैः सह सामस्वराणां क्रुष्टादीनां तुलनया क्रुष्टादीनां स्वरूपस्य स्पष्टीकरणाय कृतमिति अवगम्यते।

अत्र स्वरादिस्वरूपस्पष्टीकरणाय अपेक्षिताः श्रुतिस्वरादिप्रतिपादिका ग्रन्थान्तरेभ्यः सङ्कलिताः क्वचित् कियताऽप्यंशेन प्रतिसंस्कृताः काश्चन तु पूर्वग्रन्थकारोक्तीरुपजीव्य आत्मनैव रचिताः प्रायेण कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां स्वरनिरूपणाध्याये गान्धर्वस्वरसामस्वरविवेचनप्रकरणे कारिकाव्याख्यानरूपे भागे वर्तमानाः काश्चन आवश्यिकाः कारिकास् तलत उपस्थाप्यन्ते–

श्रुतिलक्षणम् –

प्रथमश्रवणाच् शब्दः श्रूयते ह्रस्वमात्रकः।
सा श्रुतिः सम्परिज्ञेया स्वरावयवलक्षणा॥
श्रुतः स्वरूपमात्रेण हीनोऽनुरणनेन तु।
नादः श्रुतिः स्यादस्यास्तु भेदा द्वाविंशतिः स्मृताः॥
यथा दधनि सर्पिर् वा काष्ठस्थो वा यथाऽनलः।
प्रयत्नेनोपलभ्येत तद्वत् स्वरगता श्रुतिः॥
दीप्ताऽऽयता मृदुर् मध्या करुणेति च पञ्चधा।
जातितस् ताः पुनर् व्यक्तिनाम्ना तीव्रादयो मताः॥

स्वरलक्षणम् –

श्रुत्यनन्तरभावी यः स्निग्धोऽनुरणनात्मकः।
स्वनो रञ्जयति श्रोतुश् चित्तं स स्वर उच्यते॥

स्वरभेदाः —

श्रुतिजाः स्युः स्वराः षड्जर्षभगान्धारमध्यमाः।
पञ्चमो धैवतश् चाऽपि निषादश् चेति सप्त ते॥
आपेक्षिकाः कम्पवृद्धेरुच्चोच्चाश् ते यथोत्तरम्।
सङ्क्षेपात् ते ष ऋ गा म प धै नीति च कीर्तिताः॥

ग्रामलक्षणं ग्रामभेदाश्च —

ग्रामाः स्वरसमूहाः स्युर् मूर्छनादेः समाश्रयाः।
आद्यन्तस्वरनाम्ना ते षड्जगान्धारमध्यमाः॥

मूर्छनालक्षणम् —

स्वरः सम्मूर्छितो यत्र रागतां प्रतिपद्यते।
मूर्छनां खलु तामाहुः कवयो ग्रामसम्भवाम्॥
क्रमात् स्वराणां सप्तानामारोहश्चाऽवरोहणम्।
मूर्छनेत्युच्यते ग्रामेग्रामे ताः सप्तसप्त च॥

तानलक्षणम् —

विस्तार्यन्ते प्रयोगा यैः शैथिल्याद् वाऽपि पीडनात्।
स्वराणां क्रमशः साम्यं समेनैवोत्तरेण वा॥
कृत्वा स्वरेण ते तानाः कथिताः स्वरवेदिभिः।
ऊनपञ्चाशदेवोक्तास् ते विज्ञैर् नारदादिभिः॥

रागलक्षणम् —

दीप्तायतादिश्रुतिजविशिष्टस्वररागतः।
सिद्धा ग्रामविशेषा हि ग्रामरागाः प्रकीर्तिताः॥
शुद्धा ग्रामास् त्रयस् ते हि रागाः प्राप्ता विशेषताम्।
जात्या त्रिधा ते सम्पूर्णाः षाडवा औडुवा इति॥

हिन्दी– स्वरादि के उच्चारण में शुद्धि का साधन, पढने वाले को भी शुद्ध बनाने वाला, पढने से स्वर्गफलक पुण्य उत्पादन करने वाला, तान-रागादि पदार्थों का अव्याप्त्यादिदोषरहित लक्षण बताने वाला शास्त्र नारद नाम के आचार्य ने कहा है॥२॥

शिक्षामाहुर् द्विजातीनामृग्-यजुः-सामलक्षणम्।
नारदीयमशेषेण निरुक्तमनुपूर्वशः॥३॥

अन्वयः– अशेषेण अनुपूर्वशः निरुक्तम् नारदीयम् ऋग्-यजुः-सामलक्षणम् द्विजातीनाम् शिक्षाम् आहुः।

शब्दार्थः– अशेषेण=निश्शेषेण, अनुपूर्वशः=क्रमशः, निरुक्तम्=निष्कर्षरूपेण प्रोक्तम्, नारदीयम्=नारदप्रणीतम्, ऋग्-यजुः-सामलक्षणम्=ऋचां यजुषां साम्नां च उच्चारणरूपादिवर्णनात्मकं शास्त्रम्, द्विजातीनाम्=द्विजानाम्, शिक्षाम्=वर्णादिशिक्षारूपं वेदाङ्गम्, आहुः=कथयन्ति।

सरलार्थः– निश्शेषेण क्रमबद्धरूपेण प्रोक्तं नारदप्रणीतम् ऋचां यजुषां साम्नां च लक्षणं द्विजानां कृते प्रवृत्तां वेदाङ्गशिक्षामाहुः।

हिन्दी – सम्पूर्ण रूप में क्रमबद्ध कर के उपदिष्ट नारदप्रणीत ऋक् यजुः तथा सामों के उच्चारणलक्षणरूप इस शास्त्र को द्विजातियों के लिए प्रणीत वेदाङ्गशिक्षा कहते हैं॥३॥

सप्त स्वरास् त्रयो ग्रामा मूर्छनास् त्वेकविंशतिः।
ताना एकोनपञ्चाशदित्येतत् स्वरमण्डलम्॥४॥

अन्वयः– स्वराः सप्त ग्रामाः त्रयः मूर्छनाः तु एकविंशतिः ताना एकोनपञ्चाशत् इति एतत् स्वरमण्डलम् (आहुः)।

शब्दार्थः– स्वराः=षड्जादयः स्वनविशेषाः, सप्त=अश्वमिताः, ग्रामाः=स्वरसमूहविशेषाः, त्रयः=अग्निमिताः, मूर्छनाः=स्वरग्रामाश्रिताः स्वरारोहाऽवरोहान्यतरविशिष्टाः स्वरसंहतयः, तु=हि एकविंशतिः=प्रकृतिच्छन्दःपादाऽक्षरमिताः, तानाः=स्वरशैथिल्य-पीडनान्यतरकृत-समोत्तरान्यतर-स्वरसमताऽऽपादनरूपा स्वरप्रयोगविशेषाः, एकोनपञ्चाशत्=वायुमिताः, इति=एवं प्रकारकम्, एतत्=इदानीमेव निर्दिष्टम्, स्वरमण्डलम्=स्वरकदम्बकम्, (आहुः=कथयन्ति)।

सरलार्थः– षड्जादयः स्वराः सप्त, स्वरसमूहविशेषरूपाः षड्ज-मध्यम-गान्धारा ग्रामास् त्रयः, नन्द्यादयः स्वरग्रामाश्रितस्वरारोहावरोहविशेष-

रूपा मूर्छनाश्च एकविंशतिः, स्वरशैथिल्यपीडनान्यंतरकृतसामोत्तरान्यतरस्वर-समतापादनरूपाः स्वरप्रयोगविशेषात्मानस् ताना एकोनपञ्चाशत् इति एतत् स्वरमण्डलमाहुः।

विशेषः– एष श्लोकः पञ्चतन्त्रकेऽपरीक्षितकारकप्रकरणेऽपि उद्धृतो दृश्यते। किन्तु तत्राऽयं श्लोकः भरतोक्तत्वेनोंल्लिखितः प्रतीयते। भरतनाट्य-शास्त्रे त्वयं श्लोको न दृश्यते।

हिन्दी – षड्जादि स्वर सात, षड्जादि ही ग्राम तीन, नन्द्यादि मूर्छना इक्कीस, और तान ऊनपचास, इस प्रकार के इस समूह को स्वरमण्डल कहते हैं॥४॥

षड्जश्च ऋषभश्चैव गान्धारो मध्यमस् तथा।
पञ्चमो धैवतश्चैव निषादः सप्तमः स्वरः॥५॥

अन्वयः– षड्जः च ऋषभः च एव गान्धारः मध्यमः तथा पञ्चमः धैवतः सप्तमः स्वरः निषादः च एव (सन्ति)।

शब्दार्थः– षड्जः=नासादिभ्यः षड्भ्यः स्थानेभ्यः सञ्जायमानः स्वर-विशेषः, च=अपि, ऋषभः=ऋषभनर्दनसदृशः स्वरविशेषः, च=अपि, एव=हि, गान्धारः=गवां धारयिता गवां रम्भणेन सदृशो वा स्वरविशेषः, मध्यमः= मध्यकाये उरसि जायमानः स्वराणां मध्ये स्थितो वा स्वरविशेषः, तथा=तद्वत्, पञ्चमः=स्थानपञ्चकोत्थितः स्वरगणनायां पञ्चमे स्थाने स्थितो वा स्वरविशेषः, धैवतः=अश्वह्रेषितोपलक्ष्यः स्वरविशेषः, सप्तमः=सप्तसङ्ख्यापूरणः, स्वरः= स्वनविशेषः, निषादः=गजबृंहितनिदर्शनः स्वरविशेषः, च=अपि, एव=हि (सन्ति=भवन्ति)।

सरलार्थः– षड्जः, ऋषभः, गान्धारः, मध्यमः, पञ्चमः, धैवतः, सप्तमो निषादश्चेति सप्त स्वराः सन्ति।

हिन्दी – षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और सातवाँ निषाद, ये सात स्वर हैं॥५॥

षड्ज-मध्यम-गान्धारास् त्रयो ग्रामाः प्रकीर्तिताः।

अन्वयः– त्रयः षड्ज-मध्यम-गान्धाराः ग्रामाः प्रकीर्तिताः (सन्ति)।

शब्दार्थः– त्रयः=अग्निमिताः, षड्ज-मध्यम-गान्धाराः=षड्जस्वरानुसारि-मध्यमस्वरानुसारि-गान्धारस्वरानुसारिणः, ग्रामाः=स्वरसमूहविशेषाः, प्रकीर्तिताः=गानविज्ञैः कथिताः, (सन्ति=वर्तन्ते)।

सरलार्थः– षड्जग्रामः, मध्यमग्रामः, गान्धारग्राम इति त्रयः स्वरसमूहविशेषरूपा ग्रामा गानविज्ञैः कथिताः सन्ति।

हिन्दी– षड्जग्राम, मध्यमग्राम, गान्धारग्राम ये तीन स्वरसमूहविशेषरूप ग्राम गानविद्याविज्ञों से कहे गए हैं।

भूर्लोकाज् जायते षड्जो भुवर्लोकाच्च मध्यमः॥६॥
स्वर्गान् नाऽन्यत्र गान्धारो नारदस्य मतं यथा।

अन्वयः– षड्जः भूर्लोकात् जायते, मध्यमः च भुवर्लोकात् (जायते), यथा नारदस्य मतम् (तदनुसारम्) गान्धारः स्वर्गात् अन्यत्र न (भवति)।

शब्दार्थः– षड्जः=षड्जस्वरानुसारी स्वरसमूहविशेषरूपः षड्जग्रामः, भूर्लोकात्=पृथिवीलोकात्, जायते=उत्पद्यते, मध्यमः=मध्यमस्वरानुसारी स्वरसमूहविशेषरूपो मध्यमग्रामः, च=अपि, भुवर्लोकात्=अन्तरिक्षलोकात्, (जायते=उत्पद्यते), यथा=यत्प्रकारकम्, नारदस्य=नारदनामकस्य स्वरशास्त्राचार्यस्य, मतम्=सिद्धान्तः, (तदनुसारम्=तदनुकूलविचारानुसारम्), गान्धारः=गान्धारस्वरानुसारी स्वरसमूहविशेषरूपो गान्धारग्रामः, स्वर्गात्=देवलोकात्, अन्यत्र=अन्यस्मिन् लोके, न (भवति)=न (उत्पद्यते)।

सरलार्थः– षड्जस्वरानुसारी स्वरसमूहविशेषरूपः षड्जग्रामः पृथिवीलोकाज् जायते, मध्यमस्वरानुसारी स्वरसमूहविशेषरूपो मध्यमग्रामः अन्तरिक्षलोकाज् जायते, नारदमतानुसारं गान्धारस्वरानुसारी स्वरसमूहविशेषरूपो गान्धारग्रामः स्वर्गाद् अन्यत्र न जायते।

हिन्दी– षड्जग्राम पृथिवीलोक से उत्पन्न होता है, मध्यमग्राम अन्तरिक्षलोक से उत्पन्न होता है, नारद के मत में गान्धारग्राम स्वर्ग को छोडकर अन्यत्र नहीं उत्पन्न होता है।

स्वररागविशेषेण ग्रामरागा इति स्मृताः॥७॥

अन्वयः– स्वररागविशेषेण (जाता रागा हि) ग्रामरागाः इति स्मृताः।

शब्दार्थः– स्वररागविशेषेण=षड्जादिस्वरगतदीप्तादिश्रुतिकृतराग-विशेषेण, (जाता रागा हि) ग्रामरागाः=षड्जादिग्रामरागाः, इति=इत्थम्, स्मृताः=स्मृतिविषयं नीताः (गान्धर्वविद्याविशारदैर् नारदादिभिः)।

सरलार्थः– षड्जादिस्वरगतदीप्तादिश्रुतिकृतरागविशेषेण जाता रागा हि षड्जादिग्रामरागा इति गान्धर्वविद्याविशारदैर् नारदादिभिः स्मृताः।

हिन्दी– षड्जादि स्वरों में समाविष्ट दीप्ता, आयता इत्यादि श्रुतियों से उत्पन्न विशिष्ट रागों के योग से ही षड्जादिग्रामराग निष्पन्न होने की बात गान्धर्वविद्याविशारद नारदादि से स्मृत है॥७॥

विंशतिं मध्यमग्रामे षड्जग्रामे चतुर्दश।
तानान् पञ्चदशेच्छन्ति गान्धारग्राममाश्रितान्॥८॥

अन्वयः– मध्यमग्रामे विंशतिम् तानान् इच्छन्ति, षड्जग्रामे चतुर्दश (तानान् इच्छन्ति), गान्धारग्रामम् आश्रितान् तानान् पञ्चदश (इच्छन्ति)।

शब्दार्थः– मध्यमग्रामे=मध्यमस्वरानुसारिणि स्वरसमूहविशेषरूपे ग्रामे, विंशतिम्=नखमितान्, तानान्=स्वरशैथिल्यपीडनान्यतरकृतसमोत्तरान्य-तरस्वरसमतापादनयुतान् स्वरप्रयोगविशेषान्, इच्छन्ति=वाञ्छन्ति, षड्ज-ग्रामे= षड्जस्वरानुसारिणि ग्रामे, चतुर्दश=मनुमितान्, (तानान्=पूर्वोक्त-विधान् स्वरप्रयोगविशेषान्, इच्छन्ति=वाञ्छन्ति), गान्धारग्रामम्=गान्धार-स्वरानुसारिणं स्वरसमूहविशेषम्; आश्रितान्=संश्रितान्, (तानान्=पूर्वोक्त-विधान् स्वरप्रयोगविशेषान्), पञ्चदश=तिथिमितान्, (इच्छन्ति=वाञ्छन्ति)।

सरलार्थः– मध्यमग्रामे विंशतिं तानान् इच्छन्ति, षड्जग्रामे चतुर्दश तानान् इच्छन्ति, गान्धारग्राममाश्रितान् पञ्चदश तानान् इच्छन्ति।

हिन्दी– मध्यमग्राम में बीस तान इष्ट माने जाते हैं, षड्जग्राम में चौदह तान इष्ट माने जाते हैं, गान्धारग्राम में आश्रित पन्द्रह तान इष्ट माने जाते हैं॥८॥

नन्दी विशाला सुमुखी चित्रा चित्रवती सुखा।
बला या चाऽथ विज्ञेया देवानां सप्त मूर्छनाः॥९॥

अन्वयः– नन्दी विशाला सुमुखी चित्रा चित्रवती सुखा अथ या च बला (सा च इति) देवानाम् सप्त मूर्छना विज्ञेयाः।

विशेषः– मूर्छनाविशेषनामग्रहणपरस्य अस्य श्लोकस्य शब्दार्थानां पृथक् प्रतिपादनं सरलार्थस्य पृथक् प्रतिपादनं चाऽनावश्यकम्। एताश्च मूर्छना देवलोके एव प्रयोज्यस्य गान्धारग्रामस्येति मत्वा एतासां मूर्छनानां भरतनाट्यशास्त्रे अष्टाविंशेऽध्याये किमपि प्रतिपादनं न कृतमवगम्यते। शार्ङ्गदेवकृते सङ्गीतरत्नाकरे (१।४।२६) तु–

नन्दा विशला सुमुखी चित्रा चित्रावती सुखा।
आलापा चेति गान्धारग्रामे स्युः सप्त मूर्छनाः॥
ताश्च स्वर्गे प्रयोक्तव्या विशेषात् तेन नोदिताः।

इति प्रोक्तम्। एवं च तन्मते नन्दादयो मूर्छना गान्धारग्रामे एव स्थिता वेदितव्याः। नारदीयशिक्षायां या "**नन्दी**" सा सङ्गीतरत्नाकरे "**नन्दा**", या "**चित्रवती**" सा "**चित्रावती**", या "**बला**" सा "**आलापा**" इति पाठभ्रंशादिमूलको नामभेदोऽवगन्तव्यः। शोभाकरभट्टस्तु षड्जग्रामादिषु त्रिष्वेव ग्रामेषु देवानां सप्त मूर्छनाः, पितृणां सप्त मूर्छनाः, ऋषीणां सप्त मूर्छना इति प्रतिग्राममेव एकविंशतिर् मूर्छना भवन्तीति मन्यमानः प्रतीयते।

"**बला चाऽप्यथ**" इति बृहन्नारदीयपुराणे पाठः।

हिन्दी– नन्दी, विशाला, सुमुखी, चित्रा, चित्रवती, सुखा और बला ये देवताओं की सात मूर्छनाएँ हैं।

विशेष– नन्दी प्रभृति मूर्छनाएँ सङ्गीतरत्नाकर में गान्धारग्राम की मूर्छनाएँ मानी गईं हैं। भरतनाट्यशास्त्र में इन मूर्छनाओं का कोई प्रतिपादन नहीं है। नारदीयशिक्षा के

व्याख्याकार भट्टशोभाकर तो इन मूर्छनाओं को सभी ग्रामों में होने वाली देवताओं की मूर्छना बताते हैं॥९॥

आप्यायनी विश्वभृता चन्द्रा हेमा कपर्दिनी।
मैत्री च बार्हती चैव पितॄणां सप्त मूर्छनाः॥१०॥

अन्वयः– आप्यायनी विश्वभृता चन्द्रा हेमा कपर्दिनी मैत्री च बार्हती च एव सप्त पितॄणाम् मूर्छनाः (विज्ञेयाः)।

विशेषः– पित्र्यमूर्छनाविशेषनामग्रहणपरस्य अस्य श्लोकस्य शब्दार्थानां पृथक् प्रतिपादनं सरलार्थस्य पृथक् प्रतिपादनं चाऽनावश्यकम्। एतासां मूर्छनानामपि भरतनाट्यशास्त्रेऽष्टाविंशेऽध्याये प्रतिपादनं न दृश्यते। शार्ङ्गदेवकृते सङ्गीतरत्नाकरे (१।४।२४) तु–

आप्यायनी विश्वहृता चन्द्रा हेमा कपर्दिनी।
मैत्री चान्द्रमती पित्र्या मध्यमे मूर्छना इमाः॥

इति प्रोक्तम्। तत्र नारदीयशिक्षाया "**विश्वभृता**" इत्यस्य स्थाने "**विश्वहृता**" इति "**बार्हती**" इत्यस्य स्थाने "**चान्द्रमती**" इति च शब्दोऽवधेयः। शार्ङ्गदेवमते एता मध्यमग्रामे मूर्छनाः। भट्टशोभाकरमते षड्जग्रामादिषु त्रिष्वेव ग्रामेषु एता पितॄणां मूर्छना अवगम्यन्ते।

हिन्दी– आप्यायनी, विश्वभृता, चन्द्रा, हेमा, कपर्दिनी, मैत्री और बार्हती ये पितरों की सात मूर्छनाएँ हैं।

विशेष– आप्यायनीप्रभृति मूर्छनाएँ सङ्गीतरत्नाकर में मध्यमग्राम की पित्र्य मूर्छनाएँ मानी गई हैं। भरतनाट्यशास्त्र में इन मूर्छनाओं का कोई प्रतिपादन नहीं है। भरतनाट्यशास्त्र में (२८।३१) तो मध्यमग्राम की मूर्छनाओं में सौवीरीप्रभृति मूर्छनाएँ गिनाई गई हैं। नारदीयशिक्षा के प्राचीन संस्कृत व्याख्याकार भट्टशोभाकर तो इन आप्यायनीप्रभृति मूर्छनाओं को सभी ग्रामों में होनेवाली पितरों की मूर्छना बताते हैं॥१०॥

षड्जे तूत्तरमन्द्रा स्यादृषभे चा-ऽभिन्रुद्-गता।
अश्वक्रान्ता तु गान्धारे तृतीया मूर्छना स्मृता॥११॥
मध्यमे खलु सौवीरा हृष्यका पञ्चमे स्वरे।

धैवते चाऽपि विज्ञेया मूर्छना तूत्तरायता॥१२॥
निषादे रजनी विद्याद् ऋषीणां सप्त मूर्छनाः।

अन्वयः– षड्जे तु (मूर्छना) उत्तरमन्द्रा स्यात्, ऋषभे च (मूर्छना) अभिरुद्गता (स्यात्), गान्धारे तु अश्वक्रान्ता (इति) तृतीया मूर्छना स्मृता, मध्यमे खलु (मूर्छना) सौवीरा (स्मृता), पञ्चमे स्वरे (मूर्छना) हृष्यका (स्मृता), धैवते च अपि तु मूर्छना उत्तरायता विज्ञेया, निषादे (मूर्छना) रजनी (विज्ञेया) (एवम्) ऋषीणाम् सप्त मूर्छनाः विद्यात्।

शब्दार्थः– षड्जे=मूर्छनाया आद्ये स्वरे षड्जाख्ये सति, (मूर्छना= क्रमबद्धा आरोहावरोहान्यतरवती स्वरसंहतिः), उत्तरमन्द्रा=उत्तरमन्द्राख्या, स्यात्=भवेत्; ऋषभे=मूर्छनाया आद्ये स्वरे ऋषभाख्ये सति, (मूर्छना=उक्तविधा स्वरसंहतिः), अभि-रुद्-गता=अभि-रुद्-गताख्या, (स्यात्=भवेत्); गान्धारे= मूर्छनाया आद्ये स्वरे गान्धाराख्ये सति, तु=हि, अश्वक्रान्ता=अश्वक्रान्ताख्या, (इति=एषा), तृतीया=तिसृणां पूरणी, मूर्छना=उक्तविधा स्वरसंहतिः, स्मृता= स्मरणविषयं गता; मध्यमे=मूर्छनाया आद्ये स्वरे मध्यमाख्ये सति, खलु=हि, (मूर्छना=उक्तविधा स्वरसंहतिः), सौवीरा=सौवीराख्या, (स्मृता=स्मरणविषयं गता); पञ्चमे स्वरे=मूर्छनाया आद्ये स्वरे पञ्चमे स्वरे सति, (मूर्छना=उक्तविधा स्वरसंहतिः), हृष्यका=हृष्यकाख्या, (स्मृता=स्मरणविषयं गता); धैवते=मूर्छनाया आद्ये स्वरे धैवताख्ये, च=अपि, अपि=च, तु=हि, मूर्छना=उक्तविधा स्वरसंहतिः, उत्तरायता=उत्तरायताख्या, विज्ञेया=वेदितव्या; निषादे=मूर्छनाया आद्ये स्वरे निषादाख्ये सति, (मूर्छना=उक्तविधा स्वरसंहतिः), रजनी=रजन्याख्या, (विज्ञेया=वेदितव्या); (एवम्=इत्थम्), ऋषीणाम्=वसिष्ठादीनाम् ऋषीणाम्, सप्त=अश्वमिताः, मूर्छनाः=क्रमबद्धा आरोहावरोहान्यतरवतीः स्वरसंहतीः, विद्यात्=जानीयात्।

सरलार्थः– मूर्छनाया आद्ये स्वरे षड्जाख्ये सति सा मूर्छना उत्तर-मन्द्राख्या स्यात्, मूर्छनाया आद्ये स्वरे ऋषभाख्ये सति सा मूर्छना अभि-रुद्-गता-ख्या स्यात्, मूर्छनाया आद्ये स्वरे गान्धाराख्ये सति सा मूर्छना अश्वक्रान्ताख्या

तृतीया मूर्च्छना स्मृता, मूर्च्छनाया आद्ये स्वरे मध्यमाख्ये सति सा मूर्छना सौवीराख्या स्मृता, मूर्च्छनाया आद्ये पञ्चमे स्वरे सति सा मूर्छना हृष्यकाख्या स्मृता, मूर्च्छनाया आद्ये स्वरे धैवताख्ये सति सा मूर्छना उत्तरायताख्या वेदितव्या, मूर्छनाया आद्ये स्वरे निषादे सति सा मूर्छना रजनीनाम्नी विज्ञेया; एवं वसिष्ठादीनामृषीणां सप्त मूर्छनाः जानीयात्।

विशेषः– भरतनाट्यशास्त्रे (२८।२७-३१) मूर्छनानां प्रतिपादनमेवं कृतमस्ति–

"अथ मूर्च्छनाः द्वैग्रामिक्यश्चतुर्दश –

आदावुत्तरमन्द्रा स्याद [illegible]नी चोत्तरायता।
चतुर्थी शुद्धषड्जा तु पञ्चमी मत्सरीकृता॥
अश्वक्रान्ता तथा षष्ठी सप्तमी चाऽभिरुद्गता।
षड्जग्रामाश्रिता ह्येता विज्ञेयाः सप्त मूर्छनाः॥

आसां षड्ज-निषाद-धैवत-पञ्चम-मध्यम-गान्धार-ऋषभा आनुपूर्व्या आद्याः स्वराः।

षड्जे चोत्तरमन्द्रा स्यादृषभे चाऽभिरुद्गता।
अश्वक्रान्ता तु गान्धारे मध्यमे मत्सरीकृता॥
पञ्चमे शुद्धषड्जा स्याद् धैवते चोत्तरायता।
निषादे रजनी च स्यादित्येताः षड्जमूर्छनाः॥

अथ मध्यमग्रामे –

सौवीरी हरिणाश्वा च स्यात् कलोपनता तथा।
शुद्धमध्या तथा मार्गी पौरवी हृष्यका तथा॥
मध्यमग्रामजा ह्येता विज्ञेयाः सप्त मूर्छनाः।

आसां मध्यम-गान्धार-ऋषभ-षड्ज-निषाद-धैवत-पञ्चमा आनुपूर्व्या आद्या स्वराः।" इति।

सङ्गीतरत्नाकरे (१।४।२१-२३) तु नारदीयशिक्षाया एवाऽनुगमनं कृत्वा षड्जग्रामे ऋषीणां सप्त मूर्छनाः एवं प्रतिपादिताः–

यक्ष-रक्षो-नारदा-ऽब्जभव-नागा-ऽश्वि-पाशिनः।
षड्जग्रामे मूर्छनानामेताः स्युर् देवताः क्रमात्॥
तासामन्यानि नामानि नारदो मुनिरब्रवीत्।
मूर्छनोत्तरवर्णाऽऽद्या षड्जग्रामेऽभिन्रुद्गता॥
अश्वक्रान्ता च सौवीरी हृष्यका चोत्तरायता।
रजनीति समाख्याता ऋषीणां सप्त मूर्छनाः॥" इति।

तत्र भरतनाट्यशास्त्र-नारदीयशिक्षयोर् मूर्छनायाः प्रतिपादने कोऽपि मतभेदोऽस्तीत्यवगन्तव्यम्। भट्टशोभाकरव्याख्यानुसारं नारदीयशिक्षाकारमते षड्जग्रामे गान्धारग्रामे मध्यमग्रामे च प्रत्येकं देव-पितृ-ऋषिमूर्छनाभेदेन एकविंशतिर् मूर्छना भवन्ति, तत्र गान्धारग्रामस्था मूर्छनाः स्वर्गे एव प्रयुज्यन्ते, न मनुष्यलोके इति च वेदितव्यम्। भरतनाट्यशास्त्रे तु षड्जग्रामे सप्त मध्यमग्रामे सप्तेति चतुर्दशैव मुख्या मूर्छनाः प्रतिपादिता अवगम्यन्ते। तत्र षड्जग्रामाश्रितानां सप्तानां मूर्छनानां द्विःप्रतिपादनं तु तत्र पाठे काममपि अव्यवस्थिततां सूचयति। सङ्गीतरत्नाकरे च षड्जग्रामे सप्त ऋषीणां मूर्छनाः (१।४।२१,२२,२३) मध्यमग्रामे पित्र्याः सप्त मूर्छनाः (१।४।२४) गान्धारग्रामे स्वर्गे प्रयोक्तव्याः सप्त मूर्छनाश्च प्रोक्ताः (१।४।२५,२६)। तत्र भट्टशोभाकरोक्त-प्रकारेण प्रतिग्रामं सप्तसप्त मूर्छनाः भवन्तीति तु न प्रतिपादितम्। उत्तरमन्द्रायां गानं माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेद-शतपथब्राह्मणेऽपि (१३।४।२,८, १३।४।३।५, १३।४।३।५) समुल्लिखितमस्ति। कात्यायनश्रौतसूत्रे च **"प्रयाजेषु ब्राह्मणो यजमानस्स्य यज्ञदानयुक्ताः स्वयङ्कृतास् तिस्रो गाथा गायत्त्यु-त्तरमन्द्रायाम्"** (२०।२।७) इत्यादि प्रोक्तमस्ति।

हिन्दी – मूर्छना का आद्य स्वर षड्ज होने पर वह मूर्छना उत्तरमन्द्रा कही जाती है, मूर्छना का आद्य स्वर ऋषभ होने पर वह मूर्छना अभिन्रुद्गता कही जाती है, मूर्छना का आद्य स्वर गान्धार होने पर वह मूर्छना अश्वक्रान्ता नाम की तीसरी मूर्छना मानी जाती है, मूर्छनाका आद्य स्वर मध्यम होने पर वह मूर्छना सौवीरा मानी जाती है, मूर्छना का आद्य स्वर पञ्चम स्वर होने पर वह मूर्छना हृष्यका मानी जाती है, मूर्छना का आद्य स्वर धैवत होने पर उस मूर्छना को उत्तरायता जानना चाहिए, मूर्छना का आद्य स्वर निषाद होने पर उस मूर्छना को रजनी जानना चाहिए; इस प्रकार वसिष्ठादि ऋषियों की सात मूर्छनाओं को जाने।

उपजीवन्ति गन्धर्वा देवानां सप्त मूर्छनाः॥१३॥
पितृणां मूर्छनाः सप्त तथा यक्षा न संशयः।
ऋषीणां मूर्छनाः सप्त यास्त्विमा लौकिकाः स्मृताः॥१४॥

अन्वयः– गन्धर्वाः देवानाम् सप्त मूर्छनाः उपजीवन्ति, तथा यक्षाः पितृणां सप्त मूर्छनाः (उपजीवन्ति), (अत्र) संशयः न (अस्ति), याः तु इमा ऋषीणां सप्त मूर्छनाः (ताः) लौकिकाः स्मृताः (जनाः) (उपजीवन्ति)।

शब्दार्थः– गन्धर्वाः=गन्धर्वाख्या देवयोनिविशेषाः, देवानाम्=सुराणाम्, सप्त=अश्वमिताः, मूर्छनाः=स्वरारोहावरोहान्यतरविशिष्टाः स्वरसंहतीः, उपजीवन्ति=अवलम्बन्ते; तथा=तेनैव प्रकारेण, यक्षाः=यक्षाख्या देवयोनिविशेषाः, पितृणाम्=चन्द्रलोके स्थितानां प्राणिविशेषाणाम्, सप्त=अश्वमिताः, मूर्छनाः= उक्तविधाः स्वरसंहतीः, (उपजीवन्ति=अवलम्बन्ते), (अत्र=एतस्मिन् विषये), संशयः=सन्देहः, न (अस्ति)=नैव (वर्तते); याः=साकाङ्क्षबुद्धिविषयभूताः, तु=हि, इमाः=एतर्हि एव निर्दिष्टाः, ऋषीणाम्=वसिष्ठादीनाम् ऋषीणाम्, सप्त=अश्वमिताः, मूर्छनाः=उत्तरमन्द्राद्या उक्तविधाः स्वरसंहतयः, (ताः=आकाङ्क्षापूरणबुद्धि-विषयभूता उक्तविधाः स्वरसंहतीः), लौकिकाः=मनुष्यलोके स्थिताः, स्मृताः= स्मरणविषयभूताः, (जनाः=मनुष्याः), (उपजीवन्ति=अवलम्बन्ते, उपभुञ्जते इति यावत्)।

सरलार्थः– गन्धर्वा देवानां नन्दीप्रभृतिकाः सप्त मूर्छनाः उपजीवन्ति, तथा यक्षाः पितृणाम् आप्यायनीप्रभृतिकाः सप्त मूर्छना उपजीवन्ति, अत्र संशयो नास्ति, यास् तु ऋषीणाम् उत्तरमन्द्राप्रभृतिकाः सप्त मूर्छनाः तास् तु मर्त्यलोके वर्तमाना मनुष्या उपजीवन्ति।

हिन्दी– गन्धर्वलोग देवों की नन्दी प्रभृति सात मूर्छनाओं को प्रयोग में लाते हैं; उसी प्रकार यक्षलोग पितरों की आप्यायनी प्रभृति सात मूर्छनाओं को प्रयोग में लाते हैं, इस विषय में सन्देह नहीं है; जो ये ऋषियों की उत्तरमन्द्रा प्रभृति सात मूर्छनाएँ हैं, उन को मर्त्यलोक में वर्तमान मनुष्य उपयोग में लाते हैं॥१४॥

षड्जः प्रीणाति वै देवानृषीन् प्रीणाति चर्षभः।
पितॄन् प्रीणाति गान्धारो गन्धर्वान् मध्यमः स्वरः॥१५॥

देवान् पितॄनृषींश् चैव स्वरः प्रीणाति पञ्चमः।
यक्षान् निषादः प्रीणाति भूतग्रामं च धैवतः॥१६॥

अन्वयः– षड्जः (स्वरः) देवान् प्रीणाति वै, ऋषभः (स्वरः) च ऋषीन् प्रीणाति, गान्धारः (स्वरः) पितॄन् प्रीणाति, मध्यमः स्वरः गन्धर्वान् प्रीणाति, पञ्चमः स्वरः देवान् पितॄन् ऋषीन् च एव प्रीणाति, धैवतः (स्वरः) च भूतग्रामम् (प्रीणाति), निषादः (स्वरः) यक्षान् प्रीणाति।

शब्दार्थः– षड्जः=मयूरवाणीसदृशः स्वरविशेषः, देवान्=सुरान्, प्रीणाति=परितोषयति, वै=हि, ऋषभः=गोशब्दसदृशः स्वरविशेषः, च=अपि, ऋषीन्=वसिष्ठादीन् ऋषीन्, प्रीणाति=परितोषयति, गान्धारः=अजाविकशब्दसदृशः स्वरविशेषः, पितॄन्=चन्द्रलोके स्थितान् प्राणिविशेषान्, प्रीणाति=परितोषयति, मध्यमः स्वरः=क्रौञ्चस्वनसदृशः स्वरविशेषः, गन्धर्वान्=गन्धर्वाख्यान् देवयोनिविशेषान्, प्रीणाति=परितोषयति, पञ्चमः स्वरः=कोकिलवाक्सदृशः स्वरविशेषः, देवान्=सुरान्, पितॄन्=चन्द्रलोके स्थितान् प्राणिविशेषान्, ऋषीन्=वसिष्ठादीन् ऋषीन्, च=अपि, एव=हि, प्रीणाति=परितोषयति, धैवतः (स्वरः)=घोटकशब्दसदृशः स्वरविशेषः, च=अपि, भूतग्रामम्=भूताख्यदेवयोनिविशेषसमूहम्, (प्रीणाति=परितोषयति), निषादः (स्वरः)=कुञ्जरशब्दसदृशः स्वरविशेषः, यक्षान्=यक्षाख्यान् देवयोनिविशेषान्,. प्रीणाति=परितोषयति।

सरलार्थः– षड्जः स्वरः देवान् परितोषयति, ऋषभः स्वरः ऋषीन् परितोषयति, गान्धारः स्वरः पितॄन् परितोषयति, मध्यमः स्वरः गन्धर्वान् परितोषयति, पञ्चमः स्वरः देवान् पितॄन् ऋषीन् अपि परितोषयति, धैवतः स्वरः भूताख्यदेवयोनिविशेषसमूहं परितोषयति, निषादः स्वरः खलु यक्षान् परितोषयति।

हिन्दी– (१) षड्ज स्वर देवताओं को प्रसन्न करता है, (२) ऋषभ स्वर ऋषियों को प्रसन्न करता है, (३) गान्धार स्वर पितरों को प्रसन्न करता है, (४) मध्यम स्वर गन्धर्वलोगों को प्रसन्न करता है, (५) पञ्चम स्वर देवताओं को पितारों को और ऋषिओं को भी प्रसन्न करता है, (६) धैवत स्वर भूतनामक देवयोनिविशेष के समूह को प्रसन्न करता है, (७) निषाद स्वर यक्षों को प्रसन्न करता है॥१५,१६॥

॥ इति प्रथमे प्रपाठके द्वितीया कण्डिका॥

अथ प्रथमे प्रपाठके तृतीया कण्डिका

प्रथमप्रपाठकस्य तृतीयायां कण्डिकायां गानगुणान् प्रतिपादयितुमुपक्रमते–

गानस्य तु दशविधा गुणवृत्तिः॥१॥

सरलार्थः– लौकिकस्य वैदिकस्य वाऽपि गानस्य दशप्रकारा गुणभेदकृता प्रवृत्तिर् भवति।

हिन्दी– लौकिक अथवा वैदिक गान की प्रवृत्ति गुणभेद से दस प्रकार की होती है॥१॥

तद् यथा– रक्तं पूर्णमलङ्कृतं प्रसन्नं व्यक्तं विक्रुष्टं श्लक्ष्णं समं सुकुमारं मधुरमिति गुणाः॥२॥

सरलार्थः– गानस्य दशविधा गुणवृत्तिर् यथा यैर् गुणैर् भवति तथा ते गुणा अत्रोच्यन्ते। तथा हि रक्तम्, पूर्णम्, अलङ्कृतम्, प्रसन्नम्, व्यक्तम्, विक्रुष्टम्, श्लक्ष्णम्, समम्, सुकुमारम्, मधुरम् इति दश गानगुणा भवन्ति।

हिन्दी– गान की दस प्रकार की गुणवृत्ति जैसे जिन गुणों से होती है वैसे वे दस गुण यहाँ बताए जाते हैं। (१) रक्त, (२) पूर्ण, (३) अलङ्कृत, (४) प्रसन्न, (५) व्यक्त, (६) विक्रुष्ट, (७) श्लक्ष्ण, (८) सम, (९) सुकुमार और (१०) मधुर ये दस गान के गुण (अच्छी विशेषताएँ) हैं॥२॥

तत्र रक्तं नाम– वेणु-वीणा-स्वराणामेकीभावे रक्तमित्युच्यते॥३॥

सरलार्थः– तेषु गानगुणेषु रक्तं नाम गुणः स्पष्टीक्रियते। वंशीस्वनवीणाक्वणित-पुरुषस्वराणां सुसमन्वयेन एकीभावे यद् रञ्जकत्वं तेन युक्तं गानं रक्तमिति कथ्यते।

विशेषः– "यंयं गाता स्वरं गच्छेत् तंतं वंशेन वादयेत्। शारीरवैण-वंश्यानामेकीभावः प्रशस्यते" इति भरतनाट्यशास्त्रे (३०।१०) प्रोक्तम्।

तत्रैव "अविचलितमविच्छिन्नं वर्णाऽलङ्कारसंयुतं विधिवत्। ललितं मधुरं स्निग्धं वेणोरेवं स्मृतं वाद्यम्॥ एवमेतत् स्वरगतं विज्ञेयं गानयोक्तृभिः" इति च (३०।११,१२) प्रतिपादितं द्रष्टव्यम्।

हिन्दी– गान के गुणों में रक्त नाम के गुण का स्पष्टीकरण किया जाता है। बाँसुरी का शब्द वीणाका झङ्कार और मनुष्य का कण्ठस्वर इन तीनों के सुसमन्वय से एकता होने पर गान में जो लोकमनोरञ्जकता आती है उस लोकमनोरञ्जकता से युक्त गान को रक्त कहा जाता है॥३॥

पूर्णं नाम– स्वरश्रुतिपूरणाच् छन्दःपादाक्षरसंयोगात् पूर्णमित्युच्यते॥४॥

सरलार्थः– तेषु गानगुणेषु पूर्णं नाम गानगुणः स्पष्टीक्रियते। षड्जादिस्वराणां दीप्तादिभिः श्रुतिभिः परिपूर्णाद् गायत्र्यादिच्छन्दसां पादानामक्षराणां संयोगाद् गानं पूर्णमिति कथ्यते।

हिन्दी– गान के गुणों में पूर्ण नाम के गुण का स्पष्टीकरण किया जाता है। जिस गान में गायत्र्यादि छन्दों के पादों के अक्षरों का समायोजन षड्जादि स्वरों की दीप्तादि श्रुतियों से अन्यूनाऽनतिरिक्तभाव से ठीकठीक रूप में परिपूर्ण होता है वह गान पूर्ण कहा जाता है॥४॥

अलङ्कृतं नाम– उरसि शिरसि कण्ठयुक्तमित्यलङ्कृतमित्युच्यते॥५॥

सरलार्थः– तेषु गानगुणेषु अलङ्कृतं नाम गानगुणः स्पष्टीक्रियते। मन्द्रस्वरस्थाने उरसि, तारस्वरस्थाने शिरसि च तत्तदनुकूलकण्ठस्वरयुक्तं गानम् अलङ्कृतं गानमिति कथ्यते।

विशेषः– स्वरगतं वर्णालङ्कारयुतत्वं भरतनाट्यशास्त्रेऽपि समुल्लिखितं द्रष्टव्यम् (३०।११,१२)। सङ्गीतरत्नाकरे च मन्द्र-तार-स्वरविशेषयोजनारूपः अलङ्कारः प्रतिपादितोऽस्ति (१।६।७,८)। वायुपुराणेऽपि मन्द्रतारयोगी अलङ्कारः प्रतिपादितोऽस्ति (२।२५।१-४)।

हिन्दी– गानगुणों में अलङ्कृत नाम के गुण का स्पष्टीकरण किया जाता है। जिस गान में मन्द्रस्वर के स्थान उरःस्थल में और तारस्वर के स्थान शिर में भी तत्तदनुकूल रूप में कण्ठस्वर का योग होता है, उस सुमनोहर गान को अलङ्कृत गान कहते हैं॥५॥

प्रसन्नं नाम– अपगतगद्गदं निर्विशङ्कं प्रसन्नमित्युच्यते॥६॥

सरलार्थः– तेषु गानगुणेषु प्रसन्नं नाम गानगुणः स्पष्टीक्रियते। गद्गदस्वररहितं विविधाभिः उच्चारणविघ्नकरीभिः अशुद्धिशङ्काभिर् नितरां हीनं गानं प्रसन्नमिति कथ्यते।

विशेषः– गद्गदस्वरो नाम कण्ठस्य निष्पीडनेनोच्चारणाद् वारंवारं रुद्धो द्विगुणीभूत इवोच्चारितः स्वरो ज्ञेयः।

हिन्दी– गानगुणों में प्रसन्न नाम के गुण का स्पष्टीकरण किया जाता है। गद्गद स्वर से रहित (हकलाकर उच्चारित स्वर से रहित), उच्चारण में विविध रूप से विघ्न करनेवाली अशुद्धियों की शङ्का से सर्वथा रहित गान को प्रसन्न गान कहते हैं॥६॥

व्यक्तं नाम– पद-पदार्थ-प्रकृति-विकारा-ऽऽगम-लोप-कृत्-तद्धित-समास-धातु-निपातोपसर्ग-स्वर-लिङ्ग-वृत्ति-वार्त्तिक-विभक्त्यर्थ-वचनानां सम्यगुपपादने व्यक्तमित्युच्यते॥७॥

सरलार्थः–तेषु गानगुणेषु व्यक्तं नाम गानगुणः स्पष्टीक्रियते। पदानाम्, पदार्थानाम्, प्रकृतिभावस्य, वर्णविकाराणाम्, वर्णागमानाम्, वर्णलोपस्य, कृत्प्रत्यययोगस्य, तद्धितप्रत्यययोगस्य, अव्ययीभावादिसमासानाम्, धातूनाम्, निपातानाम्, उपसर्गाणाम्, उदात्तादिस्वराणाम्, पुलंलिङ्गादीनां लिङ्गानाम्, वृत्त्या सामान्येनाऽवधारितानामर्थानाम्, वार्त्तिकैः ऊहापोहपूर्वकं विशेषेणा-ऽवधारितानामर्थानाम्, प्रथमादिविभक्तीनाम् अर्थानाम्, एकवचनादीनां वचनानां च सम्यग् ज्ञानं कृत्वा तदनुकूलरूपेण गेयस्य स्फुटतया प्रयोमेण कृतं गानं व्यक्तमिति कथ्यते।

हिन्दी– गानगुणों में व्यक्त नाम के गुण का स्पष्टीकरण किया जाता है। पदों का, पदों के अर्थों का, संहिता में प्रकृतिभाव का, संहिता में वर्णों के विकार का, संहिता में वर्णों के आगम का, संहिता में वर्णों के लोपों का, कृत्प्रत्यय के योग का, तद्धित प्रत्यय के योग का, अव्ययीभाव-तत्पुरुष-बहुव्रीहि-द्वन्द्व-समासों का भू-वा-प्रभृति धातुओं का, तु हि

च स्म ह वै इत्यादि निपातों का, प्र परा अप सम् इत्यादि उपसर्गों का, उदात्तादि स्वरों का, पुलँलिङ्ग-स्त्रीलिङ्गादि लिङ्गों का, परार्थाभिधायिनी वृत्ति से सामान्य रूप से अवधारित अर्थों का, ऊहापोहपूर्वक विशेष रूप से अर्थ का निश्चय करनेवाले वार्त्तिकों से निश्चित अर्थों का, प्रथमा-द्वितीयादि विभक्तियों के अर्थों का और एकवचन-द्विवचनादि वचनों का भी ठीकठीक ज्ञान करके तदनुकूल रूप में गेय वस्तु का स्पष्ट रूप से प्रयोग कर के किया गया गान व्यक्त गान कहा जाता है ॥७॥

विक्रुष्टं नाम– उच्चैरुच्चारितं व्यक्तपदाक्षरं विक्रुष्ट-मित्युच्यते ॥८॥

सरलार्थः– तेषु गानगुणेषु विक्रुष्टं नाम गानगुणः स्पष्टीक्रियते। दूर-श्रवणीयत्वप्रयोजकपरिमाणाधिक्यवत्त्वरूपेण उच्चैस्त्वेन उच्चारितं सुस्पष्टैः पदैः अक्षरैश्च युक्तं गानं विक्रुष्टमिति कथ्यते।

हिन्दी– गान के गुणों में विक्रुष्ट नाम के गुण का स्पष्टीकरण किया जाता है। दूर से श्रवणीय होने से अधिक परिमाण वाले रूप के उच्च शब्द से उच्चारित और स्पष्ट पदों और अक्षरों से युक्त गान विक्रुष्ट गान कहा जाता है ॥८॥

श्लक्ष्णं नाम– अद्रुतमविलम्बितमुच्चनीचप्लुतसमाहारं लयतालोपनयादिभिरुपपादनाभिः श्लक्ष्णमिच्युच्यते ॥९॥

सरलार्थः– तेषु गानगुणेषु श्लक्ष्णं नाम गानगुणः स्पष्टीक्रियते। द्रुतया वृत्त्या रहितम्, विलम्बितया वृत्त्या च रहितम्, उच्चस्य नीचस्य प्लुतस्य च स्वरस्य समीकरणेन युक्तं लयेन तालेन उपनयादिभिः उपपादनादिभिश्च समवेतं गानं श्लक्ष्णमिति कथ्यते।

विशेषः– **"श्लक्ष्णस् तु तैलधारावदच्छिद्रो धीरसम्मतः"** इति शार्ङ्ग-देवेन सङ्गीतरत्नाकरे तृतीये प्रकीर्णकाध्याये शब्दगुणप्रकरणे (श्लो.७४) श्लक्ष्ण-त्वमुक्तम्।

हिन्दी– गानगुणों में श्लक्ष्ण नाम के गुण का स्पष्टीकरण किया जाता है। ज्यादा जल्दी से अनुच्चारित, ज्यादा विलम्ब से भी अनुच्चारित, उच्च और नीच स्वरों का तथा ह्रस्व-दीर्घ-प्लुत मात्राओं का भी समीचीन प्रयोग से युक्त और लय ताल और उपनय इत्यादि के समीचीन उपयोग से भी सुशोभन रूप में पहुँचा हुआ गान श्लक्ष्ण गान कहा जाता है ॥९॥

समं नाम– आवाप-निर्वाप-प्रदेशं प्रति अन्तरस्थानानां समासः सममित्युच्यते ॥१०॥

सरलार्थः– तेषु गानगुणेषु समं नाम गानगुणः स्पष्टीक्रियते। गाने स्वराणाम् आपूरणस्य न्यूनीकरणस्य च प्रदेशानां व्यवधानस्थानेषु स्वराणां समुचितक्रमेण समवस्थापनं सममिति कथ्यते।

हिन्दी – गानगुणों में सम नाम के गुण का स्पष्टीकरण किया जाता है। गान में स्वरों को बढाने के और न्यूनीकरण के स्थानों के अन्तरालस्थानों में स्वरों का समुचित क्रम से समायोजन सम कहा जाता है ॥१०॥

सुकुमारं नाम– मृदुपदं वर्णस्वरकुहरणयुक्तं सुकुमारमित्युच्यते ॥११॥

सरलार्थः– तेषु गानगुणेषु सुकुमारं नाम गानगुणः स्पष्टीक्रियते। कोमलैः पदोच्चारणैर् युक्तं कठोरपदरहितं कण्ठनिष्पीडनेन मृदुतया किञ्चिदव्यक्तरूपेण कृतेन वर्णानां स्वराणां च उच्चारणेन युक्तं गानं सुकुमारं गानमिति कथ्यते।

हिन्दी – गान के गुणों में सुकुमार नाम के गुण का स्पष्टीकरण किया जाता है। कोमल पदोच्चारणों से युक्त और कठोर पदों से रहित, गले को कुछ दबा कर कोमल रूप से कुछ अव्यक्त रूप में किए गए वर्णों के और स्वरों के उच्चारण से युक्त गान सुकुमार गान कहा जाता है ॥११॥

मधुरं नाम– स्वभावोपनीत-ललित-पदाक्षर-गुणसमृद्धं मधुरमित्युच्यते ॥१२॥

सरलार्थः– तेषु गानगुणेषु मधुरं नाम गानगुणः स्पष्टीक्रियते। मधुरकण्ठ-सुविनीत-गायकस्वभावेन उपनीतैः ललितैः पदैः अक्षरैः गुणैश्च समृद्धं गानं मधुरं गानमिति कथ्यते।

विशेषः– गायकगुणाः "हृद्यशब्दः सुशारीरः" इत्यादिना शार्ङ्गदेवेन सङ्गीतरत्नाकरे तृतीये प्रकीर्णकाध्याये (श्लो.१३-१७) प्रोक्ताः।

हिन्दी – गान के गुणों में मधुर नाम के गानगुण का स्पष्टीकरण किया जाता है। मधुरकण्ठवाले सुशिक्षित गायक के स्वभाव से समायोजित और उच्चारित मनोहर पदों से, अक्षरों से और गुणों से समृद्ध गान मधुर गान कहा जाता है ॥१२॥

एवमेतैर् दशभिर् गुणैर् युक्तं गानं भवति ॥१३॥

हिन्दी – इस प्रकार इन दस गुणों से युक्त गान होता है ॥१३॥

एतद्-विपरीता गीतिदोषा उच्यन्ते ॥१४॥

हिन्दी – ये जो गान के दस गुण बताए गए हैं, इन के विपरीत तत्त्व गान के दोष कहे जाते हैं ॥१४॥

विशेष – "एवमेतैर् दशभिर् गुणैर् युक्तं गानं भवति। एतद्-विपरीता गीतिदोषा उच्यन्ते। भवन्ति चाऽत्र श्लोकाः" इतना मूल का भाग दत्तात्रेयशास्त्री के लाहोरसंस्करण में मूल में ही (१९०९ क्रै.) पूरा है, सत्यव्रतसामश्रमी के संस्करण में (१९४७ संवत्) भी बीच के वाक्य को छोडकर और भाग मूल में ही है, शिक्षासङ्ग्रह में दतियासंस्करण में और भिसेसंस्करण में इस भाग को विवरणभाग की भाँति मुद्रित किया गया है।

भवन्ति चाऽत्र श्लोकाः –

शङ्कितं भीतमुद्घृष्टमव्यक्तमनुनासिकम्।
काकस्वरं शीर्षगतं तथा स्थानविवर्जितम् ॥१॥
विस्वरं विरसं चैव विश्लिष्टं विषमाहतम्।
व्याकुलं तालहीनं च गीतिदोषाश् चतुर्दश ॥२॥
आचार्याः सममिच्छन्ति पदच्छेदं तु पण्डिताः।
स्त्रियो मधुरमिच्छन्ति विक्रुष्टमितरे जनाः ॥३॥१५॥

अन्वयः – अत्र श्लोकाः च भवन्ति, शङ्कितम् भीतम् उद्घृष्टम् अव्यक्तम् अनुनासिकम् काकस्वरम् शीर्षगतम् तथा स्थानविवर्जितम् विस्वरम् विरसम् च एव विश्लिष्टम् विषमाहतम् व्याकुलम् तालहीनम् च (इति) चतुर्दश गीतिदोषाः (भवन्ति) ॥१-२॥ आचार्याः समम् इच्छन्ति, पण्डिताः तु पदच्छेदम् (इच्छन्ति), स्त्रियः मधुरम् इच्छन्ति, इतरे जनाः विक्रुष्टम् (इच्छन्ति) ॥३॥१५॥

शब्दार्थः– अत्र=एतस्मिन् गानदोषगुणविषये, श्लोकाः=पद्यानि, च= अपि, भवन्ति=सन्ति; शङ्कितम्=स्वरवर्णादिविषये शङ्कया युतेन गायकेनेव कृतं गानम्, भीतम्=भीतेनेव कृतं गानम्, उद्घृष्टम्=क्षुब्धं गानम्, अव्यक्तम्= अस्फुटं गानम्, अनुनासिकम्=नासिकास्थानाऽनुगततया कृतं गानम्, काक-स्वरम्=काकस्येव स्वरेण कण्ठं निष्पीड्य कृतम् उच्चैर् गानम्; शीर्षगतम्= शिरोगतेनाऽतितारस्वरेण कृतम् अत्युच्चैर् गानम्, तथा=तेनैव प्रकारेण, स्थानविवर्जितम्=उरःकण्ठशिरःस्थानव्यवस्थाविकलं गानम्, विस्वरम्=स्व-स्थानच्युतस्वरकं गानम्, विरसम्=विगतरसं प्रकृतरसप्रतिकूलं वा रूक्षं गानम्, च=अपि, एव=हि, विश्लिष्टम्=समुचितस्वरनैरन्तर्यविहीनं गानम्, विषमाहतम्= ह्रस्व-दीर्घ-प्लुतमात्राणां समुचितेन परिमाणेन रहितेन प्रयोगेण आहतं गानम्, व्याकुलम्=स्वरवर्णादिवैषम्येण कृतं गानम्, तालहीनम्=द्रुत-मध्यम-विलम्बित-वृत्तीनामनियमेन तालहीनतया वा प्रवृत्तं गानम्, च=अपि, (इति=एते), चतुर्दश=मनुमिताः, गीतिदोषाः=गानोत्कर्षविरोधिनो धर्माः (भवन्ति=सम्भ-वन्ति)॥१-२॥ आचार्याः=सदाचारवन्तः साङ्गवेदाध्यापकाः, कस्या अपि विद्याया उत्कृष्टाः सदाचारवन्त अध्यापका वा, समम्=पूर्वोक्तलक्षणं समं गानम्, इच्छन्ति=अभीष्टं मन्यन्ते, पण्डिताः=अर्थविवेकवन्तो जनाः, पदच्छेदम्= व्यक्तपदं गानम्, (इच्छन्ति=अभीष्टं मन्यन्ते), स्त्रियः=नार्यः, मधुरम्=पूर्वोक्त-लक्षणं मधुरं गानम्, इच्छन्ति=वाञ्छन्ति, इतरे=अन्ये, जनाः=मनुष्याः, विक्रुष्टम्=व्यक्तपदाक्षरम् उच्चैःप्रयुक्तं गानम्, इच्छन्ति=वाञ्छन्ति।

सरलार्थः– एतस्मिन् गानदोषगुणप्रतिपादनविषये प्रवृत्ताः श्लोका अपि सन्ति। (१) स्वरवर्णादिविषये शङ्कया युक्तेन गायकेनेव कृतं गानम्, (२) भीतेन गायकेनेव कृतं गानम्, (३) क्षुब्धं गानम्, (४) अस्फुटं गानम्, (५) नासिकास्थानानुगततया कृतं गानम्, (६) काकस्येव स्वरेण कण्ठं निष्पीड्य कृतम् उच्चैर् गानम्, (७) शिरोगतेनाऽतितारस्वरेण कृतम् अत्युच्चैर् गानम्, तथा (८) उरःकण्ठशिरःस्थानव्यवस्थाविकलं गानम्, (९) स्वस्थानच्युतस्वरकं गानम्, (१०) विगतरसं रूक्षं गानम्, (११) समुचितस्वरनैरन्तर्यविहीनं गानम्, (१२) ह्रस्व-दीर्घ-प्लुतमात्राणां समुचितेन परिमाणेन रहितेन प्रयोगेण आहतं गानम्, (१३) स्वरवर्णादिवैषम्येण युतं गानम्, (१४) द्रुत-मध्यम-विलम्बित-

वृत्तीनामनियमेन तालहीनतया वा प्रवृत्तं गानम् इत्येते चतुर्दश गानदोषाः सम्भवन्ति॥१,२॥ सदाचारवन्तः साङ्गवेदाध्यापकाः गानविद्याया उत्कृष्टाः सदाचारवन्तोऽध्यापका वा समं गानमभीष्टं मन्यन्ते, अर्थविवेकवन्तो जनाः व्यक्तपदं गानमभीष्टं मन्यन्ते, नार्यो मधुरं गानं वाञ्छन्ति, अन्ये जना व्यक्तपदाक्षरम् उच्चैःप्रयुक्तं गानं वाञ्छन्ति॥३॥१५॥

विशेषः– एते त्रयः श्लोका याज्ञवल्क्यशिक्षायामपि पठ्यन्ते। तत्र नारदीयशिक्षायां ये एते गीतिदोषा उक्तास्ते एव याज्ञवल्क्यशिक्षायां पाठदोषा उक्ताः सन्ति। आचार्याः सममिच्छन्तीत्यादिकस्य श्लोकस्य समत्व-व्यक्तपदत्व-मधुरत्व-सुस्पष्टोच्चत्वरूपैश् चतुर्भिरिव गुणैर् युक्तं गानं कर्तव्यम्, न त्वेकेनैव गुणेन युक्तमिति तात्पर्यं भट्टशोभाकरादिभिः प्रतिपादितं ज्ञेयम्।

हिन्दी– इस गान के दोष और गुण के प्रतिपादन में प्रवृत्त श्लोक भी हैं। (१) स्वर और वर्णों के विषय में शङ्का से युक्त गायक की भाँति किया गया गान, (२) डरे हुए गायक की भाँति किया गया गान, (३) विक्षुब्ध गान, (४) अस्पष्ट गान, (५) नाक के विशेष योग से किया गया गान, (६) काक की भाँति रूक्ष और उच्च स्वर से किया गया गान, (७) शीर्षस्थान से अति उच्च स्वर से किया गया गान, (८) उरः कण्ठ शिर ये तीन स्थानों के समुचित प्रयोग की व्यवस्था से विकल गान, (९) अपने स्थान से च्युत स्वरों से युक्त गान, (१०) विरस (रूक्ष) गान, (११) समुचित स्वरों के निरन्तरता से रहित (विच्छिन्न) गान, (१२) ह्रस्व-दीर्घ-प्लुत मात्राओं का समुचित परिमाण से रहित प्रयोग से आहत गान, (१३) स्वरवर्णादियों के वैषम्य से युक्त गान, (१४) द्रुत मध्यम विलम्बित वृत्तियों के अनियम से वा तालहीन रूप में प्रवृत्त गान, ये चौदह गान के दोष हो सकते हैं॥१,२॥ सदाचारवान् और वेदाङ्गसहित वेद पढाने वाले अथवा गानविद्या के उत्कृष्ट और सदाचार-वान् अध्यापकजन समत्वगुण से युक्त गान को अभीष्ट मानते हैं, अर्थविवेचन करने वाले पण्डित लोग स्पष्ट पदच्छेद से युक्त गान को अच्छा मानते हैं, स्त्रियाँ मधुर गान चाहती हैं, अन्य लोग स्पष्ट पद और अक्षर से युक्त गान को अच्छा मानते हैं॥३॥

विशेष– "आचार्याः सममिच्छन्ति" इत्यादि श्लोक का समत्व व्यक्तपदत्व मधुरत्व और सुस्पष्टत्वकारक उच्चत्व इन चार ही गुणों से युक्त गान ही श्रेष्ठ माना जाता है, यह तात्पर्य भट्टशोभाकरादि बताते हैं॥१५॥

॥ इति प्रथमे प्रपाठके तृतीया कण्डिका॥

अथ प्रथमे प्रपाठके चतुर्थी कण्डिका

पद्मपत्रप्रभः षड्ज ऋषभः शुकपिञ्जरः।
कनकाभस् तु गान्धारो मध्यमः कुन्दसप्रभः॥१॥
पञ्चमस् तु भवेत् कृष्णः पीतकं धैवतं विदुः।
निषादः सर्ववर्णः स्यादित्येताः स्वरवर्णताः॥२॥

अन्वयः– षड्जः पद्मपत्रप्रभः (भवेत्), ऋषभः शुकपिञ्जरः (भवेत्), गान्धारः तु कनकाभः (भवेत्), मध्यमः कुन्दसप्रभः (भवेत्), पञ्चमः तु कृष्णः भवेत्, धैवतं पीतकं विदुः, निषादः सर्ववर्णः स्यात् इति एताः स्वरवर्णताः (ज्ञेयाः)।

शब्दार्थः– षड्जः=मयूरवाणीसदृशः स्वरविशेषः, पद्मपत्रप्रभः=कमलपुष्पपत्रकवर्णः (पीताभश्वेतवर्णः), (भवेत्=स्यात्), ऋषभः=गोशब्दसदृशः स्वरविशेषः, शुकपिञ्जरः=शुकवत् हरितपीतः, (भवेत्=स्यात्), गान्धारः=अजाविकशब्दसदृशः स्वरविशेषः, तु=हि, कनकाभः=स्वर्णतुल्यवर्णः, मध्यमः=क्रौञ्चशब्दतुल्यः स्वरविशेषः, कुन्दसप्रभः=माघ्यपुष्पतुल्यवर्णः, (भवेत्=स्यात्), पञ्चमः=कोकिलशब्दतुल्यः स्वरविशेषः, तु=हि, कृष्णः=कालः, भवेत्=स्यात्, धैवतम्=घोटकशब्दतुल्यस्वरविशेषम्, पीतकम्=हरिद्राभम्, विदुः=स्वरविशेषज्ञा नारदाद्या मुनयो जानन्ति; निषादः=कुञ्जरशब्दतुल्यः स्वरविशेषः, सर्ववर्णः=कर्बुरः, स्यात्=भवेत्, इति=एवंप्रकाराः, एताः=अग्रे निर्दिष्टाः, स्वरवर्णताः=षड्जादिस्वररूपविशेषाः (ज्ञेयाः=वेदितव्याः)।

सरलार्थः– षड्जः स्वरः कमलपत्रतुल्यसितवर्णः स्यात्, ऋषभः स्वरः शुकतुल्यहरितपीतवर्णः स्यात्, गान्धारः स्वरः स्वर्णतुल्यवर्णः स्यात्, मध्यमः स्वरः कुन्दपुष्पसदृशश्वेतवर्णः स्यात्, पञ्चमः स्वरः कृष्णो भवेत्, मुनयो धैवतं स्वरं पीतं जानन्ति, निषादः स्वरः सर्ववर्णमिश्रवर्णः स्यात्, इत्येवंरूपाः स्वराणां वर्णाः ज्ञेयाः।

विशेषः– अत्रोक्ताः षड्जादिस्वरवर्णाः षड्जाद्यधिष्ठात्रीणां देवतानां वर्णाः सन्तीति भट्टशोभाकरो वदति। षड्जादिस्वरवर्णविषये माण्डूकीयशिक्षायामपि प्रायेणैतादृशावेव श्लोकौ दृश्येते। तथा हि–

पद्मपत्रप्रभः षड्जः ऋषभः शुकपिञ्जरः।
कनकाभस् तु गान्धारो मध्यमः कुन्दसप्रभः॥
पञ्चमस् तु भवेत् कृष्णः पीतवर्णस् तु धैवतः।
निषादः सर्ववर्णाभ इत्येते स्वरवर्णकाः॥ इति (१।१३,१४)।

स्वरवर्णविषये सङ्गीतरत्नाकरे (१।३।५५-५६) चोक्तम्–

.... वर्णास् त्विमे क्रमात्।
पद्माभः पिञ्जरः स्वर्णवर्णः कुन्दप्रभोऽसितः॥
पीतः कर्बुर इत्येषाम् ....॥ इति।

पिङ्गलच्छन्दःसूत्रे (३।६४,६५) च गायत्र्यादिच्छन्दसां स्वरवर्णविषये– **"स्वराः षड्जर्षभगान्धारमध्यमपञ्चमधैवतनिषादाः, सित-सारङ्ग-पिशङ्ग-कृष्ण-नील-लोहित-गौरा वर्णाः"** इत्युक्तत्वाद् षड्जादीनां वर्णा अर्थादुक्ता अवगम्यन्ते। अग्निपुराणेऽपि (३३०।१९-२१) षड्जादीनां श्वेतादयो वर्णा उक्ताः। किन्तु तत्र नारदीयशिक्षा-माण्डूकीयशिक्षा-सङ्गीतरत्नाकरादिप्रतिपादनेन सह कोऽपि विसंवादो दृश्यते इति च ज्ञेयम्।

छन्दोवर्णनिरूपणे तु ऋग्वेदप्रातिशाख्ये–

एतेनैव क्रमेणैषां वर्णतो भक्तिरुच्यते।
श्वेतं च सारङ्गमतः पिशङ्गं कृष्णमेव च॥
नीलं च लोहितं चैव सुवर्णमिव सप्तमम्।
अरुणं श्याम-गौरे च बभ्रु वै नकुलं तथा॥
पृश्निवर्णं च वैराजं निचृच् छ्यावं पृषद् भुरिक्।
ब्रह्मसामगर्यजुश्छन्दः कपिलं वर्णतः स्मृतम्॥ (१७।१३-१८)

इत्युक्तमस्तीत्यप्यत्र स्मर्तव्यम्। छन्दोवर्णविषये यादवप्रकाशेन पिङ्गलच्छन्दःसूत्रभाष्ये (३।६६) धृता अधोलिखिताः श्लोकाश्च सुधीभिः स्मर्तव्याः–

शुक्लवर्णास्तु गायत्र्यः सारङ्गं रूपमुष्णिहाम्।
पिशङ्गं ककुभां रूपं कृष्णं रूपमनुष्टुभाम्॥

बार्हतं लोहितं ज्ञेयं पाङ्क्तं नीलमुदाहृतम्।
सुवर्णं त्रिष्टुभो रूपं गौरं जागतमुच्यते॥ इति।

हिन्दी– षड्ज स्वर कमल के पत्र के तुल्य पीताभश्वेतवर्णवाला होता है, ऋषभ स्वर तोते की भाँति हरितपीतवर्णवाला होता है, गान्धार स्वर सोने का तुल्य वर्णवाला होता है, मध्यम स्वर कुन्दपुष्पसदृश श्वेत होता है, पञ्चम स्वर काला होता है, धैवत स्वर पीला होता है, निषाद स्वर चितकबरा होता है; इस प्रकार के ये स्वरों के वर्ण विज्ञेय हैं।

पञ्चमो मध्यमः षड्ज इत्येते ब्राह्मणाः स्मृताः।
ऋषभो धैवतश् चापीत्येतौ हि क्षत्रियावुभौ॥३॥
गान्धारश्च निषादश्च वैश्यावर्धेन वै स्मृतौ।
शूद्रत्वं विद्धि चाऽर्धेन पतितत्वान् न संशयः॥४॥

सरलार्थः– पञ्चमः मध्यमः षड्ज इति एते त्रयः स्वराः ब्राह्मणा इति मुनिभिः स्मृताः, ऋषभः धैवतश्चेति एतौ उभौ अपि स्वरौ क्षत्रियौ स्मृतौ, गान्धारः निषादश्चेति एतौ द्वौ स्वरौ अर्धेन वैश्यौ वै स्मृतौ; अनयोः गान्धार-निषादयोः अर्धेन पतितत्वाद् अर्धेन शूद्रत्वञ्च जानीहि; एतस्मिन्नर्थे सन्देहो नास्ति।

हिन्दी– पञ्चम, मध्यम और षड्ज ये तीन स्वर ब्राह्मण माने गए हैं, ऋषभ और धैवत ये दोनों ही स्वर क्षत्रिय माने गए हैं, गान्धार और निषाद ये दो स्वर आधे भाग से वैश्य माने गए हैं; ये गान्धार और निषाद स्वर आधे भाग से पतित होने से इन का आधे भाग से शूद्रत्व जानो॥३,४॥

ऋषभोत्थितषड्जहतो धैवतसहितश्च पञ्चमो यत्र।
निपतति मध्यमरागे तं निषादं *षाडवं* विद्यात्॥५॥

अन्वयः– यत्र मध्यमरागे ऋषभोत्थितषड्जहतः धैवतसहितः च पञ्चमः निपतति तं निषादं षाडवं विद्यात्।

शब्दार्थः– यत्र=यस्मिन्, मध्यमरागे=मध्यमरागाख्ये रागविशेषे, ऋषभोत्थितषड्जहतः=ऋषभस्वरोद्गतः षड्जस्वरप्रतिहतः, धैवतसहितः= धैवतेन स्वरेण युक्तः, पञ्चमः=पञ्चमस्वरः, निपतति=आयाति, तम्=आकाङ्क्षा-

बुद्धिपूरणविषयम्, निषादम्=निषादस्वरवन्तं रागम्, षाडवम्=षाडवमध्यमरागम्, विद्यात्=जानीयात्।

सरलार्थः– यस्मिन् मध्यमरागे ऋषभस्वरोद्गतः षड्जप्रतिहतो धैवतस्वरयुक्तः पञ्चमः स्वरो निपतति तं निषादवन्तं रागं षाडवमध्यमरागं जानीयात्।

विशेषः– यद्यपि वैदिके सामगाने रागाणां प्रयोगो न भवति तथापि यथा स्वरसन्निवेशविशेषेण लौकिके गाने ग्रामाणां वैचित्र्यं भवति तथैव स्वरसन्निवेशविशेषेण सामगानेऽपि वैचित्र्यं भवतीति निदर्शनैः स्पष्टीकर्तुमत्र षाडवमध्यमरागादीनां प्रतिपादनं कृतमिति भट्टशोभाकराभिप्रायोऽवगम्यते। नारदीयशिक्षायां प्रतिपादितानाम् एतेषां षाडवमध्यमरागादीनां विवेचनं गूढं स्थूलं सन्दिग्धं च दृश्यते इति शरच्चन्द्रश्रीधरपराञ्जपेमहाशयः कथयति (भारतीयसङ्गीतेतिहासग्रन्थे, १९८५क्रै., पृ.११९)। अतिप्राचीनायां नारदीयशिक्षायां प्रतिपादितानामेतेषां रागाणां विषये बृहद्देशीप्रभृतिषु अर्वाचीनेषु ग्रन्थेषु यथार्थस्य विवरणस्याऽलाभात्, सङ्गीतरत्नाकरादिषु चैषां रागाणां विवेचनस्याऽभावादेते रागा आधुनिकानां सङ्गीतविद्याविशेषज्ञानां कृतेऽपि दुर्बोधा जाता अवगम्यन्ते। पराञ्जपेमहोदयस्तु नारदीयशिक्षाया ग्रामरागविषयकमेतद् विवरणम् अर्वाचीने काले सङ्गीतविद्यायाम् अनदीष्णेन केनाऽपि पुरुषेण नारदीयशिक्षायां प्रक्षिप्तं स्यादिति च सम्भावयति (भारतीयसङ्गीतेतिहासग्रन्थे, १९८५क्रै., पृ.१२७)। एतस्मिन् विषये भारतीयगानविद्यायामभियुक्ततराः जनाः सम्यग् विचारं कुर्वन्तु।

हिन्दी– जिस मध्यमराग में ऋषभस्वर से प्रारब्ध षड्ज से प्रतिहत तथा धैवतस्वरयुक्त पञ्चमस्वर रहता है उस निषादस्वरयुक्त राग को षाडवमध्यमराग जाने।

विशेष– इस राग में गान्धार स्वर वर्जित दिखाई देता है। इस राग को षाडवराग कहने का रहस्य परिचिन्तनीय है। नारदीयशिक्षा के इस रागविचार-प्रकरण को कोई गानविद्याविशेषज्ञ गूढ, स्थूल और सन्दिग्ध बताते हैं। अधिक बात संस्कृत टिप्पणी में देखें। इन रागों में उल्लिखित स्वरों के अतिरिक्त अन्य स्वर भी प्रयुक्त होने की बात भट्टशोभाकर के विवरण से विदित होती है ॥५॥

यदि पञ्चमो विरमते गान्धारश्चाऽन्तरस्वरो भवति।
ऋषभो निषादसहितस् तं *पञ्चम*मीदृशं विद्यात्॥६॥

अन्वयः– (मध्यमरागे) यदि पञ्चमः विरमते, गान्धारः च अन्तरस्वरः भवति, निषादसहितः ऋषभः (प्रयुक्तः अस्ति) तम् पञ्चमम् ईदृशम् विद्यात्।

शब्दार्थः– (मध्यमरागे=मध्यमरागसंज्ञके रागविशेषे), यदि=चेत्, पञ्चमः=पञ्चमस्वरः, विरमते=विरमति=विरामे प्रयुक्तो भवति, गान्धारः= गान्धारस्वरः, च=अपि, अन्तरस्वरः=चतुश्श्रुतिकः स्वरविशेषः, भवति=अस्ति, निषादसहितः=निषादस्वरेण युक्तः, ऋषभः=ऋषभस्वरः, (प्रयुक्तः=संयोजितः, अस्ति=भवति), तम्=आकाङ्क्षापूरणबुद्धिविषयम्, पञ्चमम्=पञ्चमरागम्, ईदृशम्=एतत्प्रकारकम् (षाडवरूपम्), विद्यात्=जानीयात्।

सरलार्थः– मध्यमरागे यदि पञ्चमः स्वरो विरामे प्रयुक्तो भवति, गान्धारस्वरः अन्तरस्वरो भवति, निषादस्वरेण सहित ऋषभः स्वरश्च प्रयुक्तोऽस्ति तर्हि तं पञ्चमरागं च षाडवं जानीयात्।

विशेषः– अत्राऽपि यद् वक्तव्यं तत् पूर्वपद्यव्याख्याने एव प्रोक्तम्। अत्र मध्यमरागे इत्यनुवर्तते इति भट्टशोभाकरेणोक्तमस्ति।

हिन्दी– मध्यमराग में यदि पञ्चमस्वर विरत होता है, गान्धारस्वर अन्तरस्वर होता है और निषादस्वरसहित ऋषभस्वर भी प्रयुक्त होता है तो इस प्रकार के पञ्चम राग को षाडवराग जाने॥६॥

गान्धारस्याऽऽधिपत्येन निषादस्य गतागतैः।
धैवतस्य च दौर्बल्यान् *मध्यमग्राम* उच्यते॥७॥

अन्वयः– (यत्र रागे) गान्धारस्य आधिपत्येन निषादस्य गतागतैः धैवतस्य दौर्बल्यात् च (प्रयोगो भवति, स रागः) मध्यमग्राम उच्यते।

शब्दार्थः– (यत्र रागे=यस्मिन् रागविशेषे), गान्धारस्य=गान्धारस्वरस्य, आधिपत्येन=आधिक्येन, निषादस्य=निषादस्वरस्य, गताऽऽगतैः=गमनाऽऽगमनैः, पुनःपुनरुच्चारणैः, धैवतस्य=धैवतस्वरस्य, दौर्बल्यात्=क्षीणत्वात्, सकृदेव उच्चारणात्, च=अपि, (प्रयोगः=उपयोगः, भवति=अस्ति, सः=आकाङ्क्षापूरण-बुद्धिविषयः, रागः=रागविशेषः), मध्यमग्रामः=मध्यमग्रामरागः, उच्यते=कथ्यते।

सरलार्थः– यस्मिन् रागविशेषे गान्धारस्वरस्य आधिक्येन प्रयोगो भवति, निषादस्वरस्य पुनःपुनः प्रयोगो भवति, धैवतस्वरस्य दुर्बलरूपेण सकृदेवोच्चारणेन प्रयोगो भवति, स रागविशेषो मध्यमग्रामराग इत्युच्यते।

हिन्दी– जिस रागविशेष में गान्धारस्वर का आधिपत्य रहता है, निषादस्वर का भी बारबार प्रयोग होता है और धैवतस्वर का दुर्बल रूप से प्रयोग होता है, वह रागविशेष मध्यमग्रामराग कहा जाता है ॥७॥

ईषत् स्पृष्टो निषादस् तु गान्धारश् चाऽधिको भवेत्।
धैवतः कम्पितो यत्र *षड्जग्रामं* तु निर्दिशेत् ॥८॥

अन्वयः– यत्र निषादः तु ईषत् स्पृष्टः (भवेत्), गान्धारः च अधिकः भवेत्, धैवतः कम्पितः (भवेत्), (तम्) तु षड्जग्रामम् निर्दिशेत्।

शब्दार्थः– यत्र=साकाङ्क्षबुद्धिविशेषविषयभूते रागे, निषादः=निषाद-स्वरः, ईषत्=किञ्चित्, स्पृष्टः=स्वल्पयत्नेन स्वल्पकालेन चोच्चारितः, (भवेत्=स्यात्), गान्धारः=गान्धारस्वरः, च=अपि, अधिकः=प्रभूतः, भवेत्=स्यात्, धैवतः=धैवतस्वरः, कम्पितः=वारंवारमुच्चारितो वारंवारं छिन्नश्च, (भवेत्=स्यात्), (तम्=आकाङ्क्षापूरणबुद्धिविषयं रागविशेषम्), तु=हि, षड्जग्रामम्=षड्ज-ग्रामरागम्, निर्दिशेत्=प्रतिपादयेत्।

सरलार्थः– यस्मिन् रागविशेषे निषादस्वरस्तु ईषदेवोच्चारितो भवेत्, गान्धारस्वरश्च प्रभूतो भवेत्, धैवतस्वरो वारंवारमुच्चारितो वारंवारं छिन्नश्च भवेत् तं रागविशेषं षड्जग्रामरागं वदेत्।

विशेषः– **"षड्जग्रामं तु निर्दिशेत्"** इत्यस्य स्थाने **"स षड्जग्राम ईरितः"** इति बृहन्नारदीयपुराणे पाठः (१।५०।५४) दृश्यते।

हिन्दी– जिस रागविशेष में निषादस्वर थोडा ही उच्चरित हो, गान्धारस्वर ज्यादा हो और धैवतस्वर कम्पित रूप में उच्चरित हो उस रागविशेष को षड्जग्रामराग कहे ॥८॥

अन्तरस्वरसंयुक्ता काकलिर् यत्र दृश्यते।
तं तु साधारितं विद्यात् पञ्चमस्थं तु कैशिकम् ॥९॥

अन्वयः– यत्र अन्तरस्वरसंयुक्ता काकलिः दृश्यते कैशिकम् तु पञ्चमस्थं (दृश्यते) तम् तु साधारितम् विद्यात्।

शब्दार्थः– यत्र=आकाङ्क्षाबुद्धिविशेषविषये रागविशेषे, अन्तरस्वर-संयुक्ता=अन्तरस्वरसञ्ज्ञक-चतुश्श्रुतिक-गान्धारस्वर-युक्ता, काकलिः=सूक्ष्म-स्वरान्तररूपश् चतुश्श्रुतिको निषादस्वरः, दृश्यते=प्रयुक्त उपलभ्यते, कैशिकम्=केशाग्रवद् अणुत्वं प्राप्तं साधारणम्, तु=हि, पञ्चमस्थम्=पञ्चम-स्वरसंस्थम्, (दृश्यते=उपलभ्यते), तम्=आकाङ्क्षापूरणबुद्धिविषयं रागविशेषम्, साधारितम्=साधारितरागसञ्ज्ञकम्, विद्यात्=जानीयात्।

सरलार्थः– यस्मिन् रागविशेषे अन्तरस्वरसंज्ञकचतुश्श्रुतिकगान्धार-स्वरयुक्ता सूक्ष्मस्वरान्तररूपचतुश्श्रुतिकनिषादस्वररूपा काकलिः प्रयुक्तोप-लभ्यते, कैशिकाख्यं श्रुत्यपचितस्वरविशेषरूपसाधारणं तु पञ्चमस्वरसंस्थमुप-लभ्यते तं रागविशेषं साधारितरागं जानीयात्।

विशेषः– एतस्य नारदीयशिक्षाया रागाणाम् प्रकरणस्य भट्टशोभा-करकृतं व्याख्यानम् एतेषां रागाणां रहस्यस्य प्रकाशने साहाय्यं न कुरुते, विशेषतः "**पञ्चमस्थं तु कैशिकम्**" इत्यंशस्य भट्टशोभाकरकृतं व्याख्यानं न केवलं सन्दिग्धम् अपि तु भ्रान्तिपूर्णमपि दृश्यते इति पराञ्जपेमहाशयः कथयति (भारतीयसङ्गीतस्येतिहासे, १९८५क्रै., पृ.११९)। एतेषां रागाणां रहस्यस्य बोधे क्रैस्ताब्दानां नवम्यां शताब्द्यां मतङ्गेन रचितत्वेन कैश्चित् सम्भावितो बृहद्देशी-नामको ग्रन्थः सहायको भवेदिति पराञ्जपेमहाशयस्याऽऽशयोऽवगम्यते।

अत्र अन्तरस्वर-काकलीस्वरपरिचयाय सङ्गीतरत्नाकरस्य (१।३।४४, १।४।१८) वचनम्–

साधारणे त्रिश्रुतिः स्यादन्तरत्वे चतुश्श्रुतिः।
गान्धार इति तद्भेदौ द्वौ निश्शङ्केन कीर्तितौ॥ इति,
श्रुतिद्वयं चेत् षड्जस्य निषादः संश्रयेत् तदा।
स काकली मध्यमस्य गान्धारस् त्वन्तरः स्वरः॥

इति च स्मर्तव्यम्।

अमरकोषस्य (१।७।२) वचनं च–

"काकली तु कले सूक्ष्मे" इति न विस्मर्तव्यम्।

कैशिकनिर्वचनं च सङ्गीतरत्नाकरे (१।५।९)–

साधारणे कैशिके ते केशाग्रवदणुत्वतः।
ते एव कैश्चिदुच्येते ग्रामसाधारणे बुधैः॥

इति द्रष्टव्यम्।

हिन्दी– जिस रागविशेष में अन्तरस्वर कहा जानेवाले चतुश्श्रुतिक गान्धारस्वर से युक्त सूक्ष्म स्वरान्तररूप चतुश्श्रुतिक निषादात्मक काकली प्रयुक्त पाई जाती है, श्रुति से न्यूनीभूत स्वरविशेषरूप कैशिक पञ्चमस्वरसंस्थ पाया जाता है उस राग को साधारितराग जाने॥९॥

कैशिकं भावयित्वा तु स्वरैः सर्वैः समन्ततः।
यस्मात् तु मध्यमे न्यासस्तस्मात् कैशिकमध्यमः॥१०॥

अन्वयः– यस्मात् तु (कैशिकमध्यमरागे) समन्ततः सर्वैः स्वरैः कैशिकम् तु भावयित्वा मध्यमे न्यासः (क्रियते) तस्मात् (एष रागः) कैशिक-मध्यमः (उच्यते)।

शब्दार्थः– यस्मात्=यतः, तु=हि, (कैशिकमध्यमरागे=कैशिकमध्यम-रागनामके रागविशेषे), समन्ततः=सर्वतः, सर्वैः=निखिलैः, स्वरैः=षड्जादिभिः स्वरैः, कैशिकम्=केशाग्रवद् अणुत्वं प्राप्तं साधारणस्वरम्, तु=हि, भावयित्वा=योजयित्वा, मध्यमे=मध्यमस्वरे, न्यासः=संस्था, (क्रियते=सम्पाद्यते), तस्मात्=ततः, (एषः=निर्दिष्टलक्षणः, रागः=गीतिविशेषः), कैशिकमध्यमः=कैशिकमध्यम-रागः (उच्यते=कथ्यते)।

सरलार्थः– यस्मात् कैशिकमध्यमरागनामके रागविशेषे सर्वतो निखिलैः षड्जादिभिः स्वरैः कैशिकं स्वरविशेषं योजयित्वा मध्यमस्वरे राग-समाप्तिः क्रियते तस्माद् एष रागविशेषः कैशिकमध्यमरागः कथ्यते।

हिन्दी– क्यों कि कैशिकमध्यमराग नाम के रागविशेष में आगे पीछे सभी षड्जादि स्वरों से कैशिक स्वरविशेष को मिलाकर मध्यमस्वर में राग की समाप्ति की जाती है इस लिए यह रागविशेष कैशिकमध्यमराग कहा जाता है ॥१०॥

काकलिर् दृश्यते यत्र प्राधान्यं पञ्चमस्य तु।
कश्यपः कैशिकं प्राह मध्यमग्रामसम्भवम् ॥११॥

अन्वयः– यत्र काकलिः दृश्यते, प्राधान्यम् तु पञ्चमस्य (दृश्यते), (तम्) मध्यमग्रामसम्भवम् (रागम्) कश्यपः कैशिकम् प्राह।

शब्दार्थः– यत्र=यस्मिन् रागविशेषे, काकलिः=चतुश्श्रुतिको मधुरा-स्फुटः सूक्ष्मो निषादस्वरविशेषः, दृश्यते=उपलभ्यते, प्राधान्यम्=प्रमुखत्वम्, आधिक्यम्, तु=हि, पञ्चमस्य=पञ्चमस्वरस्य, (दृश्यते=उपलभ्यते), (तम्= तादृशं रागविशेषम्), मध्यमग्रामसम्भवम्=मध्यमग्रामे जातं रागम्, कश्यपः= कश्यपनामक ऋषिः, कैशिकम्=कैशिकरागम्, प्राह=कथयति।

सरलार्थः– यस्मिन् रागविशेषे चतुश्श्रुतिको मधुरास्फुटः सूक्ष्मो निषादस्वरविशेष उपलभ्यते, प्रमुखत्वं तु पञ्चमस्वरस्य दृश्यते तं मध्यमग्राम-जातं रागविशेषं कश्यप ऋषिः कैशिकरागं कथयति।

विशेषः– भट्टशोभाकरकृतं कैशिकरागविवरणं बृहद्देश्यनुकूलं नास्ति, बृहद्देश्यनुसारं तु कैशिकमध्यमराग-कैशिकरागयोः अन्ये स्वराः समाना एव, केवलं न्यासस्वरे विशेषः, तत्र कैशिकमध्यमरागे मध्यमस्वरो न्यासस्वरः कैशिकरागे तु न्यासस्वरः पञ्चम इति भेद इति शरच्चन्द्रश्रीधरपराञ्जपे-महाशयः कथयति (भारतीयसङ्गीतस्येतिहासे, १९८५क्रै., पृ.११९-१२०)।

हिन्दी– जिस रागविशेष में चार श्रुतिवाला मधुर अस्फुट और सूक्ष्म निषादस्वर-विशेष प्रयुक्त देखा जाता है, प्रमुखता तो पञ्चम स्वर की होती है, उस मध्यमग्राम में उत्पन्न होने वाले रागविशेष को कश्यप ऋषि कैशिकराग कहते हैं ॥११॥

गेति गेयं विदुः प्राज्ञा धेति कारुप्रवादनम्।
वेति वाद्यस्य संज्ञानं गान्धर्वस्य विरोचनम्॥१२॥

अन्वयः– प्राज्ञाः गा इति गेयम् विदुः, (प्राज्ञाः) ध इति कारुप्रवादनम् (विदुः), (प्राज्ञाः) व इति वाद्यस्य संज्ञानम् (विदुः), (एतत्) गान्धर्वस्य विरोचनम् (अस्ति)।

शब्दार्थः– प्राज्ञाः=गानशास्त्रविज्ञाः, गा इति= गा इत्येतेन शब्देन, गेयम्=गानम्, विदुः=जानन्ति, (प्राज्ञाः=गानशास्त्रविज्ञाः), ध इति=ध इत्येतेन शब्देन, कारुप्रवादनम्=वैणिकादिशिल्पिकर्म, (विदुः=जानन्ति), (प्राज्ञाः=गान-शास्त्रविज्ञाः), व इति=व इत्येतेन शब्देन, वाद्यस्य=वीणादिततवाद्य-मुरजाद्यानद्ध-वाद्य-वंशादिसुषिरवाद्य-कांस्यतालादिघनवाद्यजातस्य, संज्ञानम्=सङ्केतम्, (विदुः= जानन्ति), (एतत्=इदानीमेव निर्दिष्टं बुद्धौ उपस्थितं वस्तु), गान्धर्वस्य=गान-शास्त्रवाचकस्य गान्धर्वशब्दस्य विरोचनम्=गा-ध-वाक्षरैः सङ्केतितस्य रहस्या-र्थस्य विशेषेण स्पष्टतया प्रकाशकम्, अस्ति=वर्तते।

सरलार्थः– गानशास्त्रविज्ञा जना गा इत्येतेन शब्देन गानम्, ध इत्येतेन शब्देन वैणिक-मार्दङ्गिक-वांशिक-झार्झरिकादि-वाद्यशिल्पिकर्म, व इत्येतेन शब्देन वीणा-मृदङ्ग-वंश-कांस्यतालादि-वाद्यजातस्य संज्ञानं जानन्ति। एतद् गान्धर्वशास्त्रवाचकस्य गान्धर्वशब्दस्याक्षरैः सङ्केतितानां रहस्यानां प्रकाशनमस्ति।

विशेषः– एतेन पद्येन गान्धर्वशास्त्रस्य प्रधानानि गान-वादन-वाद्यभाण्डरूपाणि त्रीणि वस्तूनि प्रतिपादितानि वेदितव्यानि।

हिन्दी– गानशास्त्रविज्ञ लोग गा इस शब्द से गान को, ध इस शब्द से वीणावादकादि वाद्यशिल्पियों के कर्म को, व इस शब्द से वीणा-मृदङ्ग-वंश-कांस्यतालादि वाद्यभाण्ड को समझते हैं। यह गान्धर्वशास्त्र के गान्धर्व शब्द के गा-ध-व अक्षरों के रहस्यार्थ का विवरण है।

विशेष– यह गान्धर्व शब्द के गा-ध-व अक्षरों का विवरण गान्धर्वशास्त्र के प्रमुख तत्त्वों का सूचक भी है॥१२॥

॥ इति प्रथमे प्रपाठके चतुर्थी कण्डिका॥

अथ प्रथमे प्रपाठके पञ्चमी कण्डिका

यः सामगानां प्रथमः स वेणोर् मध्यमः स्वरः।
यो द्वितीयः स गान्धारस् तृतीयस् त्वृषभः स्मृतः॥१॥
चतुर्थः षड्ज इत्याहुः पञ्चमो धैवतो भवेत्।
षष्ठो निषादो विज्ञेयः सप्तमः पञ्चमः स्मृतः॥२॥

अन्वयः– सामगानाम् यः प्रथमः (स्वरः) स वेणोः मध्यमः स्वरः (अस्ति), (सामगानाम्) यः द्वितीयः (स्वरः) स (वेणोः) गान्धारः (स्वरः अस्ति), (सामगानाम् यः) तृतीयः (स्वरः) (स वेणोः) तु ऋषभः (स्वरः) स्मृतः, (सामगानाम् यः) चतुर्थः (स्वरः) (स वेणोः) षड्ज इति आहुः, (सामगानाम् यः) पञ्चमः (स्वरः) (स वेणोः) धैवतः भवेत्, (सामगानाम् यः) षष्ठः (स्वरः) (स वेणोः) निषादः विज्ञेयः, (सामगानाम् यः) सप्तमः (स्वरः) (स वेणोः) पञ्चमः स्मृतः।

शब्दार्थः– सामगानाम्=सामवेदिनाम्, यः=आकाङ्क्षाबुद्धिविशेषविषयः, प्रथमः=क्रुष्टः, (स्वरः=कण्ठध्वनिविशेषः), सः=आकाङ्क्षापूरणबुद्धिविशेषविषयः स्वरः, वेणोः=वंशवाद्यविशेषस्य, मध्यमः स्वरः=मध्यमस्वरव्यञ्जकसुषिः, (अस्ति=भवति), (सामगानाम्=छन्दोगानाम्), यः=आकाङ्क्षाबुद्धिविशेषविषयः, द्वितीयः=प्रथमः, (स्वरः=कण्ठध्वनिविशेषः), सः=आकाङ्क्षापूरणबुद्धिविशेष-विषयः, (वेणोः=वंशवाद्यस्य), गान्धारः (स्वरः)=गान्धारस्वरव्यञ्जकसुषिः, (अस्ति=भवति), (सामगानाम्=छन्दोगानाम्, यः=आकाङ्क्षाबुद्धिविशेषविषयः), तृतीयः स्वरः=द्वितीयः स्वरः, (सः=आकाङ्क्षापूरणबुद्धिविशेषविषयः, वेणोः=वंश-वाद्यस्य), तु=हि, ऋषभः (स्वरः)=ऋषभस्वरव्यञ्जकसुषिः, स्मृतः=मुनिभिः स्मरणविषयः कृतः, (सामगानाम्=छन्दोगानाम्, यः=आकाङ्क्षाबुद्धिविशेष-विषयभूतः), चतुर्थः (स्वरः)=तृतीयः स्वरः, (सः=आकाङ्क्षापूरणबुद्धिविशेषविषयः, वेणोः=वंशवाद्यस्य), षड्जः=षड्जस्वरव्यञ्जकसुषिः, इति=एवम्, आहुः=(विज्ञाः) कथयन्ति, (सामगानाम्=छन्दोगानाम्, यः=आकाङ्क्षाबुद्धिविशेषविषयः), पञ्चमः स्वरः=चतुर्थः स्वरः, (सः=आकाङ्क्षापूरणबुद्धिविशेषविषयः, वेणोः=वंश-

वाद्यस्य), धैवतः=धैवतस्वरव्यञ्जकसुषिः, भवेत्=स्यात्, (सामगानाम्=छन्दोगानाम्, यः=आकाङ्क्षाबुद्धिविशेषविषयः), षष्ठः (स्वरः)=मन्द्रः स्वरः, (सः=आकाङ्क्षापूरणबुद्धिविशेषविषयः, वेणोः=वंशवाद्यस्य), निषादः=निषादस्वरव्यञ्जकसुषिः, विज्ञेयः=वेदितव्यः, (सामगानाम्=छन्दोगानाम्, यः=आकाङ्क्षाबुद्धिविशेषविषयः), सप्तमः (स्वरः)=अतिस्वार्यः (स्वरः), (सः=आकाङ्क्षापूरणबुद्धिविशेषविषयः, वेणोः=वंशवाद्यस्य) पञ्चमः=पञ्चमस्वर-व्यञ्जकसुषिः, स्मृतः=मुनिभिः स्मरणविषयः कृतः।

सरलार्थः– सामवेदिनां यः क्रुष्टः स्वरः स वंशवाद्यस्य मध्यमस्वरव्यञ्जकच्छिद्रेण निष्पाद्यः अस्ति, सामवेदिनां यः प्रथमः स्वरः स वंशवाद्यस्य गान्धारस्वरव्यञ्जकच्छिद्रेण निष्पाद्यः अस्ति, सामवेदिनां यो द्वितीयः स्वरः स वंशवाद्यस्य तु ऋषभस्वरव्यञ्जकच्छिद्रेण निष्पाद्यः स्मृतोऽस्ति, सामवेदिनां यः तृतीयः स्वरः स वंशवाद्यस्य षड्जस्वरव्यञ्जकच्छिद्रेण निष्पाद्य इति विज्ञाः कथयन्ति, सामवेदिनां यः चतुर्थः स्वरः स वंशवाद्यस्य धैवतस्वरव्यञ्जकच्छिद्रेण निष्पाद्यो भवेत्, सामवेदिनां यो मन्द्रः स्वरः स वंशवाद्यस्य निषादस्वरव्यञ्जकच्छिद्रेण निष्पाद्यो वेदितव्यः, सामगानां योऽतिस्वार्यः स्वरः स वंशवाद्यस्य पञ्चमस्वरव्यञ्जकच्छिद्रेण निष्पाद्यः स्मृतोऽस्ति।

विशेषः– एतयोः श्लोकयोः शोभाकरेण सम्यग् विवरणं कृतं नास्ति। **"वेणुर् वंशः"** इत्येतावन्मात्रं तेनोक्तम्। **"यः सामगानां प्रथमः स वेणोर् मध्यमः स्वरः"** इति वचनं भरतनाट्यशास्त्रव्याख्याने अभिनवगुप्तेनोद्धृतमस्ति (३०।२)। **"द्विक-त्रिक-चतुष्कास् तु ज्ञेया वंशगताः स्वराः"** (३०।२) इति नाट्यशास्त्रवचनव्याख्यानावसरे अभिनवगुप्तेन **"स्वरस्वरूपोपयोगिषु छिद्रेष्वत्र स्वरशब्दः"** इत्युक्तमस्ति। तत्र वंशवाद्यस्वरूपाणि विविधानि भवन्ति। तेषां विवरणं सङ्गीतरत्नाकरे षष्ठे वाद्याध्याये (श्लो.४२४-४४०) वर्तते। वंशवाद्यस्य नवसु छिद्रेषु फूत्कारपूरणच्छिद्रं फूत्कारनिर्गमनच्छिद्रं च स्वरविभागाय नोपयुक्तम्। अन्यानि सप्त छिद्राणि तु स्वरविभागाय कृतानि। स्वरनिष्पादने तेषां छिद्राणां कीदृश उपयोग इति भरतनाट्यशास्त्रे त्रिंशे वंशवाद्याध्याये प्रतिपादितमस्ति। तत्र अभिनवभारत्यां **"षड्जस् त्वनामिकाङ्गुल्यामृषभो**

मध्यमाङ्गुलौ" इत्यादिना ग्रन्थकारान्तरवचनेन वंशवाद्यच्छिद्रविशेषसम्बद्धाङ्गुलिक्रियया व्यञ्जनीयानां स्वराणां प्रतिपादनं कृतमस्ति। एषा क्रिया मूलनाट्यशास्त्रोक्तक्रियातो भिन्नाऽवगम्यते। शार्ङ्गदेवेनाऽपि सङ्गीतरत्नाकरे षष्ठे वाद्याध्याये वंशप्रकरणे (श्लो. ४४७-४५२) नाट्यशास्त्रोक्ता वंशवादनाङ्गुलिक्रिया मतान्तरोक्ता वंशवादनाङ्गुलिक्रिया चोक्ताऽस्ति। तथाऽपि ततो विलक्षणा नारदीयशिक्षोक्तेयं वंशवादनप्रक्रिया वस्तुतः कीदृशीति गानवादनविशेषज्ञैः सम्यक् परिचिन्तनीयम्। नारदीयशिक्षायां क्रुष्टादीनां निर्देशे (१।१।१२) क्रुष्टस्य स्थाने सामविधानब्राह्मणोक्तस्वरक्रमदृष्ट्या विसङ्गतिर् दृश्यते, तथापि क्रुष्टादीनां स्थानानां निर्देशे (१।७।१,२) उपजीवनीयत्वस्य निर्देशे च (१।७।६-८) सा विसङ्गतिर् नाऽस्ति, षड्जादीनां निर्देशे तु सर्वत्र (१।२।५, १।५।३-४; १।५।५-६, १।५।७-१२, १।५।१३-१४, १।५।१५-१९) षड्जादि-निषादान्तः प्रसिद्ध एव स्वरक्रमो दृश्यते। वेणुरन्ध्रस्वरप्रतिपादने (१।५।१-२) सामगाने हस्तस्वरविन्यासस्य प्रतिपादने चैव (१।७।३-४) स्वरक्रमे प्रसिद्धात् स्वरक्रमाद् भेदो दृश्यते। अतोऽस्मिन् विषये गम्भीरो विमर्श आवश्यको भाति। अभिनवगुप्तेन भरतनाट्यशास्त्राभिनवभारत्यां "**तत्र गान्धारादितया मध्यमस्वरोऽन्त्यो भवति**" (३०।२) इति कीदृशीं वंशस्वरच्छिद्राङ्गुलिक्रिया-व्यवस्थामादायोक्तमिति विचार्यम्। तत्र सामान्यतया विचारस्य सौकर्याय सङ्गीतरत्नाकरोक्ता (६।४४७-४५२) वंशस्वरप्रक्रियाऽत्र प्रदर्श्यते–

व्यक्तमुक्ताङ्गुलित्वेन समग्रो जायते स्वरः।
अङ्गुल्याः कम्पने तत्र श्रुतिरेकाऽपचीयते॥
श्रुतिद्वयं त्वर्धमुक्ते तत्कम्पे तु श्रुतित्रयम्।
अन्यथा वर्णयन्तीह केचित् सप्तस्वरोदयम्॥
अर्धेन्दुनागफणवद् वंशे स्थाप्यं करद्वयम्।
वामस्याऽनामिकाङ्गुल्या षड्जो मध्यमया पुनः॥
ऋषभः स्यात् प्रदेशिन्या गान्धार इति वामतः।
त्रयः स्वराः प्रजायन्ते, चत्वारो दक्षिणात् करात्॥
कनिष्ठया मध्यमः स्यात् पञ्चमोऽनामया स्वरः।

धैवतः स्यान् मध्यमया प्रदेशिन्या निषादवान्॥
स्थानत्रयस्य निष्पत्तिं ते चाऽस्मिन्नन्यथा जगुः। इति।

गान्धर्वस्वराणां षड्जादीनां क्रमस्य स्वरूपस्य तेषां सामस्वरैः क्रुष्टादिभिः सह संवादस्य च विषये कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां तृतीये स्वराध्याये (श्लो. ४६-४८) अस्माभिः प्रोक्तम्–

गान्धर्वे षड्ज ऋषभो गान्धारो मध्यमस् तथा।
पञ्चमो धैवतश् चाऽपि निषादश् च स्वराः स्मृताः॥
साम्नां च क्रुष्टः प्रथमो द्वितीयश्च तृतीयकः।
चतुर्थश्च तथा मन्द्रोऽतिस्वार्यश्च स्वराः श्रुताः॥
क्रुष्टादिषु यथापूर्वं षड्जादिषु यथापरम्।
उच्चोच्चाः स्युः स्वरास् तुल्याश् चोभये ते यथायथम्॥ इति।

अस्मदुक्ते विषये विशेषं ज्ञातुमिच्छुकैः कौण्डिन्न्यायनशिक्षाया उक्तानां श्लोकानां तत्रैव स्थितं व्याख्यानं दृश्यम्। कौण्डिन्न्यायनशिक्षा देहल्यां राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानपुस्तकालये, लालबहादुरशास्त्रिसंस्कृतविद्यापीठ-पुस्तकालये; प्रयागे गङ्गानाथझाकेन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठपुस्तकालये, वाराणस्यां काशीविश्वनाथपुस्तकालये (गोयनकापुस्तकालये), काशीविद्यापीठपुस्तकालये, सम्पूर्णाननदसंस्कृतविश्वविद्यालयपुस्तकालये, काशीहिन्दूविश्वविद्यालयपुस्तकालये, कालीघट्ट(कोल्काता)नगरे भारतीयभाषापरिषत्पुस्तकालये चोपलभ्याऽस्ति।

गान-वीणा-वेणुस्वरसंवादविषये भरतनाट्यशास्त्रस्य (३०।१०) इय-मुक्तिरपि स्मरणीया–

यंयं गाता स्वरं गच्छेत् तंतं वंशेन वादयेत्।
शारीर-वैण-वंश्यानामेकीभावः प्रशस्यते॥ इति।

हिन्दी – सामवेदियों का जो क्रुष्ट स्वर है वह बाँसुरी के मध्यमस्वरव्यञ्जक छिद्र से निष्पाद्य है, सामवेदियों का जो प्रथम स्वर है वह बाँसुरी के गान्धारस्वरव्यञ्जक छिद्र से निष्पाद्य है, सामवेदियों का जो द्वितीय स्वर है वह बाँसुरी के ऋषभस्वरव्यञ्जक छिद्र से निष्पाद्य माना गया है, सामवेदियों का जो तृतीय स्वर है उस को विज्ञ लोक बाँसुरी के षड्जस्वरव्यञ्जक छिद्र से निष्पाद्य बताते हैं, सामवेदियों का जो चतुर्थ स्वर है वह बाँसुरी के

धैवतस्वरव्यञ्जक छिद्र से निष्पाद्य होगा, सामवेदियों का जो मन्द्र स्वर है उस को बाँसुरी के निषादस्वरव्यञ्जक छिद्र से निष्पाद्य जानना चाहिए, सामवेदियों का जो अतिस्वार्य स्वर है वह बाँसुरी के पञ्चमस्वरव्यञ्जक छिद्र से निष्पाद्य माना गया है।

विशेष– इन दो श्लोकों का अर्थ विवरणकार भट्टशोभाकर ने नहीं दिया है। उन्हों ने इन श्लोकों के अर्थ में केवल *"वेणु बाँसुरी है"* इतना ही कहा है। नारदीयशिक्षा के ये श्लोक बाँसुरी के किस रूप को और बाँसुरी बजाने की किस प्रक्रिया को लेकर प्रवृत्त हैं, यह बडे अनुसन्धान का विषय है। अभिनवगुप्त ने भरतनाट्यशास्त्र की अभिनवभारती व्याख्या में (३०।२) बाँसुरी में गान्धारादि मध्यमान्त स्वर होने की बात लिखी है। उस का भी नारदीयशिक्षा से समन्वय नहीं हो रहा है। नारदीयशिक्षा के इन श्लोकों में तो बाँसुरी के छिद्रों में पञ्चमादि मध्यमान्त वा मध्यमादि पञ्चमान्त स्वर होने की बात प्रतीत होती है। इस विषय में और बात संस्कृत व्याख्या में दी गई है। इस विषय में अधिक जिज्ञासु लोग कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा के तृतीय अध्याय (स्वराध्याय) में सम्बद्ध श्लोक (४६-४८) और उन की व्याख्या देखें। कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा की प्राप्ति स्थान भी ऊपर संस्कृत व्याख्या में बताए गए हैं ॥१, २॥

षड्जं वदति मयूरो गावो रम्भन्ति चर्षभम्।
अजाविके तु गान्धारं क्रौञ्चो वदति मध्यमम् ॥३॥
पुष्पसाधारणे काले कोकिला वक्ति पञ्चमम्।
अश्वस् तु धैवतं वक्ति निषादं वक्ति कुञ्जरः ॥४॥

अन्वयः– मयूरः षड्जम् वदति, गावः च ऋषभम् रम्भन्ति, अजाविके तु गान्धारम् (वदतः), क्रौञ्चः मध्यमम् वदति, कोकिला पुष्पसाधारणे काले पञ्चमम् वक्ति, अश्वः तु धैवतम् वक्ति, कुञ्जरः निषादम् वक्ति।

शब्दार्थः– मयूरः=बर्ही, षड्जम्=षड्जाख्यं प्रथमं स्वरम्, वदति=उच्चारयति, गावः=उस्राः, च=अपि, ऋषभम्=ऋषभाख्यं द्वितीयं स्वरम्, रम्भन्ति=शब्दायन्ते, अजाविके=वर्करी मेषी च, तु=हि, गान्धारम्=गान्धाराख्यं तृतीयं स्वरम्, (वदतः=उच्चारयतः), क्रौञ्चः=क्रुङ्, मध्यमम्=मध्यमाख्यं चतुर्थं स्वरम्, वदति=उच्चारयति, कोकिला=कोकिलस्त्री, पुष्पसाधारणे काले=

बहुविधानां कुसुमानां विकसनस्य कृते सामान्ये समये (वसन्ते ऋतौ), पञ्चमम्= पञ्चमाख्यं पञ्चमं स्वरम्, वक्ति=उच्चारयति, अश्वः=घोटकः, तु=हि, धैवतम्= धैवताख्यं षष्ठं स्वरम्, वक्ति=उच्चारयति, कुञ्जरः=हस्ती, निषादम्=निषादाख्यं सप्तमं स्वरम्, वक्ति उच्चारयति।

सरलार्थः– मयूरः षड्जं स्वरमुच्चारयति, गावः ऋषभं स्वरमुच्चारयन्ति, वर्करी मेषी च गान्धारं स्वरमुच्चारयतः, क्रौञ्चो मध्यमं स्वरमुच्चारयति, कोकिला वसन्तसमये पञ्चमं स्वरमुच्चारयति, घोटकस्तु धैवतं स्वरमुच्चारयति, हस्ती निषादं स्वरमुच्चारयति।

विशेषः– षड्जादिस्वरनिदर्शनविषये याज्ञवल्क्यशिक्षायाम् (श्लो.८, ९), माण्डूकीयशिक्षायाम् (१।९,१०), वाचस्पत्ये शब्दकोषे स्वरशब्दस्य विवरणे च वचनानि दृश्यन्ते। तानि वचनानि परिशील्य कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षायाम् (स्वराध्याये, श्लो.५०,५१) चोक्तम्–

मयूरः कवते षड्जमृषभं गौर् हि रम्भते।
कल्लतेऽजा तु गान्धारं क्रौञ्चः कायति मध्यमम्॥
कोकिला पञ्चमं कौति हेषतेऽश्वो हि धैवतम्।
निषादं बृंहति गज एतत् स्वरनिदर्शनम्॥ इति।

एतस्य विषयस्याऽधिको विचारः कौण्डिन्न्यायनशिक्षायामुक्तयोः श्लोकयोर् व्याख्याने दृश्यः।

अत्र "**षड्जं वदति मयूरः**" इत्यस्य स्थाने "**षड्जं मयूरो वदति**" इति बृहन्नारदीयपुराणे पाठः (१।५०।६१)।

हिन्दी– मोर षड्ज स्वर बोलता है, गायें ऋषभ स्वर बोलती हैं, बकरी और मेढी गान्धार स्वर बोलती हैं, क्रौञ्च पक्षी मध्यम स्वर बोलता है, कोयल वसन्त ऋतु में पञ्चम स्वर बोलती है, घोडा धैवत स्वर बोलता है, और हाथी निषाद स्वर बोलता है।

विशेष– मोर गाय प्रभृति प्राणियों के स्वाभाविक स्वरों को परस्पर सापेक्ष रूप में लेकर यह स्वरनिदर्शन प्रस्तुत किया गया है॥३,४॥

कण्ठादुत्तिष्ठते षड्जः शिरसस् त्वृषभः स्मृतः।
गान्धारस् त्वनुनासिक्य उरसो मध्यमः स्वरः॥५॥
उरसः शिरसः कण्ठादुत्थितः पञ्चमः स्वरः।
ललाटाद् धैवतं विद्यान् निषादं सर्वसन्धिजम्॥६॥

अन्वयः– षड्जः कण्ठात् उत्तिष्ठते, ऋषभः तु शिरसः (जातः) स्मृतः, गान्धारः तु अनुनासिक्यः (स्मृतः), मध्यमः स्वरः उरसः (जातः स्मृतः), पञ्चमः स्वरः उरसः शिरसः कण्ठात् उत्थितः (स्मृतः), धैवतम् ललाटात् (जातम्) विद्यात्, निषादम् सर्वसन्धिजम् (विद्यात्)।

शब्दार्थः– षड्जः=षड्जाख्यः प्रथमः स्वरः, कण्ठात्=गलात्, उत्तिष्ठते=उत्पद्यते; ऋषभः=ऋषभाख्यो द्वितीयः स्वरः, तु=हि, शिरसः=शीर्षात्, (जातः=उत्पन्नः), स्मृतः=स्मरणविषयं नीतः; गान्धारः=गान्धाराख्यस् तृतीयः स्वरः, तु=हि, अनुनासिक्यः=नासिकानुगतस्थानविशेषजातः, (स्मृतः=स्मरणविषयं नीतः), मध्यमः स्वरः=मध्यमाख्यश्चतुर्थः स्वरः, उरसः=वक्षःस्थलात्, (जातः= उत्पन्नः, स्मृतः=स्मरणविषयं नीतः), पञ्चमः स्वरः=पञ्चमाख्यः पञ्चम एव स्वरः, उरसः=वक्षःस्थलात्, शिरसः=शीर्षात्, कण्ठात्=गलात्, उत्थितः=उत्पन्नः, (स्मृतः=स्मरणविषयं नीतः), धैवतम्=धैवताख्यं षष्ठं स्वरम्, ललाटात्=भाल-देशात्, (जातम्=उत्पन्नम्), विद्यात्=जानीयात्, निषादम्=निषादाख्यं सप्तमं स्वरम्, सर्वसन्धिजम्=सर्वेभ्यः कण्ठादिभ्यः सन्धिभ्यो जातम्, (विद्यात्=जानीयात्)।

सरलार्थः– षड्जाख्यः प्रथमः स्वरः कण्ठाद् उत्पद्यते, ऋषभाख्यो द्वितीयः स्वर शिरसो जातः स्मृतः, गान्धाराख्यः तृतीयः स्वरस् तु नासिकानुगत-स्थानविशेषजातः स्मृतः, मध्यमाख्यश्चतुर्थः स्वरो वक्षःस्थलाज् जातः स्मृतः, पञ्चमाख्यः पञ्चमः स्वरो वक्षःस्थलात् शीर्षाद् गलाच्च उत्पन्नः स्मृतः, धैवताख्यं षष्ठं स्वरं भालदेशाद् उत्पन्नं जानीयात्, निषादाख्यं सप्तमं स्वरं सर्वेभ्यः कण्ठादिभ्यः सन्धिभ्यो जातं जानीयात्।

विशेषः– षड्जादि-सामस्वरोत्पत्तिविषयः कातीये भाषिकसूत्रेऽपि प्रतिपादितो दृश्यते। तथा हि– **"सप्त साम्नाम्, षड्ज-र्षभ-गान्धार-मध्यम-**

पञ्चम-धैवत-निषादाः, तेषां योनयः कण्ठात् षड्जः, शिरस ऋषभः, नासिकाया गान्धारः, उरसो मध्यमः, उरसः शिरसः कण्ठात् पञ्चमः, धैवतो ललाटात्, निषादः सर्वत इति" इति (३।१६-२५)।

हिन्दी – षड्ज स्वर कण्ठ से उत्पन्न होता है, ऋषभ स्वर शिर से उत्पन्न माना जाता है, गान्धार स्वर नासिका के समीपस्थ स्थान से उत्पन्न माना जाता है, मध्यम स्वर वक्षःस्थल से उत्पन्न माना जाता है, पञ्चम स्वर वक्षःस्थल, शिर और कण्ठ इन तीनों ही स्थानों से उत्पन्न माना जाता है, धैवत स्वर को ललाट से उत्पन्न जाने, निषाद स्वर को कण्ठादि सभी सन्धिस्थानों से उत्पन्न जाने॥५,६॥

नासां कण्ठमुरस् तालु जिह्वां दन्ताँश् च संश्रितः।
षड्भिः सञ्जायते यस्मात् तस्मात् षड्ज इति स्मृतः॥७॥

अन्वयः – यस्मात् (एष स्वरविशेषः) नासाम् कण्ठम् उरः तालु जिह्वाम् दन्तान् च संश्रितः (सन्) षड्भिः सञ्जायते, तस्मात् (एष स्वरविशेषः) षड्ज इति (मुनिभिः) स्मृतः (अस्ति)।

शब्दार्थः – यस्मात्=यतः, (एषः=निर्वाच्यत्वेन बुद्धौ उपस्थितः, स्वरविशेषः=षड्जाख्यः स्वरः), नासाम्=नासिकाम्, कण्ठम्=गलम्, उरः=वक्षःस्थलम्, तालु=काकुदम्, जिह्वाम्=रसनाम्, दन्तान्=दशनान्, च=अपि, संश्रितः=आश्रितः, (सन्=वर्तमानः), षड्भिः=रसमितैः स्थानैः, सञ्जायते=उत्पद्यते, तस्मात्=ततः (एषः=निर्वाच्यत्वेन बुद्धौ उपस्थितः, स्वरविशेषः=प्रथमः स्वरः), षड्ज इति=षड्ज इति शब्देन वाच्यः, (मुनिभिः=मननशीलैर् विद्वद्भिः), स्मृतः=स्मरणविषयं नीतः, (अस्ति=वर्तते)।

सरलार्थः – यतो निर्वाच्यत्वेन बुद्धौ उपस्थितः प्रथमः स्वरो नासिकां गलं वक्षःस्थलं तालु जिह्वां दन्तान् अपि संश्रितः सन् षड्भिः स्थानैः उत्पाद्यते ततोऽयं स्वरो मुनिभिः षड्ज इति शब्देन वाच्यः स्मृतः।

विशेषः – षड्जस्य एतन् निर्वचनं नाट्यशास्त्रकारेण न स्वीकृतमिति भरतनाट्यशास्त्राभिनवभारत्याम् अभिनवगुप्तः प्रतिपादयति। तथा हि– "अत्र नारदाद्या नामनिर्वचनमकार्षुः *'नासां कण्ठमुरस् तालु जिह्वां दन्तांश्च*

संश्रितः। षड्भ्यस् तज् जायते यस्मात् तस्मात् षड्जः' इत्यादि। तदनुपयोगान् मुनिना न स्वीकृतम्" (२८।२१) इति।

हिन्दी– क्यों कि निर्वचनीय रूप से बुद्धि में उपस्थित प्रथम स्वर नाक, गला, छाती, तालु, जीभ और दाँत इन छह स्थानों में समाश्रित होता हुआ छह (षड्) स्थानों से उत्पन्न (जनित) होता है, इस लिए यह प्रथम स्वर मुनियों से षड्ज शब्द से प्रतिपाद्य माना गया है॥७॥

वायुः समुत्थितो नाभेः कण्ठशीर्षसमाहतः।
नर्दत्यृषभवद् यस्मात् तस्मादृषभ उच्यते॥८॥

अन्वयः– यस्मात् (निर्वाच्यस्य स्वरविशेषस्य उच्चारणे) नाभेः समुत्थितः कण्ठशीर्षसमाहतः वायुः ऋषभवत् नर्दति, तस्मात् (एष स्वरविशेषः) ऋषभः उच्यते।

शब्दार्थः– यस्मात्=यतः कारणात्, (निर्वाच्यस्य=व्युत्पत्तिप्रदर्शनेन प्रतिपाद्यस्य, स्वरविशेषस्य=द्वितीयस्य स्वरस्य, उच्चारणे=व्याहरणे), नाभेः=नाभिप्रदेशात्, समुत्थितः=उद्गतः, कण्ठशीर्षसमाहतः=गले शिरसि च प्रतिहतः, वायुः=पवनः, ऋषभवत्=बलीवर्द इव, नर्दति=शब्दायते, तस्मात्=ततः कारणात्, (एषः=निर्वाच्यत्वेन बुद्धौ उपस्थितः, स्वरविशेषः=द्वितीयः स्वरः), ऋषभः उच्यते=ऋषभ इति कथ्यते।

सरलार्थः– यस्मात् कारणान् निर्वाच्यस्य द्वितीयस्य स्वरस्योच्चारणे नाभिप्रदेशाद् उद्गतः कण्ठे शिरसि च प्रतिहतः पवनः ऋषभ इव शब्दायते, तस्मात् कारणाद् एष द्वितीयः स्वर ऋषभ इति कथ्यते।

हिन्दी– क्यों कि निर्वचनीय इस द्वितीय स्वर के उच्चारण में नाभिप्रदेश से उठा हुआ और कण्ठप्रदेश में और शीर्षप्रदेश में प्रतिहत पवन ऋषभ (साँड) की तरह शब्द करता है, इस लिए यह द्वितीय स्वर ऋषभ कहा जाता है॥८॥

वायुः समुत्थितो नाभेः कण्ठशीर्षसमाहतः।
नासागन्धावहः पुण्यो गान्धारस् तेन हेतुना॥९॥

अन्वयः– (निर्वचनीयस्य स्वरविशेषस्य उच्चारणे) नाभेः समुत्थितः कण्ठशीर्षसमाहतः पुण्यः वायुः नासागन्धावहः (भवति), तेन हेतुना (एष स्वरविशेषः) गान्धारः (उच्यते)।

शब्दार्थः– (निर्वचनीयस्य=व्युत्पत्तिप्रदर्शनेन वर्णनीयस्य, स्वरविशेषस्य=तृतीयस्य स्वरस्य, उच्चारणे=व्याहरणे), नाभेः=नाभिप्रदेशात्, समुत्थितः=समुद्गतः, कण्ठशीर्षसमाहतः=गले शिरसि च प्रतिहतः, पुण्यः=मनोहरः, वायुः=पवनः नासागन्धावहः=नासिकासौगन्ध्यकरः, (भवति=जायते), तेन=उक्तेन, हेतुना=कारणेन, (एषः=बुद्धिस्थः, स्वरविशेषः=तृतीयः स्वरः), गान्धारः=गान्धार इति कथ्यते।

सरलार्थः– निर्वचनीयस्य तृतीयस्य स्वरस्योच्चारणे नाभिप्रदेशात् समुद्गतः कण्ठे शिरसि च समाहतः मनोहरः पवनः नासिकासौगन्ध्यकरो भवति, तेन कारणेन एष तृतीयः स्वरो गान्धार इति कथ्यते।

हिन्दी– निर्वचनीय इस तृतीय स्वर के उच्चारण में नाभिप्रदेश से उठा हुआ और कण्ठप्रदेश में और शीर्षप्रदेश में प्रतिहत पुण्य पवन नासिकासौगन्ध्य करने वाला होता है, उसी हेतु से यह तृतीय स्वर गान्धार कहा जाता है।

विशेष– गान्धारशब्द का यह निर्वचन उतना श्रद्धास्पद नहीं निखाई देता है। इसी लिए अभिनवगुप्त ने इन षड्जादि के निर्वचनों का नाट्यशास्त्रकाराऽनभिमतत्व बताया है (२८।२१) ॥९॥

वायुः समुच्छ्रितो नाभेरुरोहृदि समाहतः।
नाभिं प्राप्तो महानादो मध्यमत्वं समश्नुते॥१०॥

अन्वयः– नाभेः समुच्छ्रितः उरोहृदि समाहतः नाभिम् प्राप्तः महानादः वायुः मध्यमत्वम् समश्नुते।

शब्दार्थः– नाभेः=नाभिप्रदेशात्, समुच्छ्रितः=समुत्थितः, उरोहृदि=वक्षःस्थलस्थिते हृदये, समाहतः=प्रतिहतः, नाभिम्=नाभिप्रदेशम्, प्राप्तः=गतः, महानादः=स्थूलशब्दः, वायुः=पवनः, मध्यमत्वम्=मध्यमस्वरत्वम्, समश्नुते=प्राप्नोति।

सरलार्थः– नाभिप्रदेशात् समुत्थितः उरःस्थले हृदयदेशे प्रतिहतो नाभिप्रदेशं प्राप्तः स्थूलशब्दकरो वायुर् मध्यमस्वरत्वं प्राप्नोति।

विशेषः– एष श्लोकः पीताम्बरापीठ-संस्कृतपरिषत्-संस्करणे (२०२१ वै.) न दृश्यते। बृहन्नारदीयपुराणपाठे तु (१।५०।६८) केन चित् पाठान्तरेण सह पठ्यते।

हिन्दी– नाभिप्रदेश से उठा हुआ और वक्षःस्थल में वर्तमान हृदयदेश में प्रतिहत होकर नाभिप्रदेश में पहुँचा हुआ महाशब्द करने वाला पवन मध्यमस्वरत्व को प्राप्त होता है॥

वायुः समुत्थितो नाभेरुरोहृत्कण्ठशिरोहतः।
पञ्चस्थानोत्थितस्याऽस्य पञ्चमत्वं विधीयते॥११॥

अन्वयः– नाभेः समुत्थितः वायुः उरो-हृत्-कण्ठ-शिरो-हतः (यदि भवति) पञ्चस्थानोत्थितस्य अस्य पञ्चमत्वम् विधीयते।

शब्दार्थः– नाभेः=नाभिप्रदेशात्, समुत्थितः=समुद्गतः, वायुः=पवनः, उरो-हृत्-कण्ठ-शिरो-हतः=उरसि, हृदये, गले, शिरसि च प्रतिहतः, (यदि=चेत्, भवति=जायते), पञ्चस्थानोत्थितस्य=बाणमितेभ्यः प्रदेशेभ्यः उद्गतस्य, अस्य= प्रकृतस्य वायोः, पञ्चमत्वम्=पञ्चमस्वरत्वम्, विधीयते=क्रियते।

सरलार्थः– नाभिप्रदेशात् समुद्गतः पवनः वक्षसि, हृदये, गले शिरसि च प्रतिहतो यदि भवति, पञ्चभ्यः स्थानेभ्यः उद्गतस्य अस्य पवनस्य पञ्चमस्वरत्वं जायते।

हिन्दी– नाभिप्रदेश से उठा हुआ पवन छाती में, हृदय में, गले में और शिर में प्रतिहत होता है तो पाँच स्थानों से उत्थित इस पवन का पञ्चम स्वर के रूप में परिणति होती है॥११॥

धैवतं च निषादं च वर्जयित्वा स्वरद्वयम्।
शेषान् पञ्च स्वराँस्त्वन्यान् पञ्चस्थानोच्छ्रितान् विदुः॥१२॥
(पञ्चस्थानस्थितत्वेन सर्वस्थानानि धार्यति।)

अन्वयः– धैवतम् च निषादम् च (इति) स्वरद्वयम् वर्जयित्वा शेषान् अन्यान् पञ्च स्वरान् तु पञ्चस्थानोच्छ्रितान् विदुः।

शब्दार्थः– धैवतम्=धैवतनामकं षष्ठं स्वरम्, च=अपि, निषादम्=निषादाख्यं सप्तमं स्वरम्, च=अपि, (इति=एवम्), स्वरद्वयम्=स्वरयुगलम्, वर्जयित्वा=परित्यज्य, शेषान्=परिशिष्टान्, अन्यान्=इतरान्, पञ्च=बाणमितान्, स्वरान्=षड्जादिकान् स्वरान्, तु=हि, पञ्च स्थानोच्छ्रितान्=पञ्चभ्यः स्थानेभ्यः उत्थितान्, विदुः=विज्ञा जानन्ति।

सरलार्थः– धैवतं निषादं चेति स्वरद्वयं परित्यज्य परिशिष्टान् अन्यान् पञ्च षड्जादीन् स्वरांस् तु विज्ञाः पञ्चभ्यः स्थानेभ्यः समुत्थितान् विदन्ति।

हिन्दी– धैवत और निषाद इन दो स्वरों को छोडकर अवशिष्ट अन्य षड्जादि पाँच स्वरों को विज्ञजन पाँच स्थानों से उठने वाले स्वर मानते हैं।

विशेष– इस श्लोक के वाद "पञ्चस्थानस्थितत्वेन सर्वस्थानानि धार्यंति" यह श्लोकार्ध पाया जाता है। यह श्लोकार्ध बृहन्नारदीयपुराण के पाठ में भी है (१।५०।७१)। किन्तु यह पाठ सङ्गत नहीं दिखाई देता है। किसीकिसी हस्तलेख में तो यह श्लोकार्ध नहीं पाया गया है ॥१२॥

अग्निगीतः स्वरः षड्ज ऋषभो ब्रह्मणोच्यते।
सोमेन गीतो गान्धारो विष्णुना मध्यमः स्वरः॥१३॥
पञ्चमस् तु स्वरो गीतो नारदेन महात्मना।
धैवतश् च निषादश् च गीतौ तुम्बुरुणा स्वरौ॥१४॥

अन्वयः– षड्जः स्वरः अग्निगीतः (उच्यते), ऋषभः ब्रह्मणा (गीतः) उच्यते, गान्धारः सोमेन गीतः (उच्यते), मध्यमः स्वरः विष्णुना (गीतः उच्यते), पञ्चमः स्वरः तु महात्मना नारदेन गीतः (उच्यते), धैवतः च निषादः च स्वरौ तुम्बुरुणा गीतौ (उच्येते)।

शब्दार्थः– षड्जः स्वरः=षड्जाख्यः प्रथमः स्वरः, अग्निगीतः=वह्निना गाने प्रयुक्तः, (उच्यते=कथ्यते), ऋषभः=ऋषभाख्यो द्वितीयः स्वरः, ब्रह्मणा=परमेष्ठिना, (गीतः=गाने प्रयुक्तः), उच्यते=कथ्यते, गान्धारः=गान्धाराख्यस् तृतीयः स्वरः, सोमेन=चन्द्रमसा, गीतः=गाने प्रयुक्तः (उच्यते=कथ्यते), मध्यमः स्वरः=मध्यमाख्यश्चतुर्थः स्वरः, विष्णुना=नारायणेन, (गीतः=गाने प्रयुक्तः,

उच्यते=कथ्यते), पञ्चमः स्वरः=पञ्चमाख्यः पञ्चम एव स्वरः, तु=हि, महात्मना=महामनसा, नारदेन=नारदाख्येन गन्धर्वेण, गीतः=गाने प्रयुक्तः, (उच्यते=कथ्यते), धैवतः=धैवताख्यः, च=अपि, निषादः=निषादाख्यः च=अपि, स्वरौ=एतौ द्वौ षष्ठ-सप्तमौ स्वरौ, तुम्बुरुणा=तुम्बुरुनामकेन गन्धर्वेण गीतौ= गाने प्रयुक्तौ, (उच्येते=कथ्येते)।

सरलार्थः– षड्जः स्वरः अग्निना गीतः उच्यते, ऋषभः स्वरो ब्रह्मणा गीत उच्यते, गान्धारः स्वरः सोमेन गीत उच्यते, मध्यमः स्वरः विष्णुना गीत उच्यते, पञ्चमः स्वरस्तु महामनसा नारदेन गीत उच्यते, धैवतो निषादश्चेति एतौ द्वौ स्वरौ तुम्बुरुणा गन्धर्वेण गीतौ उच्येते।

हिन्दी– षड्ज स्वर अग्नि द्वारा गाया गया (प्रचारित) कहा जाता है, ऋषभ स्वर ब्रह्माजी द्वारा गाया गया कहा जाता है, गान्धार स्वर सोम (चन्द्रमा) द्वारा गाया गया कहा जाता है, मध्यम स्वर विष्णु द्वारा गाया गया कहा जाता है, पञ्चम स्वर तो महात्मा नारद से गाया गया कहा जाता है, धैवत और निषाद ये दो स्वर तुम्बुरुनामक गन्धर्व द्वारा गाए गए कहे जाते हैं॥१३,१४॥

आद्यस्य दैवतं ब्रह्मा षड्जस्याऽप्युच्यते बुधैः।
तीक्ष्णदीप्तिप्रकाशत्वादृषभस्य हुताशनः॥१५॥

अन्वयः– आद्यस्य षड्जस्य अपि दैवतम् बुधैः ब्रह्मा उच्यते, ऋषभस्य तीक्ष्णदीप्तिप्रकाशत्वाद् (दैवतम् बुधैः) हुताशनः (उच्यते)।

शब्दार्थः– आद्यस्य=आदौ भवस्य प्रथमस्य, षड्जस्य=षड्जाख्यस्य स्वरस्य, अपि=च, दैवतम्=देवता, बुधैः=पण्डितैः, ब्रह्मा=परमेष्ठी, उच्यते= कथ्यते; ऋषभस्य=ऋषभाख्यस्य द्वितीयस्य स्वरस्य, तीक्ष्णदीप्तिप्रकाशत्वात्= उत्कटप्रभ-प्रकाशेन युक्तत्वात्, (दैवतम्=देवता, बुधैः=पण्डितैः), हुताशनः= अग्निः, (उच्यते=कथ्यते)।

सरलार्थः– प्रथमस्य षड्जाख्यस्य स्वरस्य देवता ब्रह्मा इति पण्डितैः कथ्यते, ऋषभाख्यस्य द्वितीयस्य स्वरस्य तीक्ष्णाभिर्दीप्ताभिः श्रुतिभिः प्रकाशित-त्वात्, तीक्ष्णदीप्त्या प्रकाशमानः अग्निरेव देवतेति पण्डितैः कथ्यते।

हिन्दी – प्रथम स्वर षड्ज का दैवत पण्डितों से ब्रह्मा कहे जाते हैं, ऋषभ स्वर तीक्ष्ण दीप्ता श्रुतियों से प्रकाशित होने से उस का दैवत पण्डितों से तीक्ष्ण दीप्ति से प्रकाशमान अग्नि कहा जाता है ॥१५॥

गावः प्रगीते तुष्यन्ति गान्धारस् तेन हेतुना।
श्रुत्वा चैवोपतिष्ठन्ति सौरभेया न संशयः ॥१६॥

अन्वयः – (गान्धारे स्वरे) प्रगीते गावः तुष्यन्ति, तेन हेतुना (एषः स्वरः) गान्धार (उच्यते); (गान्धारम् स्वरम्) श्रुत्वा च सौरभेया उपतिष्ठन्ति एव, (अत्र) संशयः न (अस्ति)।

शब्दार्थः – (गान्धारे स्वरे=गान्धाराख्ये तृतीये स्वरे), प्रगीते=प्रकर्षेण गाने प्रयुक्ते सति, गावः=उस्राः, तुष्यन्ति=प्रसीदन्ति; तेन हेतुना=तेन कारणेन, (एषः स्वरः=प्रकृतः स्वरः), गान्धारः=गान्धारशब्दवाच्यः, (उच्यते=कथ्यते); गान्धारं स्वरम्=गान्धाराख्यं तृतीयं स्वरम्, श्रुत्वा=आकर्ण्य, सौरभेयाः= सुरभिपुत्राः, उपतिष्ठन्ति=सन्निहिता भवन्ति, एव=हि, (अत्र=एतस्मिन् विषये), संशयः=सन्देहः, न (अस्ति)=नैव (विद्यते)।

सरलार्थः – गान्धाराख्ये तृतीये स्वरे प्रकर्षेण गाने प्रयुक्ते सति गावः परितुष्यन्ति, तेन हेतुना अयं स्वरः गान्धार उच्यते, गान्धारं स्वरं श्रुत्वा सुरभि-पुत्राः (गोरूपाः) सन्निहिता भवन्त्येव, एतस्मिन् विषये कोऽपि सन्देहो नास्ति।

विशेषः – एतेन श्लोकेन गान्धारशब्दस्य निर्वचनमेव कृतं प्रतीयते। तथाऽपि एतेन श्लोकेन गान्धारस्य स्वरस्य दैवतं गाव इत्यपि ध्वनितमिति वक्तुं तु शक्यते एव। अत एव एतस्य श्लोकस्य विवरणे भट्टशोभाकरेणाऽपि **"गौर् देवता गान्धारस्य"** इत्युक्तम्।

हिन्दी – गान्धार नाम का तृतीय स्वर गान में प्रमुख रूप में प्रयुक्त होने पर गायें प्रसन्न होती हैं, उसी कारण से यह स्वर गान्धार कहा जाता है। गान्धार स्वर को सुन कर सुरभिपुत्र (बैल) समीप में आ जाते हैं, इस विषय में कोई सन्देह नहीं है।

विशेष – इस श्लोक से गान्धार स्वर से गायों का विशेष सम्बन्ध बताया गया है। शोभाकर ने भी "गां धारयति सन्निहितं करोतीति गान्धारः" ऐसी गान्धारशब्द की व्युत्पत्ति दिखाई है। इस विषय का स्वर प्रयोग में कुशल विज्ञजन परख करें ॥१६॥

सोमस् तु पञ्चमस्याऽपि दैवतं ब्रह्मराड् स्मृतम्।
निर्ह्रासो यच् च वृद्धिश्च ग्राममासाद्य सोमवत्॥१७॥

अन्वयः– यत् (मध्यमस्य पञ्चमस्य) च ग्रामम् आसाद्य सोमवत् निर्ह्रासः च वृद्धिः च (भवतः) (तत्) पञ्चमस्य अपि ब्रह्मराट् सोमः तु दैवतम् स्मृतम्।

शब्दार्थः– यत्=यस्मात् कारणात्, {(मध्यमस्य=मध्यमाख्यस्य स्वरस्य) पञ्चमस्य=पञ्चमाख्यस्य स्वरस्य च=अपि} ग्रामम्=स्वरसमुदाय-विशेषरूपं ग्रामविशेषम्, आसाद्य= प्राप्य, सोमवत्=सोमस्य कृष्णपक्ष-शुक्लपक्षयोरिव, निर्ह्रासः=अपचयः, च=अपि, वृद्धिः=उपचयः, च=अपि, (भवतः=जायेते), (तत्=तस्मात् कारणात्), पञ्चमस्य अपि=(मध्यमस्य) पञ्चमस्य च स्वरस्य, ब्रह्मराट्=ब्राह्मणानां राजा, सोमः=चन्द्रमाः, तु=हि, दैवतम्=देवता, स्मृतम्= मुनिभिः स्मरणविषये कृतम्।

सरलार्थः– यस्मात् कारणात् (मध्यमस्य स्वरस्य) पञ्चमस्याऽपि स्वरस्य ग्रामविशेषमासाद्य कृष्णपक्ष-शुक्लपक्षयोः सोमस्येव अपचय उपचयश्च भवतः, तस्मात् कारणात् (मध्यमस्य) पञ्चमस्याऽपि स्वरस्य ब्राह्मणानां राजा सोमो दैवतं स्मृतम्।

विशेषः– अस्मिन् स्वरदैवतप्रकरणे मध्यमस्य स्वरस्य दैवतं स्पष्टतया निर्दिष्टं न दृश्यते। भट्टशोभाकरेणाऽपि मध्यमस्वरदैवतप्रतिपादनं कृतं न दृश्यते। यद्यपि षड्जग्राममध्यमग्रामयोः पञ्चमस्येव मध्यमस्य उपचयाऽपचयौ न दृश्येते, तथापि गान्धारग्रामे मध्यमस्यापि तथोपचयापपचयौ स्याताम्, अन्यत्र वा क्वापि प्राचीनतरगानपद्धतौ मध्यमस्योपचयापचयौ स्यातामिति अस्माभिः "**पञ्चमस्याऽपि**" इत्यत्र स्थितेन **अपि**शब्देन मध्यमस्वरमादाय मध्यमस्वरस्या-ऽपि दैवतं सोम एवेति उक्तमस्ति, अत्र विज्ञैः सम्यग् विचारः कार्यः।

हिन्दी– क्यों कि (मध्यम स्वर का और) पञ्चम स्वर का भी ग्रामविशेष को प्राप्त होकर कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष में चन्द्रमा की भाँति अपचय और उपचय होते हैं, इस लिए (मध्यम स्वर का और) पञ्चम स्वर का भी ब्राह्मणों के राजा सोम ही देवता हैं।

अति सन् धीयते यस्मादेतान् पूर्वोत्थितान् स्वरान्।
तस्मादस्य स्वरस्याऽपि धैवतत्वं विधीयते॥१८॥

अन्वयः– यस्मात् (अयम् स्वरः) एतान् पूर्वोत्थितान् स्वरान् अति सन् धीयते तस्मात् अस्य स्वरस्य अपि धैवतत्वम् विधीयते।

शब्दार्थः– यस्मात्=यतः कारणात्, (अयम्=निर्वचनीयत्वेन बुद्धौ उपस्थितः, स्वरः=षष्ठः स्वरः), एतान्=पूर्वं निर्दिष्टान्, पूर्वोत्थितान्=पूर्वमुत्थितान्, स्वरान्=षड्ज-ऋषभ-गान्धार-मध्यम-पञ्चमान् पञ्च स्वरान्, अति=अतीत्य, सन्=वर्तमानः, धीयते=पीयते, तस्मात्=ततः कारणात्, अस्य=निर्वचनीयस्य, स्वरस्य=षष्ठस्य स्वरविशेषस्य, अपि=च, धैवतत्वम्=धैवतशब्दवाच्यत्वम्, विधीयते=क्रियते (स्वरशास्त्रप्रवर्तकैः)।

सरलार्थः– यस्मात् कारणाद् अयं निर्वचनीयत्वेन बुद्धौ उपस्थितः षष्ठः स्वरः एतान् पूर्वं निर्दिष्टान् षड्जादीन् पञ्च स्वरान् अतीत्य वर्तमानः लोकैः श्रोत्रपुटपानेनाऽऽस्वाद्यते तस्मात् कारणाद् अस्य षष्ठस्य स्वरस्य स्वरशात्र-प्रवर्तकैः ब्रह्मादिभिः धैवतशब्दवाच्यत्वं क्रियते।

विशेषः– एष श्लोकः शिक्षासङ्ग्रहसंस्करणपाठे पीताम्बरापीठसंस्करण-पाठे च विकलरूपेण स्थितोऽपि सत्यव्रत-सामश्रमिसंस्करणपाठे एतेनैव रूपेण स्थितो बोध्यः। स्वरनामनिर्वचनप्रकरणे पठनीयोऽपि अयं श्लोकः स्वरनाम-निर्वचनेन सह देवतानिर्देशं च कर्तुमत्र पठितो विज्ञायते। यद्यपि धैवतस्य स्वरस्य दैवतमेतस्मिन् श्लोके निर्दिष्टं न प्रतीयते तथापि **"आदित्योऽस्य धैवतस्य निषादस्य (च) दैवतम्"** इति शोभाकरविवरणाद् उत्तरश्लोकोक्तं निषाददैवत-मेव धैवतस्याऽपि दैवतमित्यवगम्यते।

हिन्दी– क्यों कि यह निर्वचनीय षष्ठ स्वर इन पूर्व निर्दिष्ट षड्जादि पाँच स्वरों को उत्कृष्टता से लाँघ कर रहता हुआ श्रोताओं से श्रोत्रपुटद्वारा पीया जाता है, इस लिए स्वरशास्त्रप्रवर्तक ब्रह्मादि से इस स्वर का धैवत-शब्दवाच्यत्व किया जाता है॥१८॥

निषीदन्ति स्वरा यस्मान् निषादस् तेन हेतुना।
सर्वांश् चाऽभिवत्येष यदादित्योऽस्य दैवतम्॥१९॥

अन्वयः– यस्मात् (सप्तमे स्वरे अन्ये) स्वराः निषीदन्ति तेन हेतुना (सप्तमः स्वरः) निषादः (उच्यते), यत् एष सर्वान् अभिभवति च (तत्) अस्य आदित्यः दैवतम् (स्मृतम्)।

शब्दार्थः– यस्मात्=यतः कारणात्, (सप्तमे=अश्वमितसङ्ख्यापूरके, स्वरे=स्वनविशेषे, अन्ये=षड्जादयः इतरे षट्), स्वराः=स्वनविशेषाः, निषीदन्ति=अन्तर्भवन्तीव, तेन हेतुना=तेन कारणेन, (सप्तमः=अश्वमितसङ्ख्यापूरकः, स्वरः=स्वनविशेषः), निषादः=निषादशब्दवाच्यः, (उच्यते=कथ्यते), यत्=यस्मात् कारणात्, एषः=निषादः स्वरः, सर्वान्=निखिलान् अन्यान् षड्जादिकान् षट् स्वरान्, अभिभवति=तिरस्करोति, च=अपि, (तत्=तस्मात् कारणात्), अस्य=एतस्य निषादस्य स्वरस्य, आदित्यः=सर्वेषामन्येषां ज्योतिषां तेजस आदानेनेव अभिभवं कुर्वन् सूर्यः, दैवतम्=देवता, (स्मृतम्=मुनिभिः स्मरणविषये कृतम्)।

सरलार्थः– यस्मात् कारणात् सप्तमे स्वरे अन्ये षड्जादयः स्वरा निषीदन्ति, तेन कारणेन सप्तमः स्वरः निषाद इत्युच्यते, यस्मात् कारणाद् एष निषादः स्वरः सर्वान् षड्जादीन् स्वरान् उत्कृष्टतया तिरस्करोति, तस्मात् कारणाद् अस्य निषादस्य स्वरस्य अन्येषां ज्योतिषां तेजस आदानमिव कुर्वन् अन्येषां ज्योतिषाम् अभिभविता आदित्य एव दैवतं स्मृतम्।

विशेषः– अत्र सामवेदसम्बद्धायामपि नारदीयशिक्षायां सामवेदीयानां क्रुष्टादीनां स्वराणां सामविधानब्राह्मणे बृहद्देवतायां चोक्ता अपि देवताः किन्तु न प्रतिपादिता इति वेदवादिभिर्विद्वद्भिः परिचिन्तनीयम्। क्रुष्टादिदेवताप्रतिपादकानि सामविधानब्राह्मणवचनानि बृहद्देवतावचनानि च कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां स्थितानि (तृतीये स्वरनिरूपणाध्याये ६८-७० श्लोकानां व्याख्याने) अत्राऽपि पूर्वमेव व्याख्यायां (१।१।१२) प्रदर्शितानि द्रष्टव्यानि। षड्जादीनां स्वराणामपि पिङ्गलच्छन्दःसूत्रानुसारं (३।६३-६६) तु क्रमेण अग्निः सविता सोमो बृहस्पतिर् मित्रावरुणौ इन्द्रो विश्वेदेवा देवता अर्थाद् अवगम्यन्ते। भाषिकसूत्रे च षड्जादय

एव साम्नां स्वरा उक्ताः (३।१६,१७)। नारदीयशिक्षायामुक्ता षड्जादीनां स्वरणां ब्रह्मा, अग्निः, गौः, सोमः, सोमः, आदित्यः, आदित्य इत्येता देवताः सामविधानब्राह्मणे प्रोक्ताभिः क्रुष्टादिदेवताभिः ब्रह्मा (प्रजापतिः, विश्वेदेवा वा) आदित्यः, साध्याः, अग्निः, वायुः, सोमः, मित्रावरुणौ चेत्येताभिः सह सम्यग् न संवदन्तीति च वेदवादिभिर् विद्वद्भिर् न विस्मरणीयम्।

षड्जादीनां निर्वचनानि मतङ्गादिभिरुक्तानि कल्लिनाथेन सङ्गीतरत्नाकरकलानिधौ (१।३।२४) प्रदर्शितानि चाऽत्र विद्वद्भिः स्मर्तव्यानि। तानि यथा–

(क) षण्णां स्वराणां जनकः षड्भिर् वा जन्यते स्वरैः।
षड्भ्यो वा जायतेऽङ्गेभ्यः *षड्ज* इत्यभिधीयते॥

(ख) प्राप्नोति हृदयं शीघ्रमन्यस्माद्*ृषभः* स्मृतः।
स्त्रीगवीषु यथा तिष्ठन् विभाति ऋषभो महान्॥
स्वरग्रामे समुत्पन्नः स्वरोय*मृषभस्* तथा॥

(ग) वाचं गानात्मिकां धत्त इति *गान्धार*संज्ञकः।

(घ) स्वराणां मध्यमत्वाच् च *मध्यमः* स्वर उच्यते॥

(ङ) स्वरान्तराणां विस्तारं यो मिमीते स *पञ्चमः*।
पाठक्रमेण गणने सङ्ख्यया पञ्चमोऽथवा॥

(च) धीर् यस्याऽस्ति स धीवांस् तत्-सम्बन्धी *धैवतः* स्मृतः।
षष्ठस्थाने धृतो यस्मात् ततोऽसौ *धैवतो* मतः॥

(छ) निषीदन्ति स्वराः सर्वे *निषादस्* तेन कथ्यते। इति।

शारदातनयेन भावप्रकाशने सप्तमेऽधिकारे तु षड्जादीनां निर्वचनानि एवं प्रदर्शितानि–

(क) कण्ठे सज्जति यो नादः स *षड्जः* स्याच् चतुश्श्रुतिः।

(ख) ऋषभस् त्रिश्रुतिस् तालुमूले तस्य त्रिसम्भवात्।

(ग) शब्दो गौस् तां बिभ्रदोष्ठे *गान्धारो* द्विश्रुतिर् भवेत्।

(घ) मूर्धमध्यस्थितो नादो *मध्यमः* स्याच् चतुश्श्रुतिः।

(ङ) पञ्चभिर् जायते दन्ततालुकण्ठोष्ठमूर्धभिः।
चतुश्श्रुतिः *पञ्चमः* स्याद् दन्तपङ्क्तिसमाश्रयः॥
(च) कण्ठतालुधृतो नादो *धैवतस्* त्रिश्रुतिर् भवेत्।
(छ) नादो निषण्णः कण्ठोष्ठे *निषादो* द्विश्रुतिर् भवेत्॥ इति।

हिन्दी – क्यों कि सप्तम स्वर में अन्य षड्जादि सभी स्वर अन्तर्भूत जैसे होते हैं, इस लिए सप्तम स्वर निषाद कहा जाता है। क्यों कि यह निषाद स्वर सभी षड्जादि छहों स्वरों को उत्कृष्टता से अभिभूत करता है, इस लिए इस निषाद स्वर का दैवत भी अन्य ज्योतियों के तेजों को अभिभूत करने वाला आदित्य (सूर्य) स्मृत है।

विशेष – इस षड्जादि-देवता प्रकरण में विचारणीय बात बहूत हैं। उन का सङ्केत उपर संस्कृत व्याख्या में किया गया है। जिज्ञासु पाठक वहीं देखें॥१९॥

॥ इति प्रथमे प्रपाठके पञ्चमी कण्डिका॥

अथ प्रथमे प्रपाठके षष्ठी कण्डिका

दारवी गात्रवीणा च द्वे वीणे गानजातिषु।
सामिकी गात्रवीणा तु तस्याः शृणुत लक्षणम्॥१॥

अन्वयः– गानजातिषु (प्रयोज्ये), दारवी (वीणा) गात्रवीणा च (इति) द्वे वीणे (भवतः), (तत्र) सामिकी तु (वीणा) गात्रवीणा (अस्ति), तस्याः लक्षणम् शृणुत।

शब्दार्थः– गानजातिषु=विविधेषु गानकर्मसु (प्रयोज्ये=उपयोज्ये), दारवी=दारुनिर्मिता, (वीणा=वल्लकी), गात्रवीणा=शरीररूपा वीणा, च=अपि, (इति=एवम्), द्वे=द्विप्रकारे, वीणे=विपञ्च्यौ, (भवतः=स्तः), (तत्र=तयोर् मध्ये), सामिकी=सामगाने प्रयोज्या, तु=हि, (वीणा=विपञ्ची), गात्रवीणा= शरीररूपा वीणा, (अस्ति=वर्तते), तस्याः=सामगाने प्रयोज्याया वीणायाः, लक्षणम्=स्वरूपम्, शृणुत=आकर्णयत।

सरलार्थः– विविधेषु गानकर्मसु प्रयोज्ये दारवी वीणा गात्रवीणा चेति द्वे वीणे भवतः, तत्र सामगाने प्रयोज्या वीणा गात्रवीणा अस्ति, तस्याः सामगाने प्रयोज्याया वीणाया लक्षणं शृणुत।

हिन्दी – विभिन्न प्रकार के गानकर्मों में प्रयोज्य वीणाओं में दारुकृत वीणा और शरीररूप वीणा दो प्रकार की वीणाएँ होती हैं। उन में सामगान में प्रयोज्य वीणा शरीररूप वीणा (गात्रवीणा) है। उस का लक्षण सुनो।

गात्रवीणा तु सा प्रोक्ता यस्यां गायन्ति सामगाः।
स्वरव्यञ्जनसंयुक्ता अङ्गुल्यङ्गुष्ठरञ्जिता॥२॥

अन्वयः– यस्यां सामगा गायन्ति सा तु स्वरव्यञ्जनसंयुक्ता अङ्गुल्यङ्गुष्ठरञ्जिता गात्रवीणा प्रोक्ता (अस्ति)।

शब्दार्थः– यस्याम्=यत्र वीणायाम्, सामगाः=छन्दोगाः, गायन्ति=गानं कुर्वन्ति, सा=सा वीणा, तु=हि, स्वरव्यञ्जनसंयुक्ता=उच्चारितैः स्वरैर् व्यञ्जनैश्च सहिता, अङ्गुल्यङ्गुष्ठरञ्जिता=तर्जन्यादिभिः अङ्गुलीभिः अङ्गुष्ठेन च विशेषिता, गात्रवीणा=शरीररूपा वल्लकी, प्रोक्ता=कथिता, (अस्ति=वर्तते)।

सरलार्थः– यस्यां वीणायां सामगाः सामगानं कुर्वन्ति सा वीणा तु स्वरव्यञ्जनोच्चारणशक्त्या सहिता अङ्गुलीभिः अङ्गुष्ठेन च विशेषिता गात्रवीणा प्रोक्ताऽस्ति।

हिन्दी – जिस वीणा में सामवेदी लोग सामगान करते हैं वह वीणा तो अकारादि स्वरों और कादि व्यञ्जनों के उच्चारण करने की शक्ति से युक्त और प्रदेशिन्यादि उँगलियों तथा अँगूठे से विशिष्ट गात्रवीणा कही गई है॥२॥

हस्तौ सुसंयतौ धार्यौ जानुभ्यामुपरि स्थितौ।
गुरोरनुकृतिं कुर्याद् यथा ज्ञानमतिर् भवेत्॥३॥

अन्वयः– जानुभ्याम् उपरि स्थितौ हस्तौ सुसंयतौ धार्यौ, यथा ज्ञानमतिः भवेत् (तथा) गुरोः अनुकृतिम् कुर्यात्।

शब्दार्थः– जानुभ्याम्=जङ्घोरुसन्धिभ्याम्, उपरि=ऊर्ध्वप्रदेशे, स्थितौ= वर्तमानौ, हस्तौ=करौ, सुसंयतौ=सम्यङ् नियतौ, धार्यौ=संस्थापनीयौ; यथा= येन प्रकारेण, ज्ञानमतिः=ज्ञाने बुद्धिः, भवेत्=जायेत, (तथा=तेन प्रकारेण), गुरोः=अध्यापकस्य, अनुकृतिम्=अनुकारम्, कुर्यात्=विदधीत।

सरलार्थः– सामवेदाध्ययनसमये जङ्घोरुसन्धिभ्याम् उपरि स्थितौ हस्तौ सुनियतौ धार्यौ। यथा ज्ञाने बुद्धिरेकाग्रा भवेत् तथा गुरोः उच्चारणाङ्गुलि- व्यापारादीनाम् अनुकरणं कुर्यात्।

विशेषः– एष श्लोकः याज्ञवल्क्यशिक्षायामपि स्वल्पेन पाठभेदेन सह पठ्यते। तद् यथा–

हस्तौ सुसंयतौ धार्यौ जानुनोरुपरि स्थितौ।
गुरोरनुमतिं कुर्यात् पठन् नाऽन्यमतिर् भवेत्॥ इति।

हिन्दी– सामवेद के अध्ययन के समय में घुटने के ऊपर रहे हुए हाथों को सुनियत ढङ्ग से स्थिर रखे। जिस प्रकार से ज्ञान करने में बुद्धि एकाग्र हो उस प्रकार से गुरु के मुख-अङ्गुलिन्यास-उच्चारणादि का ठीक-ठीक अनुकरण करे।

प्रणवं प्राक् प्रयुञ्जीत व्याहृतीस् तदनन्तरम्।
सावित्रीं चाऽनुवचनं ततो वृत्तान्तमारभेत्॥४॥

अन्वयः– (सामवेदाध्ययनारम्भे) प्राक् प्रणवम् प्रयुञ्जीत, तदनन्तरम् व्याहृतीः अनुवचनम् सावित्रीम् च (प्रयुञ्जीत), ततः वृत्तान्तम् आरभेत्।

शब्दार्थः– (सामवेदाध्ययनारम्भे=सामवेदस्य अध्ययनस्य प्रारम्भे), प्राक्=वेदाध्ययनारम्भात् पूर्वम्, प्रणवम्=ओङ्कारम्, प्रयुञ्जीत=उच्चारयेत्, तदनन्तरम्=प्रणवोच्चारणान्ते, व्याहृतीः=यथास्वशाखाव्यवस्थं तिस्रः पञ्च सप्त वा भूरादिका महाव्याहृतीः, अनुवचनम्=व्याहृत्यनुवाच्यम्, सावित्रीम्=सवितृ- दैवतां तदित्यादिकां गायत्रीम्, च=अपि, प्रयुञ्जीत=उच्चारयेत्, ततः=तदनन्तरम्, वृत्तान्तम्=स्वशाखावेदस्य उत्तरम् अध्यायं प्रपाठकं सूक्तम् अनुवाकं कण्डिकां खण्डिकां वाऽपि, आरभेत्=प्रारभेत।

सरलार्थः– (सामवेदाध्ययनस्याऽऽरम्भे) प्रथमम् ओङ्कारम् उच्चारयेत्, ततो भूरादिका महाव्याहृतीः व्याहृत्यनुवचनरूपां सावित्रीं गायत्रीं च उच्चारयेत्, तदनन्तरं स्वशाखावेदस्य उत्तरम् अध्यायं प्रपाठकं सूक्तम् अनुवाकं कण्डिकां खण्डिकां वाऽपि प्रारभेत।

विशेषः– अयं श्लोकोऽपि स्वल्पेन पाठान्तरेण याज्ञवल्क्यशिक्षायामपि पठ्यते।

हिन्दी– सामवेद के अध्ययन के प्रारम्भ में पहले ओङ्कार का उच्चारण करे, फिर भूरादि व्याहृतियों का और अनुवचन गायत्री का उच्चारण करे, उस के बाद स्वशाखा वेद के उत्तर अध्याय वा प्रपाठक वा सूक्त वा अनुवाक वा कण्डिका वा खण्डिका का प्रारम्भ करे ॥४॥

प्रसार्य चाऽङ्गुलीः सर्वा रोपयेत् स्वरमण्डलम्।
न चाऽङ्गुलीभिरङ्गुष्ठमङ्गुष्ठेनाऽङ्गुलीः स्पृशेत्॥५॥

अन्वयः– सर्वाः अङ्गुलीः प्रसार्य स्वरमण्डलम् च रोपयेत्, अङ्गुलीभिः च अङ्गुष्ठं न (स्पृशेत्), अङ्गुष्ठेन अङ्गुलीः स्पृशेत्।

शब्दार्थः– सर्वाः=निखिलाः, अङ्गुलीः=करशाखाः, प्रसार्य=विस्तार्य, स्वरमण्डलम्=स्वरसमूहम्, च=अपि, रोपयेत्=स्थापयेत्; अङ्गुलीभिः=तर्जन्यादिभिः करशाखाभिः, च=अपि, अङ्गुष्ठम्=अङ्गुलम्, न (स्पृशेत्)=न (छुपेत्), अङ्गुष्ठेन=अङ्गुलेन, अङ्गुलीः=तर्जन्यादिकाः करशाखाः, स्पृशेत्=छुपेत्।

सरलार्थः– निखिला अङ्गुलीः प्रसार्य स्वरसमूहं स्थापयेत्। तर्जन्यादिभिः करशाखाभिरङ्गुष्ठं न छुपेत्, अङ्गुष्ठेन अन्याः करशाखाश् छुपेत्।

विशेषः– एष श्लोकः स्वल्पेन पाठान्तरेण माण्डूकीयशिक्षायाम् (२।७-८) अपि पठ्यते। तद् यथा–

प्रसार्य चाऽङ्गुलीः सर्वा रोपयेत् कर-(स्वर-?)मण्डलम्।
न चाऽङ्गुलीभिरङ्गुष्ठमुपेयाद् दोषवित् ततः॥ इति।

हिन्दी– सभी उँगलियों को फैलाकर स्वरसमूह को स्थापित करे। तर्जनीप्रभृति उँगलियों से अँगूठे को न छुये, अँगूठे से तर्जनी प्रभृति उँगलियों को छुये॥५॥

विरला नाऽङ्गुलीः कुर्यान् मूले चैना न संस्पृशेत्।
अङ्गुष्ठाग्रेण ता नित्यं मध्यमे पर्वणि स्पृशेत्॥६॥

अन्वयः– अङ्गुलीः विरलाः न कुर्यात्, एनाः च मूले न संस्पृशेत्, नित्यम् अङ्गुष्ठाग्रेण ताः मध्यमे पर्वणि स्पृशेत्।

शब्दार्थः– अङ्गुलीः=करशाखाः, विरलाः=पृथक्पृथक् स्थिताः, न कुर्यात्=न विदधीत; एनाः=एता अङ्गुलीः, मूले=बुध्नभागे, न संस्पृशेत्=न छुपेत्; नित्यम्=सदा, अङ्गुष्ठाग्रेण=अङ्गुलशीर्षभागेण, ताः=अङ्गुलीः, मध्यमे=मध्यस्थे, पर्वणि=मध्यस्थरेखाद्वयमध्यभागे, स्पृशेत्=छुपेत्।

सरलार्थः– अङ्गुलीः पृथक्पृथक् स्थिता न कुर्यात्। एना अङ्गुलीर् मूलभागे न छुपेत्। सदा अङ्गुष्ठाग्रेण ता अङ्गुलीर् मध्यमे पर्वभागे छुपेत्।

हिन्दी– उँगलियों को अन्तरालयुक्त न बनावे, इन उँगलियों को मूलभाग में न छुये, सदा अँगूठे के शीर्षभाग से उन उँगलियों को बीच के पर्वभाग में छुये॥६॥

मात्र-द्विमात्र-वृद्धानां विभागार्थं विभागवित्।
अङ्गुलीभिर् द्विमात्रं तु पाणेः सव्यस्य दर्शयेत्॥७॥

अन्वयः– विभागवित् मात्र-द्विमात्र-वृद्धानाम् विभागार्थम् द्विमात्रम् तु सव्यस्य पाणेः अङ्गुलीभिः दर्शयेत्।

शब्दार्थः– विभागवित्=मात्रिक-द्विमात्रादिस्वराणां विभागस्य ज्ञाता सामवेदाध्यायी, मात्र-द्विमात्र-वृद्धानाम्=मात्रिक-द्विमात्र-त्रिमात्राणां स्वराणाम्, विभागार्थम्=पृथक्करणार्थम्, द्विमात्रम्=दीर्घं स्वरम्, तु=हि, सव्यस्य=वामस्य, पाणेः=करस्य, अङ्गुलीभिः=करशाखाभिः, दर्शयेत्=सङ्केतयेत्।

सरलार्थः– मात्रिकद्विमात्रादिस्वराणां विभागस्य ज्ञाता सामवेदाध्यायी मात्रिक-द्विमात्र-त्रिमात्राणां स्वराणां विभागार्थं दीर्घं स्वरं वामस्य करस्य अङ्गुलीभिर् दर्शयेत्।

हिन्दी– मात्रिक (ह्रस्व), द्विमात्र (दीर्घ) और त्रिमात्र स्वरों का भेद जानने वाला सामवेदाध्यायी अध्येता मात्रिक द्विमात्र और त्रिमात्र स्वरों के विभाग के लिए द्विमात्र (दीर्घ) स्वर को बाये हाथ की उँगलियों से दिखाए ॥७॥

त्रिरेखा यत्र दृश्येत सन्धिं तत्र विनिर्दिशेत्।
स पर्व इति विज्ञेयः शेषमन्तरमन्तरम्॥८॥

अन्वयः– यत्र त्रिरेखा दृश्येत तत्र सन्धिम् विनिर्दिशेत्, स पर्व इति विज्ञेयः, शेषम् अन्तरम् अन्तरम् (विज्ञेयम्)।

शब्दार्थः– यत्र=यस्मिन् स्थाने, त्रिरेखा=रेखात्रयम्, दृश्येत=विलोक्येत, तत्र=तस्मिन् स्थाने, सन्धिम्=संयोगम्, विनिर्दिशेत्=वदेत्; स=सन्धिमान् भागः, पर्व इति=पर्व इत्येतया संज्ञया व्यवहार्यः, विज्ञेयः=वेदितव्यः, शेषम्= अवशिष्टम्, अन्तरम्=अन्तरालभागः, अन्तरम्=अन्तरसंज्ञकम्, (विज्ञेयम्= वेदितव्यम्)।

सरलार्थः– यत्र रेखात्रयं दृश्येत तत्र सन्धिं जानीयात्। सन्धिमान् भागः पर्व इति विज्ञेयः, अवशिष्टस्थलम् अन्तरं विज्ञेयम्।

हिन्दी– जहाँ रेखात्रय दिखाई दे वहाँ सन्धि जाने। सन्धियुत भाग को पर्व जाने, अवशिष्ट भाग को अन्तर जाने।

विशेष– यह सामस्वरनिर्देश के लिए उपयोगी अङ्गुलिभागों का विवरण मालूम पडता है, लिखित वेदपुस्तक के चिह्नों का नहीं॥८॥

यवान्तरं तु सामसु ऋक्षु कुर्यात् तिलान्तरम्।
स्वरान् मध्यमपर्वसु सुनिविष्टान् निवेशयेत्॥९॥

अन्वयः– सामसु तु यवान्तरम् (कुर्यात्), ऋक्षु तिलान्तरम् कुर्यात्। मध्यमपर्वसु सुनिविष्टान् स्वरान् निवेशयेत्।

शब्दार्थः– सामसु=गीतिषु, तु=हि, यवान्तरम्=यवपरिमितम् अन्तरालम्, (कुर्यात्=विदधीत); ऋक्षु=पादबद्धेषु मन्त्रेषु, तिलान्तरम्=तिलपरिमितम् अन्तरालम्, कुर्यात्=विदधीत; मध्यमपर्वसु=अङ्गुलीनां मध्यस्थेषु

सन्धिमध्यस्थलेषु, सुनिविष्टान्=सम्यङ् निर्दिष्टान्, स्वरान्=क्रुष्टादीन् षड्जादीन् उदात्तादीन् वा स्वरान्, निवेशयेत्=निर्दिशेत्।

सरलार्थः– सामगाने स्वरनिर्देशे अङ्गुष्ठशीर्षा-ऽङ्गुलीपर्वणोरन्तरालं यवमपरिमितं कुर्यात्। ऋक्षु स्वरनिर्देशे अङ्गुष्ठशीर्षाऽङ्गुलीपर्वणोरन्तरालं तिलपरिमितं कुर्यात्। अङ्गुलीनां मध्यमेषु पर्वसु सुनिर्दिष्टान् क्रुष्टादीन् षड्जादीन् उदात्तादीन् वा स्वरान् निर्दिशेत्।

विशेषः– सामवेदस्वरनिर्देशविषये रामनाथदीक्षितमहाशयेन सामतन्त्रप्राक्कथने (पृ. ४६) "**अथ स्वरविन्यासः– तर्जन्या उपरि द्वियवान्तरोऽङ्गुष्ठः क्रुष्टस्य बोधकः, एकयवान्तरोऽङ्गुष्ठः प्रथमस्य, तर्जनीमध्यरेखा द्वितीयस्य, मध्यमामध्यरेखा तृतीयस्य, अनामिकामध्यरेखा चतुर्थस्य, कनिष्ठिकामध्यरेखा मन्द्रस्य, तन्मूलरेखाऽतिस्वार्यस्य**" इति उल्लिखितमस्ति। अत्र पर्वसु स्वरनिर्देशमप्रतिपाद्य रेखासु स्वरनिर्देशस्य प्रतिपादनं कृतमस्ति। एतेन पर्वरेखयोः समानार्थत्वमाश्रयणीयमवगम्यते।

हिन्दी– सामगान के स्वरनिर्देश में अँगूठे के शीर्षभाग का और उँगलियों के पर्वभागों का अन्तराल यवपरिमित करे। ऋचाओं के स्वरनिर्देश में अँगूठे के शीर्षभाग का और उँगलियों के पर्वभागों का अन्तराल तिलपरिमित करे। उँगलियों के बीच के पर्वों में सम्यक् निवेशित कर के क्रुष्टादि वा उदात्तादि स्वरों का निर्देश करे॥९॥

न चाऽत्र कम्पयेत् किञ्चिदङ्गस्याऽवयवं बुधः।
अधस्तनं मृदु न्यस्य हस्तमास्ते यथाक्रमम्॥१०॥

अन्वयः– अत्र बुधः अङ्गस्य अवयवम् किञ्चित् न कम्पयेत् च; (अत्र बुधः) अधस्तनम् हस्तम् (च) यथाक्रमम् मृदु न्यस्य आस्ते।

शब्दार्थः– अत्र=एतस्मिन् वेदाध्ययनकाले, बुधः=विज्ञोऽध्येता, अङ्गस्य=शरीरस्य, अवयवम्=भागम्, किञ्चित्=स्वल्पमपि, न कम्पयेत्=न चलयेत्, च=अपि; (अत्र वेदाध्ययनकाले, बुधः=विज्ञोऽध्येता), अधस्तनम्=अधोभवम् ऊरुजङ्घादिकमङ्गम्, हस्तम्=करम्, (च=अपि), यथाक्रमम्=क्रमा-

नुसारम्, वामस्य हस्तस्य कूर्परं वामजानुसमीपे दक्षिणस्य हस्तस्य कूर्परं दक्षिणजानुसमीपे च, मदु=मृदुतया, न्यस्य=स्थापयित्वा, आस्ते=उपविशति।

सरलार्थः– एतस्मिन् वेदाध्ययनकाले विज्ञोऽध्येता शरीरस्य अवयवान् स्वल्पमपि न कम्पयेत्। एतस्मिन् वेदाध्ययनकाले विज्ञोऽध्येता ऊरुजङ्घादिकमधस्तनमङ्गं हस्तौ च यथाक्रमं सुखेनाऽवस्थाप्य उपविशेत्।

हिन्दी– इस वेदाध्ययनकाल में विज्ञ अध्येता शरीर के किसी भी अवयव को थोडा भी कम्पित न करे। इस वेदाध्ययनकाल में विज्ञ अध्येता ऊरु जङ्घा इत्यादि नीचे के अङ्गों को और हाथों को भी यथोचित क्रम से सुखप्रद रूप में स्थापित करके बैठे ॥१०॥

कूर्मोऽङ्गानीव संहृत्य चेष्टां दृष्टिं दिशं मनः।
स्वस्थः प्रशान्तो निर्भीतो वर्णानुच्चारयेद् बुधः॥११॥

अन्वयः– स्वस्थः प्रशान्तः निर्भीतः बुधः कूर्मः अङ्गानि इव चेष्टाम् दृष्टिम् दिशम् मनः (च) संहृत्य वर्णान् उच्चारयेत्।

शब्दार्थः– स्वस्थः=प्रकृतिस्थः, प्रशान्तः=प्रशमयुक्तः, निर्भीतः=भयरहितः, बुधः=विज्ञः, कूर्मः=कच्छपः, अङ्गानि इव=स्वावयवान् इव, चेष्टाम्=चञ्चलताम्, दृष्टिम्=चक्षुः, दिशम्=दिगवलोकनम्, मनः=चित्तव्यापारम्, (च=अपि), संहृत्य=उपसंहृत्य, वर्णान्=अकारादिकान् वर्णान्, उच्चारयेत्=व्याहरेत्।

सरलार्थः– प्रकृतिस्थःप्रशमयुक्तो भयरहितश्च विज्ञोऽध्येता कच्छपः स्वाङ्गानीव चञ्चलताम्, चक्षुर्व्यापारम्, दिगवलोकनम्, चित्तव्यापारं चोपसंहृत्य एकाग्रमनाः सन् वर्णान् उच्चारयेत्।

विशेषः– अयं श्लोकः स्वल्पेन पाठभेदेन याज्ञवल्क्यशिक्षायामपि पठ्यते।

अत्र क्षेपकत्वेन स्थितः बृहन्नारदीयपुराणपाठेऽप्यत्रैव (१।५०।८९-९०) स्थितोऽपि **"अभ्रमध्ये यथा"** इत्यादिकः श्लोकः सर्वथा प्रकरणाऽननुकूल इति द्वितीयस्य प्रपाठकस्य चतुर्थ्यां कण्डिकायां स्थिते विवृत्तिप्रकरणे नीतोऽस्ति।

हिन्दी– प्रकृतिस्थ, शान्त और भयविहीन विज्ञ वेदाध्येता कछुवा अपने अङ्गों को जिस प्रकार उपसंहृत करता है उसी भाँति चञ्चलता, नयनव्यापार, इधर उधर देखने का

काम, मन को अन्य विषयों में डुलाने का काम इत्यादि अन्य व्यापार को उपसंहृत करके एकाग्रमन होकर वर्णों को बोले ॥११॥

नासिकायास् तु पूर्वेण हस्तं गोकर्णवद् धरेत्।
निवेश्य दृष्टिं हस्ताग्रे शास्त्रार्थमनुचिन्तयेत् ॥१२॥

अन्वयः– हस्तम् तु नासिकायाः पूर्वेण गोकर्णवद् हरेत्। हस्ताग्रे दृष्टिम् निवेश्य शास्त्रार्थम् अनुचिन्तयेत्।

शब्दार्थः– हस्तम्=करम्, तु=हि, नासिकाया=नासायाः, पूर्वेण=पूर्वभागे, गोकर्णवत्=उन्नश्रोत्ररूपं विधाय, हरेत्=स्थापयेत्। हस्ताग्रे=कराग्रे, दृष्टिम्=चक्षुः, निवेश्य=स्थापयित्वा, शास्त्रार्थम्=वेदवेदाङ्गशास्त्राणामर्थम्, अनुचिन्तयेत्=विचारयेत्।

सरलार्थः– करं नासिकायाः पूर्वत गोकर्णाकारं कृत्वा स्थापयेत्। कराग्रे दृष्टिं कृत्वा वेदवेदाङ्गादिशास्त्राणामर्थं विचारयेत्।

विशेषः– एष श्लोको याज्ञवल्क्यशिक्षायामपि वर्तते।

हिन्दी– हाथ को नासिका से पूर्व की ओर गाय के कान के रूप में खडा करे। हाथ के अग्रभाग में दृष्टि देकर वेदवेदाङ्गादिशास्त्रों के अर्थ का चिन्तन करे ॥१२॥

सममुच्चारयेद् वाक्यं हस्तेन च मुखेन च।
यथैवोच्चारयेद् वर्णांस् तथैवैनान् समापयेत् ॥१३॥

अन्वयः– वाक्यम् हस्तेन च मुखेन च समम् उच्चारयेत्। वर्णान् (आदौ) यथा एव उच्चारयेत् एनान् तथा एव समापयेत्।

शब्दार्थः– वाक्यम्=पदचयम्, हस्तेन=करेण, च=अपि, मुखेन=आस्येन, च=अपि, समम्=सह, उच्चारयेत्=प्रयुञ्जीत। वर्णान्=अकारादीन् वर्णान्, (आदौ=प्रारम्भे), यथा=येन प्रकारेण, एव=हि, उच्चारयेत्=व्याहरेत्, एनान्=एतान् वर्णान्, तथा=तेन प्रकारेण, एव=हि, समापयेत्=अन्तं नयेत्।

सरलार्थः– क्रुष्टादिस्वरविशिष्टं वाक्यं हस्ते करणीयेन स्वरसङ्केतेन सहैव मुखेनाऽपि उच्चारयेत्। पठनीयस्य मन्त्रवाक्यस्य वर्णान् आदौ यया द्रुतादिकया वृत्त्या उच्चारयेत् तान् तयैव वृत्त्या समापयेत्।

विशेषः– एष श्लोको याज्ञवल्क्यशिक्षायामपि पठ्यते।

हिन्दी– क्रुष्टादिस्वरविशिष्ट वाक्य को हाथ में कर्तव्य स्वरसङ्केत के साथसाथ ही मुह से भी बोले। पठनीय मन्त्रवाक्य के वर्णों को प्रारम्भ में द्रुतादि वृत्तियों में से जिस वृत्ति से बोले उसी वृत्ति से समाप्त करे॥१३॥

नाऽत्याहन्यान् न निर्हण्यान् न प्रगायेन् न कम्पयेत्।
समं सामानि गायेत व्योम्नि श्येनगतिर् यथा॥१४॥

अन्वयः– (वर्णान्) न अत्याहन्यान्, न निर्हण्यात्, न प्रगायेत्, न कम्पयेत्, यथा व्योम्नि श्येनगतिः (तथा) समम् सामानि गायेत।

शब्दार्थः– (वर्णान्=अकारादिकान् वर्णान्), न अतिहन्यात्=न पीडयेत्, न निर्हण्यात्=न वर्णान्तरापादनेन नितरां हन्यात्, न प्रगायेत्=न गाने इव मात्राव्यत्ययेनोच्चारयेत्, न कम्पयेत्=न स्थानप्रचलनेन उच्चारयेत्। यथा=येन प्रकारेण, व्योम्नि=आकाशे, श्येनगतिः=पत्त्रिगतिः, (तथा=तेन प्रकारेण), समम्=समानलययुक्तं यथा स्यात् तथा, सामानि=वेदमन्त्रगीतिविशेषान्, गायेत=गीतियुतरूपेण उच्चारयेत्।

सरलार्थः– अकारादिकान् वर्णान् न पीडयेत्, न वर्णान्तरापादनेन तान् नितरां हन्यात्, न तान् गाने इव मात्राव्यत्ययेनोच्चारयेत्, न च तान् स्थानप्रचलनेन युक्तान् उच्चारयेत्। येन प्रकारेण आकाशे श्येनस्य पक्षिणः समानक्रियायुक्ता गतिर् भवति तेनैव प्रकारेण समलययुतरूपेण सामानि गायेत्।

हिन्दी– अकारादि वर्णों को ज्यादा जोड से उच्चारण से द्विगुणित जैसे न करे, दूसरे वर्ण के सदृश बनाकर वर्णों को न बिगाडे, वर्णों को मात्राव्यत्यय से उच्चरित न करे, स्थान में करण के कम्पन से वर्णों को भी कम्पित बनाकर न बोले, जिस प्रकार से आकाश में बाज की समानरूप की गति होती है उसी प्रकार से समलययुक्त रूप से साम का गान करे॥

यथाऽप्सु चरतां मार्गो मीनानां नोपलभ्यते।
आकाशे वा विहङ्गानां तद्वत् स्वरगता श्रुतिः॥१५॥

अन्वयः– यथा अप्सु चरताम् मीनानाम् आकाशे (चरताम्) विहङ्गानाम् वा मार्गः न उपलभ्यते तद्वत् स्वरगता श्रुतिः (पृथक् न उपलभ्यते)।

शब्दार्थः– यथा=येन प्रकारेण, अप्सु=जले, चरताम्=गच्छताम्, मीनानाम्=मत्स्यानाम्, आकाशे=गगने, (चरताम्=गच्छताम्), विहङ्गानाम्=पक्षिणाम्, वा=अथवा, मार्गः=अध्वा, न उपलभ्यते=न प्राप्यते, तद्वत्=तेन प्रकारेण, स्वरगता=षड्जादिस्वरेषु स्थिता, श्रुतिः=स्वरघटकनादविशेषः, (पृथक्=स्वतन्त्ररूपेण, न उपलभ्यते=न प्राप्यते)।

सरलार्थः– यथा जले चरतां मत्स्यानाम् अथवा आकाशे चरतां पक्षिणां मार्गो न दृश्यते तथैव स्वरेषु वर्तमाना श्रुतिरपि पृथग् न लक्ष्यते।

हिन्दी– जैसे जल में चलने वाली मछलियों का और आकाश में उडनेवाले पक्षियों का मार्ग नहीं दिखाई देता है वैसे ही षड्जादि स्वरों में रहने वाली श्रुतियां भी पृथक् नहीं दिखाई देती है॥१५॥

यथा दधनि सर्पिः स्यात् काष्ठस्थो वा यथाऽनलः।
प्रयत्नेनोपलभ्येत तद्वत् स्वरगता श्रुतिः॥१६॥

अन्वयः– यथा दधनि सर्पिः स्यात्, यथा वा काष्ठस्थः अनलः (स्यात्), प्रयत्नेन (सर्पिः अनलः वा) उपलभ्येत (च), तद्वत् स्वरगता श्रुतिः (प्रयत्नेन उपलभ्येत)।

शब्दार्थः– यथा=येन प्रकारेण, दधनि=दुग्धविकारे द्रव्यविशेषे, सर्पिः=घृतम्, स्यात्=भवेत्, यथा वा=येन प्रकारेण वा, काष्ठस्थः=दारुणि स्थितः, अनलः=अग्निः, (स्यात्=भवेत्), प्रयत्नेन=प्रयासेन, (सर्पिः=घृतम्, अनलः=अग्निः, वा=अथवा), उपलभ्येत=प्राप्येत, (च=अपि), तद्वत्=तेन प्रकारेण, स्वरगता=षड्जादिषु स्वरेषु स्थिता, श्रुतिः=नादविशेषः, (प्रयत्नेन=प्रयासेन, उपलभ्येत=प्राप्येत)।

सरलार्थः– यथा दध्नि घृतं स्यात्, यथा वा काष्ठे अग्निः स्यात्, प्रयासेन तद् घृतं सः अग्निश्च उपलभ्येत तथैव षड्जादिषु स्वरेषु स्थिता श्रुतिरपि प्रयत्नेन उपलभ्येत।

हिन्दी– जैसे दही में घी होगा, अथवा जैसे काठ में आग होगी, प्रयास करने पर वह घी और आग उपलब्ध भी हो सकेंगे, वैसे ही षड्जादि स्वरों में स्थित श्रुति भी प्रयास करने पर ज्ञात हो सकेगी॥१६॥

स्वरात् स्वरं सङ्क्रामँस् तु स्वरसन्धिमनुल्बणम्।
अविच्छिन्नं समं कुर्यात् सूक्ष्मं छायाऽऽतपोपमम्॥१७॥

अन्वयः– स्वरात् स्वरं सङ्क्रामन् तु (अध्येता), स्वरसन्धिम् अनुल्बणम् अविच्छिन्नम् समम् छायाऽऽतपोपमम् सूक्ष्मम् कुर्यात्।

शब्दार्थः– स्वरात्=एकस्मात् षड्जादिकात् स्वरात्, स्वरम्=अन्य-मृषभादिकं स्वरम्, सङ्क्रामन्=गच्छन् (उच्चारयन्), तु=हि, (अध्येता=वेदाध्यायी), स्वरसन्धिम्=स्वरयोः संयोगस्थलम्, अनुल्बणम्=अनुत्कटम्, अविच्छिन्नम्=अत्रुटितम्, समम्=सुसङ्घटितम्, छायाऽऽतपोपमम्=छायाया आतपस्य च सन्धिना तुल्यम्, सूक्ष्मम्=मसृणम्, कुर्यात्=विदधीत।

सरलार्थः– एकं षड्जादिकं स्वरमुच्चार्य अन्यमृषभादिकं स्वरमुच्चार-यितुं प्रवृत्तो वेदाध्यायी तयोर् द्वयोः स्वरयोः सन्धिम् अनुत्कटम् अविच्छिन्नम् सुसङ्घटितं छायाया आतपस्य च सन्धिना तुल्यं मसृणं च कुर्यात्।

विशेषः– अयं श्लोकः स्वल्पेन पाठान्तरेण सह माण्डूकीयशिक्षाया-मपि (३.६) पठ्यते। तथा हि–

स्वरात् स्वरं सङ्क्रमते स्वरसन्धिमनुल्बणम्।
अविच्छिन्नं समं कुर्यात् सूक्ष्मं छायातपोपमम्॥ इति।

हिन्दी– एक षड्जादि स्वर को बोलकर दूसरे ऋषभादि स्वर को बोलने में प्रवृत्त वेदाध्यायी उन स्वरों के सन्धि को अनुत्कट, अविच्छिन्न, सुघटित और छाया और आतप (धूप) के सन्धि की भाँति सूक्ष्म भी करे॥१७॥

अनागतमतिक्रान्तं विच्छिन्नं विषमाहतम्।
तन्वन्तमस्थितान्तं च वर्जयेत् कर्षणं बुधः॥१८॥

अन्वयः– बुधः अनागतम् अतिक्रान्तम् विच्छिन्नम् विषमाहतम् तन्वन्तम् अस्थितान्तम् च कर्षणम् वर्जयेत्।

शब्दार्थः– बुधः=स्वरविज्ञोऽध्येता, अनागतम्=अप्राप्तम्, अतिक्रान्तम्=अतीतम्, विच्छिन्नम्=त्रुटितम्, विषमाहतम्=मात्राव्यत्यासेन पातितम्, तन्वन्तम्=तनूकृतपश्चात्स्वरम्, अस्थितान्तम्=सम्यगात्मलाभरहितपश्चात्-स्वरम्, च=अपि, कर्षणम्=एकस्य स्वरस्य अन्यं स्वरं यावद् नयनम्, वर्जयेत्=परित्यजेत्।

सरलार्थः– स्वरविज्ञोऽध्येता अनागतम्, अतिक्रान्तम्, विच्छिन्नम्, विषमाहतम्, तन्वन्तम्, अस्थितान्तं चेति षड्विधं दुष्टं स्वरकर्षणं वर्जयेत्।

विशेषः– सामगानेषु प्रसिद्धं सामतन्त्रादौ प्रतिपादितं चाऽपि कर्षणम् अर्वाचीनेषु सङ्गीतशास्त्रग्रन्थेषु न चर्चितमिति अर्वाचीनसङ्गीतशास्त्र-ग्रन्थज्ञाः कथयन्ति।

हिन्दी– स्वरों का विज्ञ अध्येता अनागत, अतिक्रान्त, विच्छिन्न, विषमाहत, तन्वन्त और अस्थितान्त इन छह प्रकार के दोषपूर्ण स्वरकर्षण को वर्जित करे॥१८॥

स्वरः स्थानाच् च्युतो यस् तु स्वस्थानमतिवर्तते।
विस्वरं सामगा ब्रुयुर् विरक्तमिति वीणिनः॥१९॥

अन्वयः– स्थानात् च्युतः यः तु स्वरः स्वस्थानम् अतिवर्तते (तम् स्वरम्) सामगाः विस्वरम् ब्रूयुः, वीणिनः विरक्तम् इति (ब्रूयुः)।

शब्दार्थः– स्थानात्=आस्पदात्, च्युतः=स्खलितः, यः=आकाङ्क्षाबुद्धि-विशेषविषयभूतः, तु=हि, स्वरः=षड्जादिको नादविशेषः, स्वस्थानम्=निजा-स्पदम्, अतिवर्तते=अतिक्रम्य तिष्ठति, (तम्=आकाङ्क्षापूरणबुद्धिविषयम्, स्वरम्=षड्जादिकं नादविशेषम्), सामगाः=छन्दोगाः, विस्वरम्=विस्वरशब्द-वाच्यम्, ब्रूयुः=कथयेयुः, वीणिनः=वीणावादाः, विरक्तम्=विरक्तशब्दवाच्यम्, इति=एवम्, (ब्रूयुः=कथयेयुः)।

सरलार्थः– स्वस्थानाच् च्युतो यस्तु स्वरः स्वस्थानमतिक्रम्य वर्तते तं स्वरं सामगा विस्वरं कथययन्ति, वीणावादास्तु विरक्तं भणन्ति।

हिन्दी– जो स्वर अपने स्थान से च्युत होकर अपने स्थान का अतिक्रमण करके रहता है, उस स्वर को सामवेदी लोग विस्वर कहते हैं और वीणा बजाने वाले लोग विरक्त कहते हैं ॥१९॥

अभ्यासार्थे द्रुतां वृत्तिं प्रयोगार्थे तु मध्यमाम्।
शिष्याणामुपदेशार्थे कुर्याद् वृत्तिं विलम्बिताम् ॥२०॥

अन्वयः– अभ्यासार्थे द्रुताम् वृत्तिम् कुर्यात्, प्रयोगार्थे तु मध्यमाम् (वृत्तिम् कुर्यात्), शिष्याणाम् उपदेशार्थे विलम्बितां वृत्तिम् (कुर्यात्)।

शब्दार्थः– अभ्यासार्थे=अभ्यासे निमित्ते (सति), द्रुताम्=शीघ्राम्, वृत्तिम्=वाग्गतिम्, कुर्यात्=विदधीत। प्रयोगार्थे=यज्ञादौ प्रयोगे निमित्ते (सति), मध्यमाम्=द्रुताया विलम्बितायाश्च वृत्तेर् मध्ये स्थिताम्, (वृत्तिम्=वाग्गतिम्, कुर्यात्=विदधीत)। शिष्याणाम्=विद्यार्थिनाम्, उपदेशार्थे=उपदेशे निमित्ते (सति), विलम्बिताम्=मन्दाम्, वृत्तिम्=वाग्गतिम्, (कुर्यात्=विदधीत)।

सरलार्थः– अभ्यासाय द्रुतां वृत्तिं कुर्यात्, यज्ञादौ प्रयोगाय मध्यमां वृत्तिं कुर्यात्, शिष्याणामुपदेशाय विलम्बितां वृत्तिं कुर्यात्।

विशेषः– **"तिस्रो वृत्तयो भवन्ति द्रुता मध्यमा विलम्बितेति। द्रुतायां वृतौ त्रिकला मात्रा भवति, चतुष्कला मध्यमायाम्। पञ्चकला विलम्बितायाम्। द्रुता रोहिणी, श्यामा मध्यमा, श्वेता विलम्बिता। तासां देवताः, वायव्या द्रुता वृत्तिः, बार्हस्पत्या मध्यमा, सौरी विलम्बिता"** इति मात्रालक्षणे (१।११,१२) अधिकं कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां षष्ठे सामनिरूपणाध्याये (श्लो.१५-१९, पृ.५६१-५६५) द्रष्टव्यम्।

एष श्लोको याज्ञवल्क्यशिक्षायामपि विद्यते।

हिन्दी– अभ्यास के लिए द्रुत वृत्ति का अवलम्बन करे, यज्ञादि में प्रयोग के लिए मध्यम वृत्ति का अवलम्बन करे, शिष्यों के उपदेश के लिए विलम्बित वृत्ति का अवलम्बन करे ॥२०॥

गृहीतग्रन्थ एवं तु ग्रन्थोच्चारणशिक्षकान्।
हस्तेनाऽध्यापयेच् छिष्यान् छैक्षेण विधिना द्विजः॥२१॥

अन्वयः– एवम् शैक्षेण विधिना गृहीतग्रन्थः द्विजः तु ग्रन्थोच्चारण-शिक्षकान् शिष्यान् हस्तेन अध्यापयेत्।

शब्दार्थः– एवम्=उक्तेन प्रकारेण, शैक्षेण=शिक्षासम्बद्धेन, विधिना=विधानेन, गृहीतग्रन्थः=गुरुमुखोच्चारणानूच्चारणरूपाध्ययनसमवाप्तस्वशाखा-वेदादिग्रन्थः, द्विजः=विप्रः, तु=हि, ग्रन्थोच्चारणशिक्षकान्=वेदरूपग्रन्थस्योच्चारणं शिक्षितुं तत्परान्, शिष्यान्=विद्यार्थिनः, हस्तेन=स्वरादिनिर्देशवता करेण प्रदर्शितेन, अध्यापयेत्=शिक्षयेत्।

सरलार्थः– उक्तप्रकारेण वेदाङ्गशिक्षाशास्त्रोक्तेन विधिना कृतेन गुरुमुखोच्चारणानूच्चारणरूपाध्ययनेन येन स्वशाखावेदादिग्रन्थाः समावाप्ताः स हि द्विजो वेदरूपग्रन्थस्योच्चारणं शिक्षितुं तत्परान् अधिकारिणः शिष्यान् प्रदर्शितेन स्वरादिनिर्देशवता करेण स्वशाखावेदादिग्रन्थोच्चारणं शिक्षयेत्।

विशेषः– विधिकृतगुरुमुखोच्चारणानूच्चारणरूपाध्ययनसमवाप्त-स्वशाखावेदादिग्रन्थस्यैव विप्रस्य विधिना स्वशाखावेदादिग्रन्थाध्यापनेऽधिकार इत्यपि अनेन श्लोकेन प्रतिपादितं ज्ञेयम्।

हिन्दी– उक्त प्रकार से शिक्षाशास्त्रोक्त विधि से गुरु से जिस ने वेदादिग्रन्थ का अध्ययन करके वेदादिग्रन्थों का ग्रहण किया है वही द्विज वेदादिग्रन्थों का उच्चारण शिखने वाले शिष्यों को स्वरनिर्देशयुक्त हाथ की सहायता से विधिपूर्वक स्वशाखावेदादिग्रन्थ का उच्चारण सिखाए॥२१॥

॥ इति प्रथमे प्रपाठके षष्ठी कण्डिका॥

अथ प्रथमे प्रपाठके सप्तमी कण्डिका

क्रुष्टस्य मूर्धनि स्थानं ललाटे प्रथमस्य तु।
भ्रुवोर् मध्ये द्वितीयस्य तृतीयस्य तु कर्णयोः॥१॥
कण्ठः स्थानं तु तुर्यस्य मन्द्रस्योरसि तूच्यते।
अतिस्वारस्य नीचस्य हृदि स्थानं विधीयते॥२॥

अन्वयः– क्रुष्टस्य स्थानम् मूर्धनि (उच्यते), प्रथमस्य तु (स्थानम्) ललाटे (उच्यते), द्वितीयस्य (स्थानम्) भ्रुवोः मध्ये (उच्यते), तृतीयस्य तु (स्थानम्) कर्णयोः (उच्यते), तुर्यस्य तु स्थानं कण्ठः (उच्यते), मन्द्रस्य तु (स्थानम्) उरसि उच्यते, नीचस्य अतिस्वारस्य स्थानम् हृदि विधीयते।

शब्दार्थः– क्रुष्टस्य=क्रुष्टाख्यस्य सर्वोच्चस्य सामस्वरविशेषस्य, स्थानम्=आस्पदम्, मूर्धनि=शिरसि, (उच्यते=कथ्यते), प्रथमस्य=प्रथमाख्यस्य सामस्वरस्य, तु=हि, (स्थानम्=आस्पदम्), ललाटे=भाले, (उच्यते=कथ्यते), द्वितीयस्य=द्वितीयाख्यस्य सामस्वरस्य, (स्थानम्=आस्पदम्), भ्रुवोः=नेत्रोपरिभागस्थरोमराज्योः, मध्ये=अन्तरे, (उच्यते=कथ्यते), तृतीयस्य=तृतीयाख्यस्य सामस्वरस्य, तु=हि, (स्थानम्=आस्पदम्), कर्णयोः=श्रोत्रयोः, (उच्यते=कथ्यते), तुर्यस्य=चतुर्थाख्यस्य सामस्वरस्य, तु=हि, (स्थानम्=आस्पदम्), कण्ठः=गलः (उच्यते=कथ्यते), मन्द्रस्य=मन्द्राख्यस्य षष्ठस्य सामस्वरस्य, तु=हि, (स्थानम्=आस्पदम्), उरसि=वक्षःस्थले, उच्यते=कथ्यते, नीचस्य=सर्वेभ्यः स्वरेभ्यो नीचस्य, अतिस्वारस्य=अतिस्वार्यस्य मन्द्रकर्षणात्मकस्य स्वरस्य, स्थानम्=आस्पदम्, हृदि=हृदयदेशे, विधीयते=क्रियते अभिधीयते वा।

सरलार्थः– क्रुष्टाख्यस्य सर्वोच्चस्य सामस्वरस्य स्थानं शिरसि उच्यते, प्रथमस्य स्वरस्य तु स्थानं ललाटे उच्यते, द्वितीयस्य स्वरस्य स्थानं भ्रुवोर् मध्ये उच्यते, तृतीयस्य स्वरस्य स्थानं कर्णयोरुच्यते, चतुर्थस्य स्वरस्य तु स्थानं कण्ठ उच्यते, मन्द्रस्य स्वरस्य तु स्थानं वक्षःस्थले कथ्यते, सर्वेभ्यः स्वरेभ्यो नीचस्य अतिस्वारस्य स्वरस्य स्थानं हृदयदेशे अभिधीयते।

विशेषः– क्रुष्टादीनामेतानि स्थानानि बृहद्देवतायामपि (८।११२-११३) प्रतिपादितानि। तथा हि–

क्रुष्टो मूर्धनि विज्ञेयस् तालव्यः प्रथमः स्वरः।
द्वितीयस् तु भ्रुवोर् मध्ये तृतीयः कर्णसंश्रितः॥
चतुर्थो नासिकाग्रे स्यादौरसो मन्द्र उच्यते।
मन्द्रकर्षणसंयुक्तमतिस्वारं प्रशंसति॥ इति।

क्रुष्टादीनामेतैः स्थानैः सह षड्जादीनामुत्पत्तिस्थानानां संवाद-विसंवादयोर् विवेकाय भाषिकसूत्रस्थं सामस्वरप्रकरणं च विचार्यम्। तद् यथा– **"सप्त साम्नाम्, षड्ज-र्षभ-गान्धार-मध्यम-पञ्चम-धैवत-निषादाः, तेषां योनयः, कण्ठात् षड्जः, शिरसः ऋषभः, नासिकाया गान्धारः, उरसो मध्यमः, उरसः शिरसः कण्ठात् पञ्चमः, धैवतो ललाटात्, निषादः सर्वत इति"** इति ३।१६-२५)।

"मन्द्रस्योरसि तूच्यते" इत्यस्य स्थाने **"मन्द्रस्य रसनोच्यते"** इति बृहन्नारदीयपुराणे पाठः (१।५०।१०२)।

हिन्दी– क्रुष्ट नाम के सर्वोच्च सामस्वर का स्थान शिर में कहा जाता है, प्रथम नाम के सामस्वर का स्थान ललाट में कहा जाता है, द्वितीय नाम के सामस्वर का स्थान आँख की भौहों के बीच में बताया जाता है, तृतीय नाम के सामस्वर का स्थान कानों में कहा जाता है, चतुर्थ नाम के सामस्वर का स्थान गला कहा जाता है, मन्द्र स्वर का तो स्थान वक्षःस्थल बताया जाता है, सभी स्वरों से नीच अतिस्वार नाम के सामस्वर का स्थान हृदयदेश में कहा जाता है॥१, २॥

अङ्गुष्ठस्योत्तमे क्रुष्टोऽङ्गुष्ठे तु प्रथमः स्वरः।
प्रदेशिन्यां तु गान्धार ऋषभस् तदनन्तरम्॥३॥
अनामिकायां षड्जस् तु कनिष्ठायां च धैवतः।
तस्याऽधस्ताच्च याऽन्या तु निषादं तत्र विन्यसेत्॥४॥

अन्वयः– अङ्गुष्ठस्य उत्तमे क्रुष्टः (विन्यसनीयः), अङ्गुष्ठे तु प्रथमः स्वरः (विन्यसनीयः), प्रदेशिन्याम् तु गान्धारः (विन्यसनीयः), ऋषभः तदनन्तरम्

(विन्यसनीयः), अनामिकायाम् तु षड्जः (विन्यसनीयः), कनिष्ठायाम् धैवतः च (विन्यसनीयः), तस्य अधस्तात् च या अन्या तत्र निषादम् तु विन्यसेत्।

शब्दार्थः– अङ्गुष्ठस्य=अङ्गुलस्य, उत्तमे=प्रान्तस्थे पर्वणि, क्रुष्टः=क्रुष्टाख्यः सर्वोच्चः स्वरः, (विन्यसनीयः=स्थापनीयः), अङ्गुष्ठे=अङ्गुले (मध्यमपर्वस्थाने), तु=हि, प्रथमः=प्रथमाख्यः, स्वरः=नादविशेषः, (विन्यसनीयः=स्थापनीयः), प्रदेशिन्याम्=तर्जन्याम्, तु=हि, गान्धारः=गान्धाराख्यः स्वरः, (विन्यसनीयः=स्थापनीयः), ऋषभः=ऋषभाख्यः स्वरविशेषः, तदनन्तरम्=गान्धारानन्तरम् (मध्यमाङ्गुल्याम्), (विन्यसनीयः=स्थापनीयः), अनामिकायाम्=कनिष्ठासमीपस्थायाम् अङ्गुल्याम्, तु=हि, षड्जः=षड्जाख्यः स्वरः, (विन्यसनीयः=स्थापनीयः), कनिष्ठायाम्=कनीयस्याम् अङ्गुल्याम्, धैवतः=धैवताख्यः स्वरः, (विन्यसनीयः=स्थापनीयः), तस्य=धैवतस्य, अधस्तात्=अधोदेशे, या अन्या=या इतरा रेखा, तत्र=तस्याम्, निषादम्=निषादाख्यं स्वरम्, तु=हि, विन्यसेत्=स्थापयेत्।

सरलार्थः– अङ्गुष्ठस्य उपरितने पर्वणि क्रुष्टः स्वरः स्थापनीयः, अङ्गुष्ठे मध्यमपर्वभागे प्रथमः स्वरः स्थापनीयः, तर्जन्यां गान्धारः स्वरः स्थापनीयः, गान्धारानन्तरं मध्यमायामङ्गुल्याम् ऋषभः स्वरः स्थापनीयः, अनामिकायामङ्गुल्यां षड्जः स्वरः स्थापनीयः, कनिष्ठायामङ्गुल्यां धैवतः स्वरः स्थापनीयः, तस्य धैवतस्याऽधोभागे याऽन्या रेखा तत्र निषादं स्वरं स्थापयेत्।

विशेषः– अत्र स्वराणां क्रमो विचारणीयो दृश्यते। तत्र क्रुष्ट-प्रथम-द्वितीय-तृतीय-चतुर्थ-मन्द्रा-ऽतिस्वार्याः सामस्वराः यथापूर्वमुच्चोच्चाः इति, षड्ज-ऋषभ-गान्धार-मध्यम-पञ्चम-धैवत-निषादाः गान्धर्वस्वराश्च यथोत्तरम् उच्चोच्चा इति च सामविधानब्राह्मण-तैत्तिरीयप्रातिशाख्यादि-वचनेभ्यो ज्ञायते। सायणेन भरतस्वामिना च सामविधानब्राह्मणव्याख्यायां क्रुष्टादीनां विषये **"ते चोत्तरोत्तरं नीचा भवन्ति"** इत्युक्तमेवाऽस्ति (१।१।३)। एतस्मिन् विषयेऽधिकं ज्ञातुमिच्छुकैः कौण्डिन्न्यायनशिक्षायाः स्वराध्याये वैदिकस्वरगान्धर्वस्वरतुलना-प्रकरणं गान्धर्वस्वर-सामस्वर-विवेचनप्रकरणं च (पृ.३६९-३७९) द्रष्टव्यम्। सामस्वरेषु क्रुष्टस्य सर्वोच्चत्वं नारदीयशिक्षायां क्रुष्टादीनां स्थानानां निर्देशस्य वैशिष्ट्यात् (१।७।१-२), गान्धर्वस्वरेषु निषादस्य सर्वोच्चत्वं च निषादनिर्वचनस्य

(१।५।१९) विचाराच् च नारदीयशिक्षायामपि स्वीकृतमेवाऽवगम्यते। एवं च सामस्वर-गान्धर्वस्वरसंवाद एवंरूपो भवेत्– क्रुष्टः=निषादः, प्रथमः=धैवतः, द्वितीयः=पञ्चमः, तृतीयः=मध्यमः, चतुर्थः=गान्धारः, मन्द्रः=ऋषभः, अतिस्वार्यः=षड्जः इति। एवमेव सायणेनाऽपि प्रदर्शितमिति जानन्त्येव विद्वांसः (भारतीय-सङ्गीतेतिहासे, १९८५क्रै., पृ. ९६)। **किन्त्वत्र नारदीयशिक्षाया हस्तस्वरविन्यास-स्य प्रतिपादने** क्रुष्टः=पञ्चमः, प्रथमः=मध्यमः, द्वितीयः=गान्धारः, तृतीयः=ऋषभः, चतुर्थः=षड्जः, मन्द्रः=धैवतः, अतिस्वार्यः=निषादः इति सामस्वर-गान्धर्वस्वर-संवाद आस्थितः प्रतीयते। **अत्रैव पूर्वम्** (१।५।१-२) **सामस्वर-वेणुस्वरसंवाद-प्रदर्शने** च क्रुष्टः=मध्यमः, प्रथमः=गान्धारः, द्वितीयः=ऋषभः, तृतीयः=षड्जः, चतुर्थः=धैवतः, मन्द्रः=निषादः, अतिस्वार्यः=पञ्चमः इति स्वीकृतं प्रतीयते। तथाऽपि एतयोर् द्वयोः प्रकरणयोर् नारदीयशिक्षायाम् गान्धर्वस्वराणां मध्यमः गान्धारः ऋषभः षड्जः धैवतः निषादः पञ्चमः इति एक एव क्रमः स्वीकृत इव दृश्यते। एष तु क्रमः प्रसिद्धाद् गान्धर्वस्वरक्रमाद् भिन्नोऽस्ति। अन्यत्र तु नारदीयशिक्षायामपि (१।२।५, १।५।३-४, १।५।५-६, १।५।७-१२, १।५।१३-१४, १।५।१५-१९) गान्धर्वस्वराणां प्रसिद्ध एव षड्जः ऋषभः गान्धारः मध्यमः पञ्चमः धैवतः निषादः इति क्रम आस्थितो दृश्यते। अतोऽयं हस्तस्वरविन्यासविषये नारदीयशिक्षायां दृश्यमानः स्वरक्रमोऽतीव विचारणीयोऽस्ति।

सामस्वराणां हस्ते न्यासो माण्डूकीयशिक्षायामपि (२।१, २) प्रतिपादितोऽस्ति। तथा हि–

> बाह्याङ्गुष्ठं तु क्रुष्टं स्यादङ्गुष्ठे मध्यमः स्वरः।
> प्रदेशिन्यां तु गान्धारो मध्यमायां तु पञ्चमः॥
> अनामिकायां षड्जस् तु कनिष्ठायां तु धैवतः।
> तस्याऽधस्तात् तु योऽन्यः स्यान् निषाद इति तं विदुः॥ इति।

अत्र नारदीयशिक्षायाः स्वरविन्यासव्यवस्थायां पञ्चमस्वरस्य क्रुष्टत्व-मास्थाय तस्य स्थानम् अङ्गुष्ठस्य उत्तमं पर्व उक्तमवगम्यते, माण्डूकीय-शिक्षायाः स्वरविन्यासव्यवस्थायां तु पञ्चमस्वरस्य स्थानं मध्यमाऽङ्गुली उक्तेति स्पष्टमित्यनयोः शिक्षयोः परम्परायां कोऽपि भेदोऽस्तीत्यवगन्तव्यम्। नारदीय-

शिक्षायां प्रथमत्वेनोक्तस्य मध्यमस्य स्वरस्य स्थानं तु उभयोः शिक्षयोः अङ्गुष्ठ एवोक्तोऽवगम्यते इत्यपि स्मर्तव्यम्।

सामगानस्वराणां हस्ते विन्यासस्य विषये सामतन्त्रप्राक्कथने (पृ. ४६) रामनाथदीक्षितेन तु– **"अथ स्वरविन्यासः– तर्जन्या उपरि द्वियवान्तरोऽङ्गुष्ठः क्रुष्टस्य बोधकः, एकयवान्तरोऽङ्गुष्ठः प्रथमस्य, तर्जनीमध्यरेखा द्वितीयस्य, मध्यमामध्यरेखा तृतीयस्य, अनामिकामध्यरेखा चतुर्थस्य कनिष्ठिकामध्य-रेखा मन्द्रस्य, तन्मूलरेखाऽतिस्वार्यस्येति। अङ्गुष्ठेन द्वितीयादिस्वरोच्चारणे तास्ता रेखाः स्पर्शयेत्"** इति उल्लिखितमस्ति।

विद्याधरगौडमहाशयेन शतपथब्राह्मणद्वितीयभागे प्राक्कथने (पृ. ६) तु सामगानस्वराणां हस्ते विन्यासस्य विषये– **"सामवेदे गाने मध्यम-गान्धार-ऋषभ-षड्ज-धैवत-निषाद-पञ्चमेति क्रमेण सप्त स्वराः क्रियन्ते। तत्र मध्यमे हस्तो रिक्त एव स्थाप्यते। गान्धारे अङ्गुष्ठेन तर्जन्या मध्यं पर्व स्पृश्यते। ऋषभेऽङ्गुष्ठेन मध्यमाङ्गुलिमध्यपर्व, षड्जेऽनामिकामध्यपर्व, धैवते कनिष्ठा-मध्यपर्व, निषादे कनिष्ठामूलम्, पञ्चमे तर्जन्यग्रं स्पृश्यते"** इत्युक्तम्।

एष सामगानस्वरविन्यासक्रमः केषां सामगानां परम्परायामस्ति, कं प्रामाणिकं ग्रन्थमनुसरति, एष सामगानस्वरक्रमविशेषः कस्मिन् ग्रन्थे प्रति-पादितोऽस्ति इति च तत्र किमपि नोक्तम्।

हिन्दी– अँगूठे के ऊपर के पर्व में क्रुष्ट स्वर विन्यसनीय है, अँगूठे (के मध्यम पर्व) में प्रथम स्वर विन्यसनीय है, अँगूठे के पास वाली उँगली में गान्धार स्वर विन्यसनीय है, उस के वाद की उँगली में (बीच की उँगली में) ऋषभ स्वर विन्यसनीय है, कानी उँगली के पास वाली उगली में षड्ज स्वर विन्यसनीय है, कानी उँगली में धैवत स्वर विन्यसनीय है, उस धैवतस्वरस्थान के नीचे भाग में कानी उँगली की जो अन्य रेखा है उस में निषाद स्वर को रखे॥३,४॥

अपर्वत्वादसंज्ञत्वादव्ययत्वाच् च नित्यशः।
मन्द्रो हिनुहिभूतस् तु परिस्वार इति स्मृतः॥५॥

अन्वयः– अपर्वत्वात् असंज्ञत्वात् नित्यशः अव्ययत्वात् च हिनुहिभूतः मन्द्रः तु परिस्वार इति स्मृतः (अस्ति)।

शब्दार्थः– अपर्वत्वात्=निर्देशार्हपर्वरहितत्वात्, असंज्ञत्वात्=सम्यक् पृथक्त्वेन ज्ञातुमशक्यत्वात्, नित्यशः=सदा, अव्ययत्वात्=व्ययहीनत्वात्, श्रुत्यपचयहीनत्वात्, च=अपि, हिनुहिभूतः=प्रेरणविषयभूतः, मन्द्रः=मन्द्राख्यः षष्ठः स्वरः, तु=हि, परिस्वार इति=परिस्वारशब्दवाच्यः, स्मृतः=स्मृतिविषयं गतः, (अस्ति=वर्तते)।

सरलार्थः–निर्देशार्हपर्वरहितत्वात्, सम्यक् पृथक्त्वेन ज्ञातुमशक्यत्वात्, सदा व्ययहीनत्वाच्च प्रेरणविषयभूतो मन्द्रः स्वरः परिस्वार इति स्मृतोऽस्ति।

विशेषः– अयं परिस्वारः अतिस्वारः अतिस्वार्यो वा नाम साम्नां सप्तमोऽन्त्यो वा स्वर एवाऽस्तीति के चन मन्यन्ते (भारतीयसङ्गीतेतिहासे, १९८५क्रै., पृ.९२)। भिसेश्च तथैव मन्यते। किन्तु अत्र हस्ते स्वरन्यासस्य प्रकरणे क्रुष्टादीनां निषादान्तानां सप्तानामेव स्वराणां न्यासस्थानानां पूर्वमेव प्रतिपादितत्वात् परिस्वारस्तेभ्यो भिन्नः स्वरोऽस्तीत्यवगम्यत इति परिस्वारः अतिस्वार्यो नास्तीति विज्ञायते। "**अतिस्वारो मन्द्रं प्रत्युत्क्रामति परिस्वारे**" इति मात्रालक्षणे (१।१९) उक्तत्वादपि अतिस्वार-परिस्वारयोर् भेदः स्फुटः। परिस्वारोऽयं सामवेदगीतौ प्रयोज्यः कश्चन विशेषोऽवगम्यते। सामतन्त्रप्राक्कथने (पृ.४०) रामनाथदीक्षित-महाशयेन "**मन्द्रः यदाऽतिस्वार्यमन्द्रातिस्वार्यान् प्राप्नोति तदा तेषां स्वरसमुदायानां परिस्वार इति संज्ञा**" इति परिस्वारस्य परिचयो दत्तोऽस्ति। तादृश एवाऽयं नारदीयशिक्षोक्तः परिस्वारोऽवगम्यते, न तु अतिस्वार्य एव परिस्वार इति।

अत्र नारदीयशिक्षायां हस्तस्वरन्यासप्रतिपादने क्रुष्टप्रथमाभ्यां सामस्वराभ्यां प्रारम्भं कृत्वा गान्धारर्षभादिभिः गान्धर्वस्वरत्वेन प्रसिद्धैः स्वरैः प्रकरणस्य समापितत्वात् स्वराणां विषये कोऽपि भ्रमः प्रसृतोऽवगम्यते। तस्मिन् विषये सामगानविशेषज्ञैः गान्धर्वशास्त्रज्ञैश्च विशेषतो विचारः कर्तव्यः। परिस्वारस्तु सामगानमात्रसम्बद्धो विषयोऽवगम्यते।

हिनुहिभूत इति शब्दो विचारार्ह इति वैदिकपदानुक्रमकोषकारा अपि मन्यन्ते। हिनुहिभूतशब्दः शोभाकरेणाऽपि व्याचिख्यासितोऽस्ति। "**हिनुहिभूतः**" खलु मात्रालक्षणविवरणेऽपि उल्लिखितोऽस्ति (१।१९) बृहन्नारदीयपुराणे तु "**हिनुहिभूतस्तु**" इत्यस्य स्थाने "**हि मन्दीभूतस्तु**" इति पाठो दृश्यते १।५०।१०६)।

हिन्दी – निर्देश के लिए योग्य अङ्गुलिपर्व न होने से, ठीक-ठीक रूप में पृथक् स्वर के रूप में जानने योग्य न होने से, और सदा विशेष रूप में सर्वत्र प्रवृत्त होने की स्थिति न होने से भी अतिस्वारभाव में वारवार प्रेरित होने वाला मन्द्र स्वर परिस्वारशब्दवाच्यरूप में स्मृत है।

विशेष – जब मन्द्र स्वर अतिस्वार्य मन्द्र अतिस्वार्य इस रूप में उच्चरित होता है उस समय में वह स्वरसमुदाय परिस्वार शब्द से व्यवहृत होता है, यह बात रामनाथ दीक्षित महाशय ने सामतन्त्र के प्राक्कथन में (पृ.४०) बताई है। इस विषय में विभिन्न शाखा सम्प्रदाय से आए हुए सामगानों के विशेषज्ञ लोग विचार करें॥५॥

क्रुष्टेन देवा जीवन्ति प्रथमेन तु मानुषाः।
पशवस् तु द्वितीयेन गन्धर्वाऽप्सरसस् त्वनु॥६॥
आण्डजाः पितरश् चैव चतुर्थस्वरजीविनः।
मन्द्रं चैवोपजीवन्ति पिशाचा-ऽसुर-राक्षसाः॥७॥
अतिस्वारेण नीचेन जगत् स्थावरजङ्गमम्।
सर्वाणि खलु भूतानि धार्यन्ते सामिकैः स्वरैः॥८॥

अन्वयः– देवाः क्रुष्टेन जीवन्ति, मानुषाः तु प्रथमेन (जीवन्ति), पशवः तु द्वितीयेन (जीवन्ति), गन्धर्वाऽप्सरसः तु अनु (जीवन्ति), आण्डजाः पितरः च एव चतुर्थस्वरजीविनः (सन्ति), पिशाचासुरराक्षसाः च एव मन्द्रम् उपजीवन्ति, स्थावरजङ्गमम् जगत् नीचेन अतिस्वारेण (जीवति)। सर्वाणि भूतानि सामिकैः स्वरैः धार्यन्ते खलु।

शब्दार्थः– देवाः=सुराः, क्रुष्टेन=क्रुष्टाख्येन सामस्वरेण, जीवन्ति= प्राणन्ति, मानुषाः=नराः, तु=हि, प्रथमेन=प्रथमाख्येन स्वरेण, (जीवन्ति=प्राणन्ति), पशवः=पशुशब्दवाच्याः प्राणिविशेषाः, तु=हि, द्वितीयेन=द्वितीयाख्येन स्वरेण, (जीवन्ति=प्राणन्ति), गन्धर्वाप्सरसः=गन्धर्वाख्या हाहा-हूहू-प्रभृतयो देवयोनि-विशेषाः स्वर्वेश्याश्च, तु=हि, अनु=द्वितीयं स्वरम् अनु स्थितेन तृतीयेन स्वरेण, (जीवन्ति=प्राणन्ति), आण्डजाः=अण्डोद्भवाः प्राणिनः, पितरः=पितृलोके स्थिताः जनाः, च=अपि, एव=हि, चतुर्थस्वरजीविनः=चतुर्थेन स्वरेण जीवनं कुर्वन्तः,

(सन्ति=वर्तन्ते), पिशाचाऽसुरराक्षसाः=पिशाचाख्याः असुराख्याः राक्षसाख्याश्च देवयोनिविशेषाः, च=अपि, एव=हि, मन्द्रम्=मन्द्राख्यं पञ्चमं सामस्वरम्, उपजीवन्ति=आश्रित्य प्राणन्ति, स्थावरजङ्गमम्=स्थास्नु चरं च, जगत्=विश्वम्, नीचेन=सर्वेभ्यः स्वरेभ्यो नीचैः स्थितेन, अतिस्वारेण=अतिस्वार्यापरपर्यायेण सप्तमेन सामस्वरेण, (जीवति=प्राणिति)। सर्वाणि=निखिलानि, भूतानि=जीवाः, सामिकैः=सामसम्बद्धैः, स्वरैः=नादविशेषैः, धार्यन्ते खलु=ध्रियन्ते खलु।

सरलार्थः– सुराः क्रुष्टेन स्वरेण जीवन्ति, मनुष्याः प्रथमेन स्वरेण जीवन्ति, सर्वे पशवस्तु द्वितीयेन स्वरेण जीवन्ति, गन्धर्वा अप्सरसश्च द्वितीयं स्वरमनु स्थितेन (तृतीयेन) स्वरेण जीवन्ति, आण्डजाः प्राणिनः पितरश्च चतुर्थ-स्वरजीविनः सन्ति, पिशाचाः असुराः राक्षसाश्च मन्द्रं स्वरमुपजीवन्ति, स्थावरं जङ्गमं च जगत् नीचेन अतिस्वारेण स्वरेण जीवति। एवं सर्वाणि भूतानि साम-स्वरैः धार्यन्ते खलु।

विशेषः– देवादीनां सामस्वरोपजीवित्वं सामविधानब्राह्मणेऽपि प्रति-पादितमस्ति। तथा हि–

"तद् योऽसौ क्रुष्टतम इव साम्नः स्वरस् तं देवा उपजीवन्ति, यो-ऽवरेषां प्रथमस् तं मनुष्याः, यो द्वितीयस् तं गन्धर्वाऽप्सरसः, यस् तृतीयस् तं पशवः, यश् चतुर्थस् तं पितरो ये चाऽण्डेषु शेरते, यः पञ्चमस् तमसुररक्षांसि, योऽन्त्यस् तमोषधयो वनस्पतयो यच्चाऽन्यज् जगत्। तस्मादाहुः सामैवा-ऽन्नमिति। साम ह्येषामुपजीवनं प्राऽयच्छत्।" इति {१।१।३(४)}

एष विषयो बृहद्देवतायामपि (८।११४-११६) भङ्ग्यन्तरेण प्रति-पादितोऽस्ति। तथा हि–

वदन्ति देवताः क्रुष्टं मनुष्याः प्रथमं स्वरम्।
द्वितीयं पशवः सर्वे गन्धर्वाप्सरसः स्वरम् (परम्?)॥
अण्डजाः पक्षिणः सर्पाश् चतुर्थमुपभुञ्जते।
मन्द्रं पिशाचा रक्षांसि असुराश्चोपभुञ्जते॥
अतिस्वारस् तु सर्वस्य जङ्गमस्थावरस्य च। इति।

तत्र सामविधानब्राह्मणे द्वितीयं स्वरं गन्धर्वाप्सरस उपजीवन्ति, तृतीयं स्वरं पशव उपजीवन्तीत्युक्तम्, नारदीयशिक्षायां तु द्वितीयं स्वरं पशव उपजीवन्ति तृतीयं स्वरं गन्धर्वाप्सरस उपजीवन्तीत्युक्तम्, बृहद्देवतायामपि नारदीयशिक्षायामिवैवोक्तम्। एतादृशो व्यत्यासः कथं समाधेय इति अनूचानतरा द्विजोत्तमा विचारयन्तु। स्मृतितः श्रुतेः प्राबल्यात् श्रौतोऽर्थ एव समादरणीय इत्यस्माकं भाति। तथा च कुमारिलभट्टपादा अपि "**न हि प्रमादपाठत्वं शक्यं कल्पयितुं श्रुतेः। दुश्श्रुतस्वप्नविज्ञानमूला त्वापद्यते स्मृतिः**" इति तन्त्रवार्तिके (१।३।३, आनन्दाश्रमसंस्करणे, पृ.९९) वदन्त्येव।

हिन्दी– देवगण क्रुष्ट स्वर से जीवनयात्रा चलाते हैं, मनुष्य प्रथम स्वर से जीवनयात्रा चलाते हैं, सभी पशुगण द्वितीय स्वर से जीवनयात्रा चलाते हैं, गन्धर्व और अप्सरा लोग द्वितीय स्वर के बाद आने वाले तृतीय स्वर से जीवनयात्रा चलाते हैं, अण्डज प्राणी और पितर चतुर्थ स्वर से जीवनयात्रा चलाने वाले हैं, पिशाच असुर और राक्षस मन्द्र स्वर को उपजीव्य बनाते हैं, स्थावर और जङ्गम सम्पूर्ण जगत् अतिस्वार नाम के नीचे स्वर से जीवनयात्रा चलाता है। इस प्रकार सभी प्राणी सामस्वरों से पालित होते हैं॥६-८॥

दीप्ता-ऽऽयता-करुणानां मृदु-मध्यमयोस् तथा।
श्रुतीनां योऽविशेषज्ञो न स आचार्य उच्यते॥९॥

अन्वयः– यः दीप्ता-ऽऽयता-करुणानाम् तथा मृदु-मध्यमयोः (इति) श्रुतीनाम् अविशेषज्ञः सः आचार्यः न उच्यते।

शब्दार्थः– यः=आकाङ्क्षा-बुद्धिविशेष-विषयो जनः, दीप्ता-ऽऽयता-करुणानाम्=दीप्ताख्यायाः आयताख्यायाः करुणाख्यायाः, तथा=तेनैव प्रकारेण, मृदु-मध्यमयोः=मृदोः मध्यमायाश्च, (इति=एतासाम्), श्रुतीनाम्=स्वरघटकध्वनिविशेषाणाम्, अविशेषज्ञः, भेदस्य=अज्ञाता, सः=आकाङ्क्षापूरणबुद्धिविषयो जनः, आचार्यः=आचार्यशब्दवाच्यः, न उच्यते=न कथ्यते।

सरलार्थः– यः पुरुषो दीप्ता आयता करुणा मृदुः मध्यमा चेति एतासां श्रुतीनां वैशिष्ट्यानाम् अज्ञाताऽस्ति, स पुरुषः सामवेदस्याऽऽचार्य इति न कथ्यते।

विशेषः– स्वरघटकश्रुतीनां सामान्यस्य लक्षणस्य प्रतिपादनं पूर्वमेव व्याख्यायाम् (१।२।२) "**प्रथमश्रवणाच् शब्दः**" इत्यादिना कृतमस्ति।

हिन्दी– जौन पुरुष दीप्ता आयता करुणा मृदु मध्या इन श्रुतियों का विशेषज्ञ नहीं है वह सामवेद का आचार्य नहीं कहा जा सकता है॥९॥

दीप्ता मन्द्रे द्वितीये च प्र चतुर्थे तथैव तु।
अतिस्वारे तृतीये च क्रुष्टे तु करुणा श्रुतिः॥१०॥

अन्वयः– मन्द्रे द्वितीये च प्र चतुर्थे तथा एव तु अतिस्वारे तृतीये च दीप्ता (श्रुतिः भवति), क्रुष्टे तु करुणा श्रुतिः (भवति)।

शब्दार्थः– मन्द्रे मन्द्राख्ये षष्ठे सामस्वरे, द्वितीये=द्वितीयाख्ये स्वरे, च=अपि, प्र=प्रथमे स्वरे, चतुर्थे=चतुर्थाख्ये स्वरे, तथा=तेनैव प्रकारेण, एव= हि, तु=च, अतिस्वारे=अतिस्वार्याख्ये अन्त्ये सामस्वरे, तृतीये=तृतीयाख्ये स्वरे, च=अपि, दीप्ता=दीप्ताख्या, (श्रुतिः=ध्वनिविशेषः, भवति=अवतिष्ठते), क्रुष्टे= क्रुष्टाख्ये आद्ये सामस्वरे, तु=हि, करुणा= करुणाख्या, श्रुतिः=ध्वनिविशेषः, (भवति=अवतिष्ठते)।

सरलार्थः– मन्द्रे द्वितीये प्रथमे चतुर्थे अतिस्वारे तृतीये च स्वरे दीप्ता श्रुतिर् भवति, क्रुष्टे स्वरे तु करुणा श्रुतिर् भवति।

विशेषः– अत्र प्र-शब्दः प्रथमे इत्यर्थे प्रयुक्तोऽवगम्यते। विलक्षणोऽयं प्रयोगः। शोभाकरस्तु "**प्रथमस्य मृदुभूता (श्रुतिः)**" इत्याह। स केन प्रमाणेन तथा वदतीति विचार्यं सुधीभिः।

हिन्दी– मन्द्र, द्वितीय, प्रथम, चतुर्थ, अतिस्वार और तृतीय स्वरों में दीप्ता श्रुति होती है, क्रुष्ट स्वर में तो करुणा श्रुति होती है॥१०॥

श्रुतयोऽन्या द्वितीयस्य मृदु-मध्या-ऽऽयताः स्मृताः।
तासामपि तु वक्ष्यामि लक्षणानि पृथक्पृथक्॥११॥

अन्वयः– द्वितीयस्य अन्याः श्रुतयः मृदु-मध्या-ऽऽयताः स्मृताः (सन्ति)। तासाम् अपि तु पृथक्पृथक् लक्षणानि वक्ष्यामि।

शब्दार्थः– द्वितीयस्य=द्वितीयाख्यस्य स्वरस्य, अन्याः=दीप्ताभिन्ना उपाधिकृताः, श्रुतयः=ध्वनिविशेषाः, मृदु-मध्या-ऽऽयताः=मृदुः मध्या आयता

चेति तिस्रः श्रुतयः, स्मृताः=स्मरणविषयं प्राप्ताः (सन्ति=वर्तन्ते)। तासाम्=पूर्वोक्तानां श्रुतीनाम्, अपि=च, तु=हि, पृथक्पृथक्=भिन्न-भिन्नरूपेण, लक्षणानि=स्वरूपाणि, वक्ष्यामि=कथयिष्यामि।

सरलार्थः– द्वितीयाख्यस्य स्वरस्य उपाधिकृता अन्या श्रुतयः खलु मृदुः मध्या आयता चेति तिस्रः स्मृताः सन्ति। तासामपि पृथक्पृथक् लक्षणानि कथयिष्यामि।

हिन्दी– द्वितीयनामक स्वर की उपाधिकृत अन्य मृदु मध्या और आयता श्रुतियाँ स्मृत हैं। उन का भी पृथक्-पृथक् लक्षण बताउँगा॥११॥

आयतात्वं भवेन् नीचे मृदुत्वं तु विपर्यये।
स्वे स्वरे मध्यमत्वं तु तत् समीक्ष्य प्रयोजयेत्॥१२॥

अन्वयः– नीचे (द्वितीयश्रुतेः) आयतात्वम् भवेत्, विपर्यये तु (द्वितीयश्रुतेः) मृदुत्वम् (भवेत्), स्वे स्वरे तु (द्वितीयश्रुतेः) मध्यमत्वम् (भवेत्)। तत् समीक्ष्य (द्वितीयस्वरम्) प्रयोजयेत्।

शब्दार्थः– नीचे=नीचस्वरे परे, (द्वितीयश्रुतेः=द्वितीयाख्यस्वरश्रुतेः), आयतात्वम्=आयताजातीयत्वम्, भवेत्=स्यात्, विपर्यये=तद्विपरीते स्वरे परे, तु=हि, (द्वितीयश्रुतेः=द्वितीयाख्यस्वरश्रुतेः), मृदुत्वम्=मृदुजातीयत्वम्, (भवेत्=स्यात्), स्वे=स्वजातीये, स्वरे=नादविशेषे परे, तु=हि, (द्वितीयश्रुतेः=द्वितीयाख्यस्वरश्रुतेः), मध्यमत्वम्=मध्यमाजातीयश्रुतित्वम्, (भवेत्=स्यात्)। तत्=तादृशं वस्तुस्वरूपम्, समीक्ष्य=सम्यग् दृष्ट्वा, (द्वितीयस्वरम्=द्वितीयाख्यं सामस्वरम्), प्रयोजयेत्=उच्चारयेत्।

सरलार्थः– नीचे स्वरे परे सति द्वितीयाख्यस्वरश्रुतेः आयतात्वं भवेत्, तद्विपरीते स्वरे परे तु द्वितीयाख्यस्वरश्रुतेर् मृदुत्वं भवेत्, स्वजातीये स्वरे परे तु द्वितीयाख्यस्वरश्रुतेर् मध्यमत्वं भवेत्। तद् वस्तुस्वरूपं विचार्य द्वितीयाख्यस्वरम् उच्चारयेत्।

हिन्दी– नीच स्वर उत्तरस्थान में रहने पर द्वितीयस्वर की श्रुति का आयतात्व होगा, उस के विपरीत स्वर उत्तरस्थान में होने पर द्वितीय स्वर की श्रुति का मृदुत्व होगा,

स्वजातीय स्वर उत्तरस्थान में होने पर द्वितीय स्वर की श्रुति का मध्यमत्व होगा। उस वस्तु-स्थिति को भलीभाँति समझकर सामगान का गायक द्वितीय स्वर का उच्चारण करे॥१२॥

द्वितीये विरता या तु क्रुष्टस्य परतो भवेत्।
दीप्तां तां तु विजानीयात् प्रथमेन मृदुः स्मृता॥१३॥
अत्रैव विरता या तु चतुर्थेन प्रवर्तते।
तथा मन्द्रे भवेद् दीप्ता साम्नश् चैव समापने॥१४॥

अन्वयः– या तु द्वितीये विरता क्रुष्टस्य परतः भवेत् ताम् तु दीप्ताम् विजानीयात्, प्रथमेन (युता द्वितीयश्रुतिः तु) मृदुः स्मृता (अस्ति)। या तु (श्रुतिः) अत्र एव विरता चतुर्थेन प्रवर्तते, (सा) तथा (स्मृता)। मन्द्रे साम्नः एव समापने च दीप्ता (श्रुतिः) भवेत्।

शब्दार्थः– या=आकाङ्क्षाबुद्धिविशेषविषयभूता श्रुतिः, तु=हि, द्वितीये=द्वितीयस्वरे, विरता=विश्रान्ता, क्रुष्टस्य=क्रुष्टाख्यस्वरस्य, परतः=परत्र, भवेत्=स्यात्, ताम्=आकाङ्क्षापूरणबुद्धिविषयभूतां श्रुतिम्, दीप्ताम्=दीप्तजातीयां श्रुतिम्, विजानीयात्=विद्यात्, प्रथमेन=प्रथमाख्येन स्वरेण, (युता=सहिता, द्वितीयश्रुतिः=द्वितीयाख्यस्वरश्रुतिः, तु=हि), मृदुः=मृदुजातीया, स्मृता=स्मरण-विषयं गता, (अस्ति=वर्तते)। या=आकाङ्क्षाबुद्धिविशेषविषयभूता, तु=हि, (श्रुतिः=ध्वनिविशेषः), अत्र=एतस्मिन्, एव=हि, विरता=विश्रान्ता, चतुर्थेन=चतुर्थाख्येन स्वरेण, प्रवर्तते=प्रचलति, (सा=आकाङ्क्षापूरणबुद्धिविषयभूता श्रुतिः), तथा=पूर्वोक्तरूपा मृदुः, (स्मृता=स्मरणविषयं गता)। मन्द्रे=मन्द्रस्वरे, साम्नः=गीतेः, एव=हि, समापने=समाप्तौ, च=हि, दीप्ता=दीप्तजातीया, (श्रुतिः=ध्वनिविशेषः), भवेत्=स्यात्।

सरलार्थः– या श्रुतिः द्वितीये स्वरे विश्रान्ता क्रुष्टस्य स्वरस्य परतो भवेत् तां द्वितीयस्वरश्रुतिं दीप्तां विद्यात्, प्रथमाख्येन स्वरेण युता द्वितीयाख्य-स्वरश्रुतिस् तु मृदुः स्मृताऽस्ति। या तु श्रुतिः एतस्मिन्नेव द्वितीये विश्रान्ता चतुर्थेन स्वरेण प्रवर्तते सा तु श्रुतिर् मृदुः स्मृता। मन्द्रे स्वरे साम्नः समापने च दीप्ता श्रुतिर् भवेत्।

हिन्दी– जौन श्रुति द्वितीयनामक स्वर में विश्रान्त और क्रुष्ट के परे होगी उस द्वितीयस्वर की श्रुति को दीप्ता जाने, प्रथमनामक स्वर से युक्त द्वितीयनामक स्वर की श्रुति तो मृदु स्मृत है। जौन श्रुति इसी द्वितीय स्वर में विश्रान्त है और चतुर्थ स्वर से चलती है वह श्रुति मृदु स्मृत है। मन्द्र स्वर में और साम की समाप्ति में दीप्ता श्रुति होती है॥१३,१४॥

नाऽविरते श्रुतिं कुर्यात् स्वरयोर् नाऽपि चाऽन्तरे।
न च ह्रस्वे च दीर्घे च न चाऽपि घुटसञ्ज्ञके॥१५॥

अन्वयः– अविरते श्रुतिम् न कुर्यात्, स्वरयोः अन्तरे च अपि न (श्रुतिम् कुर्यात्), ह्रस्वे च दीर्घे च न च (श्रुतिम् कुर्यात्), घुटसञ्ज्ञके च अपि न (श्रुतिम् कुर्यात्)।

शब्दार्थः– अविरते=अविश्रान्ते, श्रुतिम्=ध्वनिविशेषम्, न कुर्यात्=नोच्चारयेत्; स्वरयोः=नादविशेषयोः, अन्तरे=मध्ये, च=अपि, अपि=च, न=नहि, (श्रुतिम्=ध्वनिविशेषम्, कुर्यात्=उच्चारयेत्); ह्रस्वे=मात्रिके स्वरे, च=अपि, दीर्घे=द्विमात्रे स्वरे, च=अपि, न=नहि, अपि=च, (श्रुतिम्=ध्वनिविशेषम्, कुर्यात्=उच्चारयेत्); घुटसञ्ज्ञके=घुटसञ्ज्ञया व्यवह्रियमाणे स्थले, च=अपि, अपि=च, न=नहि, (श्रुतिम्=ध्वनिविशेषम्, कुर्यात्=उच्चारयेत्)।

सरलार्थः– अविरते श्रुतिं न कुर्यात्, द्वयोः स्वरयोर् मध्ये च श्रुतिं न कुर्यात्, ह्रस्वे स्वरे दीर्घे स्वरे च श्रुतिं न कुर्यात्, घुटसञ्ज्ञके स्थले च श्रुतिं न कुर्यात्।

हिन्दी– अविरत स्वर में दीप्तादि श्रुति न करे, दो स्वरों के बीच में भी दीप्तादि श्रुति न करे, ह्रस्व स्वर में और दीर्घ स्वर में भी दीप्तादि श्रुति न करे, घुटनामक स्थल में भी दीप्तादि श्रुति न करे॥१५॥

द्विविधा गतिः पदान्तः स्थितसन्धिः सहोष्मभिः।
पञ्चस्वेतेषु स्थानेषु विज्ञेयं घुटसञ्ज्ञितम्॥१६॥

अन्वयः– द्विविधा गतिः ऊष्मभिः सह पदान्तः स्थितसन्धिः (इति) एतेषु पञ्चसु स्थानेषु घुटसञ्ज्ञितम् विज्ञेयम्।

शब्दार्थः– द्विविधा=द्विप्रकारा, गतिः=तालव्यस्य इकारस्य आइभावः आउभावश्चेति गतिः, ऊष्मभिः=श-ष-स इत्येतैस् त्रिभिः ऊष्मसञ्ज्ञकैः वर्णैः, सह=साकम्, पदान्तः=पदान्ते वर्तमानः, स्थितसन्धिः=स्थितसञ्ज्ञकः सन्धिः च, (इति=एवम् उक्तेषु), एतेषु=निर्दिष्टेषु, पञ्चसु=शरमितेषु, स्थानेषु=स्थलेषु, घुटसञ्ज्ञितम्=घुटसञ्ज्ञायुक्तं स्थलम्, विज्ञेयम्=वेदितव्यम्।

सरलार्थः– इकारस्य द्विविधाः गतिः त्रिभिर् ऊष्मसंज्ञकैः श-ष-स-रूपैर् वर्णैः कृतः पदान्तः स्थितसंज्ञकः सन्धिश् चेति एतेषु पञ्चसु स्थानेषु घुटसंज्ञकं स्थलं विज्ञेयम्।

विशेषः– **"द्विविधा गतिरिगतिरुगतिश्च, कण्ठ्योष्ठ्या कण्ठ्यतालव्या"** इति मात्रालक्षणे (३।१), **"द्विप्रकारा गतिर् भवति, आउ इति कण्ठ्योष्ठ्या, आइ इति कण्ठ्यतालव्या"** इति च तद्विवरणे।

हिन्दी– इकार की आ-इ-भाव और आ-उ-भावरूप दो गतियाँ, श-ष-स-रूप तीन ऊष्म वर्णों से निष्पन्न पदान्त स्थितनामक सन्धि इन पाँच स्थलों में घुट संज्ञा का व्यवहार जानना चाहिए ॥१६॥

स्वरान्तराऽविरतानि ह्रस्व-दीर्घ-घुटानि च।
श्रुतिस्थानेष्वशेषाणि श्रुतिवत् स्वरतो भवेत्॥१७॥

अन्वयः– अशेषाणि स्वरान्तराविरतानि ह्रस्व-दीर्घ-घुटानि च श्रुति-स्थानेषु (भवन्ति, तत्र) स्वरतः श्रुतिवत् भवेत्।

शब्दार्थः– अशेषाणि=निखिलानि, स्वरान्तराविरतानि=अन्यस्मिन् स्वरे अविश्रान्तानि, ह्रस्व-दीर्घ-घुटानि=मात्रिकस्वर-द्विमात्रस्वर-घुटसंज्ञकस्थलानि, च=अपि, श्रुतिस्थानेषु=ध्वनिविशेषस्थलेषु, (भवन्ति=अवतिष्ठन्ते, तत्र=तेषु स्थलेषु), स्वरतः=स्वरेण हेतुना, श्रुतिवत्=श्रुतिसम्पत्तिः, भवेत्=स्यात्।

सरलार्थः– अशेषाणि स्वरान्तरे अविरतानि ह्रस्व-दीर्घ-घुटानि श्रुतिस्थलेषु भवन्ति, तत्र स्वरेणैव श्रुतिचरित्रं सम्पाद्यते।

विशेषः– अस्य श्लोकस्यार्थः शोभाकरेण **"स्वरे स्वरान्तरे च अविरते ह्रस्वे दीर्घे घुटसंज्ञिते च श्रुतिर् न कार्या, स्वर एव श्रुतिसदृशः कार्यः"** इति प्रतिपादितोऽस्ति।

हिन्दी – दूसरे स्वर में अविश्रान्त सभी ह्रस्व दीर्घ और घुट श्रुतिस्थल में आ सकते हैं, उस स्थल में स्वर से ही श्रुति का प्रातिनिध्य होता है, दीप्तादि श्रुति नहीं की जाती है ॥१७॥

दीप्तामुदात्ते जानीयाद् दीप्तां च स्वरिते विदुः।
अनुदात्ते मृदुर् ज्ञेया गान्धर्वाः श्रुतिसम्पदः ॥१८॥

अन्वयः – उदात्ते दीप्ताम् (श्रुतिम्) जानीयात्, स्वरिते च दीप्ताम् (श्रुतिम्) विदुः, अनुदात्ते मृदुः (श्रुतिः) ज्ञेया। (एताः वैदिकस्वरेषु) गान्धर्वाः श्रुतिसम्पदः (ज्ञेयाः)।

शब्दार्थः – उदात्ते=उच्चे स्वरे, दीप्ताम्=दीप्तजातीयाम्, (श्रुतिम्=ध्वनिविशेषम्), जानीयात्=विद्यात्, स्वरिते=उदात्तानुदात्तसमाहाररूपे स्वरे, च=अपि, दीप्ताम्=दीप्तजातीयाम्, (श्रुतिम्=ध्वनिविशेषम्), विदुः=जानन्ति, अनुदात्ते=नीचे स्वरे, मृदुः=मृदुजातीया, (श्रुतिः=ध्वनिविशेषः), ज्ञेया=वेद्या। (एताः=पूर्वनिर्दिष्टाः, वैदिकस्वरेषु=ऋग्वेदादिषु प्रसिद्धेषु उदात्तादिस्वरेषु), गान्धर्वाः=गान्धर्ववेदसम्बद्धाः, श्रुतिसम्पदः=श्रुतिसमावेशाः, (ज्ञेयाः=वेद्याः)।

सरलार्थः – उदात्ते स्वरे दीप्तां श्रुतिं जानीयात्, स्वरिते स्वरे च दीप्तां श्रुतिं विदन्ति, अनुदात्ते मृदुः श्रुतिर् ज्ञेया, एते वैदिकस्वरेषु गान्धर्वश्रुति-समारोपविशेषाः ज्ञेयाः।

हिन्दी – उदात्त स्वर में दीप्ता श्रुति को जाने, स्वरित स्वर में भी दीप्ता श्रुति को ही जानते हैं, अनुदात्त स्वर में मृदु श्रुति जाननी चाहिए। ये वैदिक स्वरों में गान्धर्वश्रुतियों के समीकरण हैं ॥१८॥

उदात्तश् चाऽनुदात्तश् च स्वरित-प्रचिते तथा।
निघातश् चेति विज्ञेयः स्वरभेदस् तु पञ्चधा ॥१९॥

अन्वयः – उदात्तः च अनुदात्तः च तथा स्वरित-प्रचिते निघातः च इति स्वरभेदः तु पञ्चधा विज्ञेयः।

शब्दार्थः – उदात्तः=उच्चः स्वरः, च=अपि, अनुदात्तः=नीचः स्वरः, च=अपि, तथा=तेनैव प्रकारेण, स्वरित-प्रचिते=उदात्तानुदात्तसमाहारस्वर-

प्रचयस्वरौ, निघातः=सन्नतरः स्वरः, च=अपि, इति=एतेन प्रकारेण, स्वरभेदः= उदात्तादीनां स्वराणां भेदः, पञ्चधा=पञ्चप्रकारः विज्ञेयः=वेदितव्यः।

सरलार्थः– उदात्तः अनुदात्तः स्वरितः प्रचयः सन्नतर इति स्वरभेदः पञ्चप्रकारो विज्ञेयः।

विशेषः– वैदिकस्वर-प्रकाराणां विषये विशेषं ज्ञातुमिच्छुकैः कौण्डिन्न्यायनशिंक्षायास् तृतीये स्वराध्याये स्वरभेद-निरूपण-प्रकरणम् (श्लो. २,३; पृ. ३१४-३१५) द्रष्टव्यम्।

हिन्दी– उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, प्रचय और सन्नतर इस प्रकार से उदात्तादि स्वरों का भेद पाँच प्रकार का समझना चाहिए ॥१९॥

॥ इति प्रथमे प्रपाठके सप्तमी कण्डिका॥

अथ प्रथमे प्रपाठके अष्टमी कण्डिका

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि आर्चिकस्य स्वरत्रयम्।
उदात्तश् चाऽनुदात्तश् च तृतीयः स्वरितः स्वरः॥१॥

अन्वयः– अतः ऊर्ध्वम् आर्चिकस्य स्वरत्रयम् प्रवक्ष्यामि। उदात्तः च अनुदात्तः च तृतीयः स्वरितः स्वरः (इति स्वरत्रयम् अस्ति)।

शब्दार्थः– अतः=अस्मात्, ऊर्ध्वम्=उपरि, आर्चिकस्य=सामवेदस्य ऋग्रूपमन्त्रपाठात्मकस्य भागस्य, स्वरत्रयम्=त्रयाणां स्वराणां समुदायम्, प्रवक्ष्यामि=कथयिष्यामि। उदात्तः=उच्चः स्वरः, च=अपि, अनुदात्तः=नीचः स्वरः, च=अपि, तृतीयः=त्रयाणां पूरकः, स्वरितः=उदात्तानुदात्तसमाहाररूपः, स्वरः=ध्वनिविशेषः, (इति=एतत्प्रकारकम्, स्वरत्रयम्=त्रयाणां स्वराणां कदम्बकम्, अस्ति=वर्तते)।

सरलार्थः– अतः परं सामवेदस्य ऋग्रूपमन्त्रपाठात्मकस्य भागस्य त्रयाणां स्वराणां समुदायं वक्ष्यामि। उदात्तः स्वरः, अनुदात्तः स्वरः, स्वरितः स्वरः इति आर्चिकस्वरत्रयम् अस्ति।

हिन्दी– इस से ऊपर सामवेद के ऋचारूप मन्त्रों की संहिता के तीन स्वरों के समुदाय को बताऊँगा। उदात्त, अनुदात्त और स्वरित इन स्वरों का समुदाय ही आर्चिक-स्वरत्रय है॥१॥

य एवोदात्त इत्युक्तः स एव स्वरितात् परः।
प्रचयः प्रोच्यते तज्ज्ञैर् न चाऽत्राऽन्यत् स्वरान्तरम्॥२॥

अन्वयः– य एव उदात्त इत्युक्तः (अस्ति) स एव स्वरितात् परः तज्ज्ञैः प्रचयः प्रोच्यते, अत्र अन्यत् स्वरान्तरम् न च (अस्ति)।

शब्दार्थः– यः=आकाङ्क्षाबुद्धि-विशेष-विषयभूतः स्वरः, एव=हि, उदात्तः=उच्चः, इति=एवम्, उक्तः=कथितः, (अस्ति=वर्तते), सः=आकाङ्क्षा-पूरणबुद्धिविषयः स्वरः, एव=हि, स्वरितात्=स्वरिताख्याद् उदात्तानुदात्तसमाहार-रूपात् स्वरात्, परः=उत्तरत्र स्थितः सन्, तज्ज्ञैः=तेषां स्वराणां विज्ञैः, प्रचयः=प्रचयशब्दवाच्यः, प्रोच्यते=कथ्यते; अत्र=इह, अन्यत्=इतरत्, स्वरान्तरम्=भिन्नः स्वरः, न=नैव, च=अपि, (अस्ति=वर्तते)।

सरलार्थः– य एव स्वरः उदात्त इत्युक्तोऽस्ति, स एव स्वरः स्वरितात् परः सन् तद्विशेषज्ञैः प्रचय इत्युच्यते, अत्र अन्यत् स्वरान्तरं नास्ति।

विशेषः– प्रचयस्वरस्वरूपविषये वेदशाखासु विविधानि मतानि सन्ति, तानि ज्ञातुमिच्छुकैः अधोनिर्दिष्टाः कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां तृतीये स्वरनिरूपणा-ऽध्याये (श्लो.३३-३५, पृ.३५९) प्रोक्ताः श्लोकाः व्याख्यासहिता विचारणीयाः–

अनुदात्तोदात्तयत्नाऽऽमिश्रणोच्चारणस् तथा।
उच्चनीचान्तरालस्थस् स्वरो हि प्रचयः स्मृतः॥
स प्रचः प्रचितो वाऽपि निचितो वा धृतोऽपि वा।
एकश्रुतिर् वा तानो वा तथोदात्तमयोऽपि वा॥
एकस्वरो वाऽपि धृतप्रचयो वाऽप्युदात्तकः।
उच्चश्रुतिर् वैकयमो धार्यो वाऽपि प्रकीर्तितः॥ इति।

हिन्दी– जो ही स्वर उदात्त कहा गया है वही स्वर स्वरित से परत्र रहने पर विज्ञों से प्रचय कहा जाता है, यहाँ और कोई दूसरा स्वर नहीं है॥२॥

वर्णस्वारोऽतीतस्वारः स्वरितो द्विविधः स्मृतः।
मात्रिको वर्ण एवं तु दीर्घस् तूच्चरितादनु॥३॥

अन्वयः– स्वरितः वर्णस्वारः अतीतस्वारः (इति) द्विविधः स्मृतः (अस्ति)। एवम् वर्णः तु मात्रिकः (भवति), उच्चरितात् अनु तु दीर्घः (भवति)।

शब्दार्थः– स्वरितः=स्वरिताख्यः उदात्तानुदात्तस्वरसमाहाररूपः स्वरः, वर्णस्वारः=वर्णस्वाराख्यः, अतीतस्वारः=अतीतस्वाराख्यः, (इति=एवं प्रकारेण), द्विविधः=द्विप्रकारः, स्मृतः=स्मरणविषयं नीतः, (अस्ति=वर्तते)। एवम्=एतस्मिन् प्रकारभेदे, वर्णः=वर्णस्वारः, तु=हि, मात्रिकः=मात्रापरिमाणकः, (भवति= अस्ति), उच्चरितात्=उच्चात् स्वरात्, अनु=पश्चाद् आगतः अतीतस्वाराख्यः स्वरितः, तु=हि, दीर्घः=द्विमात्रः, (भवति=अस्ति)।

सरलार्थः– स्वरितः स्वरो वर्णस्वारः अतीतस्वारश्चेति द्विप्रकारः स्मृतोऽस्ति, अत्र प्रकारभेदे वर्णस्वारो मात्रिको भवति, उदात्तोत्तरवर्ती अतीत-स्वारः स्वरितो द्विमात्रो भवति।

विशेषः– एतस्य श्लोकस्य शोभाकरेण विवरणं कृतं न दृश्यते। एतस्य श्लोकस्याऽर्थः परिचिन्तनीयोऽस्ति। अत्र जात्यत्वेन जात्यभिन्नत्वेन च स्वरितस्वराणां द्वौ वर्गौ प्रतिपादितौ प्रतीयेते।

हिन्दी– स्वरित स्वर वर्णस्वार और अतीतस्वार के भेद से दो प्रकार का स्मृत है। इस प्रकार के प्रकारभेद में वर्णस्वार मात्रिक होता है, उदात्तोत्तरवर्ती अतीतस्वार नाम का स्वरित दीर्घ उच्चरित होता है॥३॥

स तु सप्तविधो ज्ञेयः स्वारः प्रत्ययदर्शनात्।
पदेन तु स विज्ञेयो भवेद् यो यत्र यादृशः॥४॥

अन्वयः– स तु स्वारः प्रत्ययदर्शनात् सप्तविधः ज्ञेयः (अस्ति), यो यत्र यादृशः भवेत् स पदेन तु विज्ञेयः (अस्ति)।

शब्दार्थः– सः=पूर्वोक्तो द्विविधोऽपि, तु=हि, स्वारः=स्वरितः, प्रत्यय-दर्शनात्=भेदप्रत्यायकलक्षणविलोकनात्, सप्तविधः=अश्वमितप्रकारकः, ज्ञेयः=वेद्यः, (अस्ति=भवति)। यः=आकाङ्क्षाबुद्धिविशेषविषयभूतः स्वरितस्वरविशेषः, यत्र=यस्मिन् स्थले, यादृशः=यत्प्रकारकः, भवेत्=स्यात्, सः=आकाङ्क्षापूरण-बुद्धिविषयः स्वरितविशेषः, पदेन=पदविशेषेण, तु=हि, विज्ञेयः=विशेषेण ज्ञातव्यः, (अस्ति=वर्तते)।

सरलार्थः– उक्तः स्वरितस्वरो भेदप्रत्यायकलक्षणविलोकनात् सप्त-प्रकारको ज्ञेयोऽस्ति। यः स्वरितविशेषो यस्मिन् स्थले यत्प्रकारको भवेत् स पदगतवैशिष्ट्येन भिन्नरूपेण ज्ञेयोऽस्ति।

हिन्दी– उक्त स्वरित स्वर भेद सूचित करने वाले लक्षणों के देखे जाने से सात प्रकार का ज्ञातव्य है। जौन स्वरितविशेष जिस स्थल में जिस प्रकार का होता है वह पदगत-वैशिष्ट्य से विशिष्ट रूप में ज्ञातव्य होता है॥४॥

सप्त स्वरान् प्रयुञ्जीत दक्षिणं श्रवणं प्रति।
आचार्यैर् विहितं शास्त्रं पुत्त्रशिष्यहितैषिभिः॥५॥

अन्वयः– सप्त स्वरान् दक्षिणं श्रवणं प्रति प्रयुञ्जीत। (एतत्) शास्त्रम् पुत्त्रशिष्यहितैषिभिः आचार्यैः विहितम् (अस्ति)।

शब्दार्थः– सप्त=ऋषिमितसङ्ख्याकान्, स्वरान्=स्वरविशेषान् स्वरितान्, दक्षिणम्=अपसव्यम्, श्रवणम्=श्रोत्रम्, प्रति=प्रत्यासन्नतया, प्रयुञ्जीत=उच्चारयेत्। (एतत्=स्वरितविशेषनिरूपणसम्बद्धम्), शास्त्रम्=अनुशासनम्, पुत्त्रशिष्य-हितैषिभिः=पुत्त्राणां शिष्याणां च हितमिच्छुभिः, आचार्यैः=आचारवद्भिर् गुरुभिर् वेदवेदाङ्गाध्यापकैः, विहितम्=रचितम्, (अस्ति=वर्तते)।

सरलार्थः– सप्त स्वरितान् स्वरान् दक्षिणं श्रवणं प्रति हस्तं नीत्वा उच्चारयेत्। स्वरितस्वरविशेषनिरूपणपरमेतच् शास्त्रं पुत्त्रशिष्यहितैषिभिराचार्यैः कृतमस्ति।

हिन्दी– सात स्वरित स्वरों को दक्षिण कान की ओर हाथ रखकर उच्चरित करे। स्वरित स्वरों का विशेष निरूपण करने वाला यह शास्त्र पुत्रों और शिष्यों का हित चाहने वाले आचार्यों से बनाया गया है ॥५॥

उच्चादुच्चतरं नास्ति नीचान् नीचतरं तथा।
त्रैस्वर्ये स्वारसञ्ज्ञायां किंस्थानः स्वार उच्यते ॥६॥

अन्वयः– उच्चात् उच्चतरम् न अस्ति, नीचात् नीचतरम् तथा, त्रैस्वर्ये स्वारसञ्ज्ञायाम् स्वारः किंस्थानः उच्यते?

शब्दार्थः– उच्चात्=उच्चस्थानात्, उच्चतरम्=उच्चतरस्थानम्, न=नैव, अस्ति=वर्तते, नीचात्=नीचस्थानात्, नीचतरम्=नीचतरस्थानम्, तथा=तेनैव प्रकारेण नास्ति; त्रैस्वर्ये=त्रिषु स्वरेषु मध्ये, स्वारसञ्ज्ञायाम्=स्वार इति आख्यायां सत्याम्, स्वारः=स्वरितस्वरः, किंस्थानः=कस्मिन् स्थाने उच्चारणीयः, उच्यते?=कथ्यते?

सरलार्थः– उच्चात् स्थानाद् उच्चतरं स्थानं नास्ति, नीचात् स्थानाद् नीचतरं स्थानं च नास्ति। एतस्यां स्थितौ त्रिषु स्वरेषु स्वीकृतेषु तत्र स्वार इति वाच्यवैशिष्ट्यमूलिकायाम् आख्यायां च सत्यां स्वारः कस्मिन् स्थाने उच्चारणीय उच्यते?

हिन्दी– उच्च स्थान से और उच्च स्थान नहीं है, नीच स्थान से और नीच स्थान भी नहीं है। इस स्थिति में तीन स्वर माने जाने पर और वाच्यस्वरूपवैशिष्ट्यमूलक स्वारसंज्ञा व्यवहृत भी होने पर प्रश्न उठता है कि स्वार किस स्थान में उच्चारणीय है ॥६॥

उच्चनीचस्य यन् मध्ये साधारणमिति श्रुतिः।
तं स्वारं स्वारसञ्ज्ञायां प्रतिजानन्ति शैक्षिकाः ॥७॥

अन्वयः– उच्चनीचस्य मध्ये यत् साधारणम् इति श्रुतिः शैक्षिकाः स्वारसञ्ज्ञायां तं स्वारं प्रतिजानन्ति।

शब्दार्थः– उच्चनीचस्य=उच्चेन सहितस्य नीचस्य, उच्चनीचयोः, मध्ये=अन्तराले, यत्=आकाङ्क्षाबुद्धिविशेषविषयभूतम्, साधारणम्=उच्चनीचसामान्यम्, इति=एवंरूपा, श्रुतिः=ध्वनिविशेषः, शैक्षिकाः=वेदाङ्गशिक्षाशास्त्रेण चरन्तो विद्वांसः, स्वारसञ्ज्ञायाम्=वाच्यवैशिष्ट्यमूलिकायां स्वार इत्याख्यायां वर्तमानायां सत्याम्, तम्=उच्चनीचमध्यस्थं ध्वनिविशेषम्, स्वारम्=स्वारसञ्ज्ञावाच्यं ध्वनिम्, प्रतिजानन्ति=प्रतिजानते=स्वीकुर्वन्ति।

सरलार्थः– उच्चनीचयोः स्वरयोर् मध्ये यत् साधारणम् इति प्रसिद्धं स्वनितं भवति, वेदाङ्गशिक्षाशास्त्रेण चरन्तो विद्वांसो वाच्यवैशिष्ट्यमूलिकायां स्वारसञ्ज्ञायां व्यवह्रियमाणायां सत्याम् तं स्वनितविशेषं स्वाराख्यं स्वीकुर्वन्ति।

हिन्दी– उच्च और नीच स्वरों के बीच में जो उच्चनीचसाधारण रूप में प्रसिद्ध स्वर होता है वेदाङ्गशिक्षाशास्त्र को हृदय में लेकर चलनेवाले विद्वान् वाच्यवैशिष्ट्यमूलक स्वारसंज्ञा के व्यवहार को देखते हुए उस स्वर को स्वारशब्दवाच्य मानते हैं॥७॥

उदात्ते निषाद-गान्धारावनुदात्त ऋषभ-धैवतौ।
स्वरितप्रभवा ह्येते षड्ज-मध्यम-पञ्चमाः॥८॥

अन्वयः– निषाद-गान्धारौ उदात्ते (स्थितौ ज्ञेयौ), ऋषभ-धैवतौ अनुदात्ते (स्थितौ ज्ञेयौ), एते षड्ज-मध्यम-पञ्चमाः स्वरितप्रभवा हि (ज्ञेयाः)।

शब्दार्थः– निषाद-गान्धारौ=निषादाख्यः सप्तमो गान्धर्वस्वरो गान्धाराख्यस् तृतीयो गान्धर्वस्वरश्च, उदात्ते=उच्चे वैदिकस्वरे, (स्थितौ=अन्तर्भूतौ, ज्ञेयौ=वेद्यौ), ऋषभ-धैवतौ=ऋषभाख्यो द्वितीयो गान्धर्वस्वरः, धैवताख्यः षष्ठो गान्धर्वस्वरश्च, अनुदात्ते=नीचे वैदिकस्वरे, (स्थितौ=अन्तर्भूतौ, ज्ञेयौ=वेद्यौ), एते=निर्दिश्यमानाः, षड्ज-मध्यम-पञ्चमाः=षड्जाख्यः प्रथमो गान्धर्वस्वरः, मध्यमाख्यश्चतुर्थो गान्धर्वस्वरः, पञ्चमाख्यः पञ्चमो गान्धर्वस्वरश्च; स्वरितप्रभवाः=उदात्तानुदात्तसमाहाररूपस्वरविशेषमूलाः, हि=एव, (ज्ञेयाः=वेद्याः)।

सरलार्थः– निषाद-गान्धारौ गान्धर्वस्वरौ उदात्ते वैदिकस्वरे अन्तर्भूतौ ज्ञेयौ, ऋषभ-धैवतौ गान्धर्वस्वरौ अनुदात्ते वैदिकस्वरे अन्तर्भूतौ ज्ञेयौ, एते षड्ज-मध्यम-पञ्चमा गान्धर्वस्वराः उदात्तानुदात्तसमाहाररूपस्वर-विशेषमूलका हि ज्ञेयाः।

हिन्दी– निषाद और गान्धार स्वर उदात्त में अन्तर्भूत होते हैं, ऋषभ और धैवत स्वर अनुदात्त में अन्तर्भूत होते हैं, षड्ज मध्यम और पञ्चम ये स्वर स्वरितमूलक हैं॥८॥

यत्र कखपरा ऊष्मा जिह्वामूलप्रयोजना।
तामथाऽऽज्ञापयेन् मात्रां प्रकृत्यैव तु सा कला॥९॥

अन्वयः– यत्र क-ख-परा ऊष्मा जिह्वामूलप्रयोजना (भवति), अथ ताम् मात्राम् आज्ञापयेत्, कला तु सा प्रकृत्या एव (स्थिता ज्ञेया)।

शब्दार्थः– यत्र=यस्मिन् स्थले, क-ख-परा=परत्र स्थिताभ्यां क-ख-वर्णाभ्यां युता, ऊष्मा=विसर्जनीयः, जिह्वामूलप्रयोजना=जिह्वामूलीयवर्णमूलभूता, (भवति=जायते), अथ=अनन्तरम्, ताम्=ऊष्मश्रुतिम्, मात्राम्=मात्राकालिकाम्, आज्ञापयेत्=कथयेत्, कला=ऊष्मश्रुतिभागरूपा, तु=हि, सा=जिह्वा-मूलीयभावं प्राप्ता ऊष्मश्रुतिः, प्रकृत्या=स्वस्वरूपेण, एव=हि, (स्थिता=वर्त-माना, ज्ञेया=वेद्या)।

सरलार्थः– यस्मिन् स्थले परत्र स्थिताभ्यां कखवर्णाभ्यां युता ऊष्म-श्रुतिः जिह्वामूलीयवर्णहितुभावेनैवाऽवतिष्ठते, न जिह्वामूलीयभावमेव गच्छति, अथ तां श्रुतिं मात्राकालिकां कथयेत्, ऊष्मश्रुतिभागमात्रत्वं प्राप्ता कलारूपा हि सा ऊष्मश्रुतिः स्वस्वरूपेणैव स्थिता ज्ञेया।

विशेषः– विसर्जनीयरूपेणैव स्थित ऊष्मा मात्रिको भवति, जिह्वा-मूलीयभावं प्राप्त ऊष्मा तु कलाप्रमाण एव भवति, ऊष्मत्वं तूभयत्र भवति, जिह्वामूलीयोऽपि अपचितस्वरूप ऊष्मा एवाऽस्ति नाऽत्यन्तं विलक्षणो वर्ण इति

तात्पर्यमस्य श्लोकस्याऽवगम्यते। अत्र जिह्वामूलीयस्य प्रतिपादनमुपध्मानीयस्याऽपि उपलक्षणम् इति शोभाकरः प्रतिपादयति। अत्र जिह्वामूलीयोपध्मानीययोश् चर्चा तयोः पृथक् स्वरयोगं विचार्य कृतेति च भट्टशोभाकरः प्राह।

हिन्दी – जहाँ पर क-ख-वर्ण पर होने पर जिह्वामूलीय का हेतु होने वाला ऊष्मा (विसर्जनीय) होता है, उस ऊष्मा को मात्राकालिक बताए; उस ऊष्मा के अपचय से जिह्वामूलीयत्व में प्राप्त कलारूप जो ऊष्मभागश्रुति है वह अपने ही स्वरूप में स्थित जाननी चाहिए।

विशेष – यहाँ जिह्वामूलीय उपध्मानीय का भी उपलक्षण है, ऐसा भट्टशोभाकर का कथन है। यहाँ जिह्वामूलीय और उपध्मानीय की चर्चा उन पर पृथक् स्वर रहने के तथ्य को ध्यान में रखकर की गई है, यह भी भट्टशोभाकर की व्याख्या है। विसर्जनीय और जिह्वामूलीय में जातिगत भेद नहीं केवल मात्रागत भेद ही है, यह इस श्लोक का तात्पर्य अवगत होता है॥९॥

जात्यः क्षैप्रोऽभिनिहितस् तैरोव्यञ्जन एव च।
तिरोविरामः प्रश्लिष्टः पादवृत्तश् च सप्तमः॥१०॥

सरलार्थः – जात्यः, क्षैप्रः, अभिनिहितः, तैरोव्यञ्जनः, तैरोविरामः, प्रश्लिष्टः, सप्तमः पादवृत्तश् चेति पूर्वसूचिताः (१।८।४) स्वरितस्य सप्त भेदाः सन्ति।

विशेषः – स्वरितभेदानां गणनम्, तेषां वर्गीकरणम्, क्रमनिर्धारणम्, जात्यादीनां स्पष्टानि लक्षणानि, तेषां विषये ऋग्वेदप्रातिशाख्यादिषु प्रातिशाख्येषु शैशिरीयशिक्षादिषु शिक्षासु च प्राप्याणां विषयाणां विवरणं च कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां स्वराध्याये (श्लो.९-२७, पृ.३३१-३५०) द्रष्टव्यानि।

हिन्दी – जात्य, क्षैप्र, अभिनिहित, तैरोव्यञ्जन, तैरोविराम, प्रश्लिष्ट और पादवृत्त ये स्वरित स्वर के पूर्वसूचित (१।८।४) सात भेद हैं॥१०॥

स्वराणामहमेतेषां पृथग् वक्ष्यामि लक्षणम्।
उद्दिष्टानां यथान्यायमुदाहरणमेव च॥११॥

अन्वयः– अहम् उद्दिष्टानाम् एतेषाम् स्वराणाम् यथान्यायम् पृथक् लक्षणम् उदाहरणम् एव च वक्ष्यामि।

शब्दार्थः– अहम्=अस्मि, उद्दिष्टानाम्=नाम्ना कीर्तितानाम्, एतेषाम्= अत्र निर्दिष्टानाम्, स्वराणाम्=सप्तानां स्वरितस्वराणाम्, यथान्यायम्=न्यायानुसारम्, पृथक्=भिन्नम्, लक्षणम्=इतरव्यावृत्तस्वरूपम्, उदाहरणम्=निदर्शनम्, एव=हि, च=अपि, वक्ष्यामि=कथयिष्यामि।

सरलार्थः– अहमुपरि नाम्ना निर्दिष्टानामेतेषां सप्तानां स्वरितस्वराणां यथान्यायं पृथक् लक्षणम् उदाहरणं च कथयिष्यामि।

हिन्दी – मैं ऊपर नामों से निर्दिष्ट इन सात स्वरित स्वरों का न्यायानुसार अलग अलग लक्षण और उदाहरण बताउँगा ॥११॥

॥ इति प्रथमे प्रपाठके अष्टमी कण्डिका॥

इति श्रीगुरुमुखोच्चारणानूच्चारणरूपा-ऽध्ययनसमवाप्त-स्वशाखारूपाऽऽदित्यंब्रह्मसम्प्रदायाऽऽगत-
माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेदशाखा-मन्त्रब्रह्मयज्ञसंहिता-ब्राह्मण-कल्पसूत्रेण
श्रुतिस्मृतिपुराणादि-पारायण-परायणेना-ऽवलोकित-नानाधर्मशास्त्रनिबन्धेन
कौण्डिन्न्यायनाऽऽचार्येण वासिष्ठ-मैत्रावरुण-कौण्डिन्न्येति-त्रिप्रवरेण
भारतवर्षस्थ-हिमवत्खण्डाऽन्तर्गत-गण्डकीप्रदेशाभिजनेन
शिवराजशर्मणा द्विजोत्तमेन कृतायां
शिक्षाविवेचन्याख्यायां नारदीयशिक्षाव्याख्यायां
प्रथमः प्रपाठकः समाप्तः॥

अथ द्वितीयः प्रपाठकः

तत्र प्रथमा कण्डिका

स-यकारं स-वं वाऽपि अक्षरं स्वरितं भवेत्।
न चोदात्तं पुरस् तस्य जात्यः स्वारः स उच्यते॥१॥

अन्वयः– (यत्र) स-यकारम् स-वम् वा अपि अक्षरम् स्वरितम् भवेत्, तस्य पुरः उदात्तं न च (भवेत्), सः स्वारः जात्यः उच्यते।

शब्दार्थः– (यत्र=यस्मिन् स्थले), स-यकारम्=यकारेण सहितम्, स-वम्=वकारेण सहितम्, वा=अथवा, अपि=च, अक्षरम्=सव्यञ्जनः सानुस्वारः शुद्धो वाऽपि स्वरः, स्वरितम्=उदात्तानुदात्तसमाहाररूपस्वरयुतम्, भवेत्=स्यात्, तस्य=पूर्वोक्तस्य स्वरितस्य, पुरः=पूर्वम्, उदात्तम्=उदात्तस्वरयुक्तमक्षरम्, न=नहि, (भवेत्=स्यात्), सः=तादृशः, स्वारः=स्वरितस्वरः, जात्यः=जात्यस्वर-शब्दवाच्यः, उच्यते=कथ्यते।

सरलार्थः– यस्मिन् स्थले यकारेण सहितं वकारेण सहितं वाऽपि अक्षरं स्वरितं भवति, तस्य स्वरितस्य पूर्वतः उदात्तमक्षरं न च भवति, स स्वरितस्वरः जात्य इत्युच्यते।

विशेषः– जात्य-स्वारादीनामुदाहरणानि एतस्या एव कण्डिकाया अष्टम-नवमश्लोकयोः क्रमेण प्रस्तुतानि सन्ति। जात्यस्वरितलक्षणं कौण्डिन्न्यायन-शिक्षायां स्वराध्याये (श्लो.१२, पृ.३३३) स्फुटतरतयोक्तमस्ति। तद् यथा–

अपूर्वो नीचपूर्वो वा संयुक्ताद् यात् परोऽथ वात्।
स्वारः स्वतन्त्रश्च पदे जात्यो नित्योऽपि स स्मृतः॥ इति।

"पुरस् तस्य" इत्यस्य स्थाने **"पुरो यस्य"** इति पाठो बृहन्नारदीयपुराणे (१।५०।३१)।

हिन्दी– जिस स्थल में यकार से युक्त अथवा वकार से युक्त अक्षर स्वरित होता है और उस से पहले उदात्त अक्षर नहीं रहता है, वह स्वरित जात्य कहा जाता है॥१॥

इ-उ-वर्णौ यदोदात्तावापद्येते य-वौ क्वचित्।
अनुदात्ते प्रत्यये तद् विद्यात् क्षैप्रस्य लक्षणम्॥२॥

अन्वयः– यदा क्वचित् उदात्तौ इ-उ-वर्णौ अनुदात्ते प्रत्यये य-वौ आपद्येते तत् क्षैप्रस्य लक्षणम् विद्यात्।

शब्दार्थः– यदा=यस्मिन् काले, क्वचित्=कुत्राऽपि, उदात्तौ=उच्चस्वरौ, इ-उ-वर्णौ=इकारोकारौ, अनुदात्ते=नीचस्वरके स्वरे, प्रत्यये=परे सति, य-वौ=यकार-वकारौ, आपद्येते=सम्पद्येते, तत्=तादृशम्, क्षैप्रस्य=क्षैप्राख्यस्य स्वरितस्वरभेदस्य, लक्षणम्=इतरव्यावृत्तं स्वरूपम्, विद्यात्=जानीयात्।

सरलार्थः– यदा कुत्रचित् उदात्तौ इकारोकारौ नीचस्वरके स्वरे परे सति यकारवकाररूपतां प्राप्तौ भवतः, तत् क्षैप्राख्यस्य स्वरितस्वरभेदस्य लक्षणं जानीयात्।

विशेषः– क्षैप्रस्वरितलक्षणं कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां स्वराध्याये (श्लो.१४, पृ.३३६) स्पष्टतररूपेणोक्तमस्ति। तद् यथा–

नीचे स्वरे परे सर्वात्मनाऽन्तस्थात्मतां गते।
उच्चे स्वरे क्षैप्रसन्धेर् जातः क्षैप्रः स्वरः स्मृतः॥ इति।

हिन्दी– जब कहीं उदात्त इकार और उकार अनुदात्त स्वर परे रहने पर यकार-वकार के रूप में परिणत हो जाते हैं, तब वह क्षैप्र स्वरित का लक्षण जाने॥२॥

ए-ओ आभ्यामुदात्ताभ्यामकारो निहतश्च यः।
अकारं यत्र लुम्पन्ति तमभिनिहितं विदुः॥३॥

अन्वयः– उदात्ताभ्याम् ए ओ आभ्याम् (परः) निहतः च यः अकारः (तम्) अकारम् यत्र लुम्पन्ति तम् अभिनिहितम् विदुः।

शब्दार्थः– उदात्ताभ्याम्=उच्चाभ्याम्, ए ओ आभ्याम्=ए ओ इत्येताभ्यां स्वराभ्याम्, (परः=उत्तरत्र स्थितः), निहतः=अनुदात्तः, च=अपि, यः=आकाङ्क्षाबुद्धिविषयः, अकारः=अवर्णः, (तम्=तादृशम्), अकारम्=अवर्णम्,

यत्र=यस्मिन् स्थले, लुम्पन्ति=अदर्शनं प्रापयन्ति, संहितायां पूर्वस्मिन् एकारे ओकारे वाऽनुप्रवेशयन्ति, तम्=तादृशे स्थले स्थितं स्वरितम्, अभिनिहितम्=अभिनिहिताख्यं स्वरितम्, विदुः=(विज्ञाः) जानन्ति।

सरलार्थः– उदात्ताभ्याम् एकारौकाराभ्यां स्वराभ्यां परत्र स्थितोऽनुदात्तश्च यः अकारो भवति तमकारं यत्र स्थले संहितायां वैदिका लुम्पन्ति तादृशे स्थले स्थितं स्वरितं विद्वांसोऽभिनिहितं वदन्ति।

विशेषः– अभिनिहितलक्षणं कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां स्वराध्याये (श्लो.१३, पृ.३३४) स्फुटतयोक्तमस्ति। तद् यथा–

उच्चादेकारादोकाराद् वा पदान्तस्थितात् परे।
लुप्तेऽकारेऽनुदात्ते यस् स्वारोऽभिनिहितो हि सः॥ इति।

हिन्दी– उदात्त एकार और ओकार से परत्र स्थित और अनुदात्त जौन अकार होता है उस अकार को जिस स्थल में संहितावस्था में वैदिक लुप्त करते हैं, वैसे स्थल में स्थित स्वरित को विद्वान् लोग अभिनिहित मानते हैं॥३॥

उदात्तपूर्वं यत् किञ्चिच् छन्दसि स्वरितं भवेत्।
एष सर्वबहुस्वारस् तैरोव्यञ्जन उच्यते॥४॥

अन्वयः– छन्दसि यत् किञ्चित् उदात्तपूर्वम् स्वरितम् भवेत्, एष सर्वबहुस्वारः तैरोव्यञ्जन उच्यते।

शब्दार्थः– छन्दसि=वेदे, यत् किञ्चित्=यावन्मात्रम्, उदात्तपूर्वम्=पूर्वत्र स्थितेनोच्चेन स्वरेणोपलक्षितम्, स्वरितम्=उदात्तानुदात्तसमाहाररूपस्वर-युतम् अक्षरम्, भवेत्=स्यात्, एषः=एतल्लक्षणकः, सर्वबहुस्वारः=सर्वविधेभ्यो-ऽन्येभ्यः स्वारेभ्यो बहुतरः स्वारः, तैरोव्यञ्जनः=तैरोव्यञ्जनशब्दवाच्यः, उच्यते=कथ्यते।

सरलार्थः– वेदे यावन्मात्रं पूर्वत्र स्थितेनोदात्तेन स्वरेणोपलक्षितं स्वरितमक्षरं भवेत्, एष सर्वविधेभ्योऽन्येभ्यः स्वरितस्वरेभ्यो बहुतरः स्वरित-स्वरो तैरोव्यञ्जन उच्यते।

विशेषः– "जात्यः क्षैप्रोऽभिनिहितः" इत्यादिके (१।८।१०) श्लोके येन क्रमेण स्वरितभेदा उद्दिष्टास् तेनैव क्रमेणाऽत्र स्वरितभेदानां लक्षणानि प्रतिपादितानि। किन्त्वयं क्रमः स्वरितभेदवर्गीकरणदृष्ट्या युक्तियुक्तो न दृश्यते। युक्तियुक्तः क्रमस् तु कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां स्वराध्याये (श्लो.९,१०; पृ.३३१) प्रतिपादितोऽस्ति। तथा हि–

जात्योऽभिनिहितः क्षैप्रः प्रश्लिष्टश् च ततः परः।
तैरोव्यञ्जनसञ्ज्ञश् च तथा तैरोविरामकः॥
पादवृत्तस् ततस् ताथाभाव्योऽष्टौ स्वरिताः स्वराः।
तदुत्पत्त्यादिवैशिष्ट्याद् वैदिकैः परिकीर्तिताः॥ इति।

तदुत्पत्यादिवैशिष्ट्यसूचनं च तत्रैव (श्लो.११, पृ.३३२) कृतम्। यथा–

जात्य आजानिकस् तस्मात् परे स्युः सन्धिजास् त्रयः।
अन्त्याश् चत्वारस् स्वपूर्ववर्त्युदात्तोपरागजाः॥ इति।

हिन्दी – वेद में जो भी स्वपूर्ववर्ती उदात्त स्वर से उपलक्षित स्वरित है, अन्य प्रकार के स्वरितों से बहुतर सङ्ख्या में उपलभ्य वह स्वरित तैरोव्यञ्जन स्वरित कहा जाता है॥४॥

अवग्रहात् परं यत्र स्वरितं स्यादनन्तरम्।
तिरोविरामं तं विद्यादुदात्तो यद्यवग्रहः॥५॥

अन्वयः– यदि अवग्रहः उदात्तः (अस्ति) यत्र (च) अवग्रहात् अनन्तरम् परम् स्वरितम् स्यात् तम् तिरोविरामम् विद्यात्।

शब्दार्थः– यदि=चेत्, अवग्रहः=अवग्रहस्थः स्वरः, उदात्तः=उच्चः, (अस्ति=वर्तते), यत्र=यस्मिन् स्थले, (च=अपि), अवग्रहात्=अवग्रहस्थाद् उदात्तात् स्वरात्, अनन्तरम्=अव्यवहितम्, परम्=उत्तरत्र स्थितम्, स्वरितम्=उदात्तानुदात्त-समाहाररूप-स्वरयुतम् अक्षरम्, स्यात्=भवेत्, तम्=तादृशं स्वरितस्वरम्, तिरोविरामम्=तिरोविरामनामकम्, विद्यात्=जानीयात्।

सरलार्थः– यत्राऽवग्रहस्थः स्वर उदात्तोऽस्ति, अवग्रहादव्यवहितं परमक्षरं च स्वरितमस्ति, तत्र तं स्वरितं तिरोविरामनामकं जानीयात्।

विशेषः– तैरोविरामनामकस्य स्वरितस्य स्फुटतरं लक्षणं च कौण्डिन्न्यायनशिक्षायामुक्तमस्ति (स्वराध्याये, श्लो.१९, पृ.३४२)। तद् यथा–

योऽवग्रहविरामेणोदात्ताद् व्यवहितः परः।
स्वरितः पदपाठेषु स हि तैरोविरामकः॥ इति।

हिन्दी– जहाँ अवग्रहयुक्त स्वर उदात्त है, अवग्रह से अव्यवहित परवर्ती स्वर स्वरित है, वहाँ उस स्वरित स्वर को तैरोविरामनामक स्वरित जाने॥५॥

इकारं यत्र पश्येयुरिकारेणैव संयुतम्।
उदात्तमनुदात्तेन प्रश्लिष्टं तं निबोधत॥६॥

अन्वयः– यत्र उदात्तम् इकारम् अनुदात्तेन इकारेण एव संयुतम् पश्येयुः, तम् (स्वरितस्वरम्) प्रशिलष्टम् निबोधत।

शब्दार्थः– यत्र=यस्मिन् स्थले, उदात्तम्=उच्चम्, इकारम्=इवर्णम्, अनुदात्तेन=नीचेन, इकारेण=इवर्णेन, एव=हि, संयुतम्=संश्लिष्टम्, पश्येयुः= आलोकयेयुः, तम्=तादृशम्, (स्वरितम्=उदात्तानुदात्तसमाहाररूपं स्वरम्), प्रशिलष्टम्=प्रशिलष्टाख्यं स्वरितम्, निबोधत=जानीत।

सरलार्थः– यत्रोदात्तम् इवर्णमनुदात्तेन इवर्णेन संश्लिष्टं पश्येयुः तत्र तं स्वरितं स्वरं प्रशिलष्टनामकं स्वरितं जानीयुः।

विशेषः– प्रशिलष्टस्वरितस्य सर्ववेदशाखाव्यापि युक्ततरं लक्षणं तु कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां स्वराध्याये (श्लो.१६, पृ.३३८) प्रतिपादितमस्ति। तद् यथा–

उच्चे ह्रस्वे इवर्णे वोवर्णे श्लिष्टे क्रमात् परे।
नीचे ह्रस्वे इवर्णे वोवर्णे प्रश्लिष्टकः स्वरः॥ इति।

हिन्दी– जहाँ उदात्त इवर्ण को अनुदात्त इवर्ण से संश्लिष्ट पाए वहाँ उस स्वरित स्वर को प्रश्लिष्टनामक स्वरित स्वर जाने।

विशेष– यद्यपि इकार-प्रश्लिष्ट की तरह ही उकार-प्रश्लिष्ट भी पाया जाता है तथापि इकार-प्रश्लिष्ट शैशिरीय-ऋग्वेदादि प्रायः अन्य सभी वेदशाखाओं में सुलभ है,

उकार-प्रश्लिष्ट तो केवल तैत्तिरीयशाखा में ही पाया जाता है। इसी लिए सामवेद से सम्बद्ध नारदीयशिक्षा में इकार-प्रश्लिष्ट की ही बात की गई है॥६॥

स्वरे चेत् स्वरितं यत्र विवृता यत्र संहिता।
एतत् पादान्तवृत्तस्य लक्षणं शास्त्रचोदितम्॥७॥

अन्वयः– यत्र संहिता विवृता (अस्ति), यत्र स्वरे (सति परम्) स्वरितम् चेत् (अस्ति), एतत् शास्त्रचोदितम् पादान्तवृत्तस्य लक्षणम् (निबोधत)।

शब्दार्थः– यत्र=यस्मिन् स्थले, संहिता=पदान्तपदादिवर्णयोः परः सन्निकर्षः, विवृता=विवृत्तियुक्ता, स्वरद्वयसन्निकर्षवती, (अस्ति=वर्तते), यत्र=यस्मिन् स्थले, स्वरे=पूर्वस्वरे उदात्तरूपे, (सति=वर्तमाने, परम्=उत्तरम् अक्षरम्), स्वरितम्=उदात्तानुदात्तसमाहाररूपस्वरयुतम्, चेत्=यदि, (अस्ति=वर्तते), एतत्=अत्र निर्दिष्टम्, शास्त्रचोदितम्=शास्त्रविहितम्, पादान्तवृत्तस्य=पादान्तवृत्तनामकस्य स्वरितस्य, लक्षणम्=इतरव्यावृत्तस्वरूपम्, (निबोधत=जानीत)।

सरलार्थः– पदान्त-पदादिवर्णयोः परः सन्निकर्षो विवृत्तियुक्तः स्वर-द्वयसन्निकर्षरूपो भवति, पूर्वस्वरे उदात्ते सति विवृत्तेः परमक्षरं स्वरितं च भवति, एतादृशं शास्त्रविहितं पादान्तरवृत्तस्वरितस्य लक्षणं जानीत।

विशेषः– पादान्तवृत्तस्य पादवृत्तापराख्यस्य स्वरितस्य स्फुटतरं लक्षणं तु कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां स्वराध्याये (श्लो. २०, पृ. ३४३) प्रतिपादित-मस्ति। तथा हि–

सविवृत्तेः पदान्तस्थादुच्चाद् यः स्वरितः परः।
स पादवृत्तो वैवृत्तोऽथवा पादान्तवृत्तकः॥ इति।

यद्यपि ताथाभाव्यो नामाऽष्टमोऽपि स्वरितस्वरप्रकारोऽस्ति तथापि स आपस्तम्बादीनामाम्नाये एव वर्तते नाऽन्यत्रेति सोऽत्रोपेक्षितो बोध्यः। अष्टविधा-नामेव स्वरितभेदानां प्रभूतानि तत्तच्छाखागतानि उदाहरणानि कौण्डिन्न्यायन-शिक्षायां सङ्गृहीतानि सन्ति। जिज्ञासुभिस् तानि तत्रैव दृश्यानि (श्लो. ९-२१, पृ. ३३१-३४६)।

हिन्दी– पदान्त और पदादि वर्णों का स्वरद्वयसन्निकर्षरूप संहिता जहाँ होती है, यदि वहाँ विवृत्तियुक्त पूर्व अक्षर उदात्तस्वरक होने पर पर अक्षर स्वरितस्वर वाला होता है तो उस स्वरित को पादान्तवृत्त स्वरित कहते हैं। यह शास्त्रविहित पादान्तवृत्त स्वरित का लक्षण है॥७॥

जात्यः स्वारः सजात्येन श्रुष्ट्यग्ने क्षैप्र उच्यते।
तेऽमन्वताऽभिनिहितस् तैरोव्यञ्जन ऊतये॥८॥
तिरोविरामो विष्कभिते प्राश्लिष्टो हीन्द्र गिर्वणः।
पादवृत्तः क ईं वेद स्वाराः सप्तैवमादयः॥९॥

अन्वयः– सजात्येन (इत्यत्र) स्वारः जात्यः (उच्यते), श्रुष्ट्यग्ने (इत्यत्र स्वारः) क्षैप्रः उच्यते, तेऽमन्वत (इत्यत्र स्वारः) अभिनिहितः (उच्यते), ऊतये (इत्यत्र स्वारः) तैरोव्यञ्जनः (उच्यते), विष्कभिते (इत्यत्र स्वारः) तिरोविरामः (उच्यते), हीन्द्र गिर्वणः (इत्यत्र स्वारः) प्राश्लिष्टः (उच्यते), क ईं वेद (इत्यत्र स्वारः) पादवृत्तः (उच्यते), एवमादयः सप्त स्वाराः (विज्ञेयाः)।

सरलार्थः– सजात्येंन इत्यत्र (कौथुमसामवेदार्चिकसंहितायाम् पूर्वाचिकि अध्या.४, ख.६, म.६) त्ये इत्येतस्मिन्नक्षरे वर्तमानः स्वरितः स्वरः जात्यः स्वार उच्यते, श्रुष्ट्यंग्ने इत्यत्र (कौथुमसाम.पूर्वा.अ.१, ख.११, म.१०) ट्य इत्येतस्मिन्-नक्षरे वर्तमानः स्वरितः स्वरः क्षैप्रः स्वार उच्यते, तेंऽमन्वत इत्यत्र (द्र.- कौथुम-साम.पूर्वा.अ.६, ख.३, म.५) ते इत्येतस्मिन्नक्षरे वर्तमानः स्वरितः स्वरः अभिनिहितः स्वार उच्यते, ऊतयें इत्यत्र (कौथुमसाम.पूर्वा.अ.२, ख.५, म.६) ये इत्येतस्मिन्नक्षरे वर्तमानः स्वरितः स्वरस् तैरोव्यञ्जन उच्यते, विऽस्कंभिते इत्यत्र (कौथुमसाम.पूर्वा.अ.४, ख.३, म.९) पदपाठे अवग्रहात् परे स्क इत्येतस्मिन्नक्षरे वर्तमानः स्वरितः स्वरस् तिरोविरामः स्वार उच्यते, हींन्द्र गिर्वणः इत्यत्र (कौथुमसाम.पूर्वा.अ.४, ख.६, म.८) ही इत्येतस्मिन्नक्षरे वर्तमानः स्वरितः स्वरः प्राश्लिष्टः स्वार उच्यते, क ईं वेद (क ईंवं वेद) इत्यत्र (कौथुम-सास.पूर्वा.अ.३, ख.७,म.५) ईं इत्येतस्मिन्नक्षरे वर्तमानः स्वरितः स्वरः पादवृत्तः स्वार उच्यते, एवम्प्रकाराः सप्त स्वरिता विज्ञेयाः।

विशेषः– अत्र अभिनिहितस्वरोदाहरणे 'ते मन्वत' इति पठितमस्ति। ऋक्तन्त्रवृत्तिकारेणाऽपि "**तोर्धे स्तेम्**" {२।६।८(५८)} इति सूत्रे स्वरितोदाहरणमेतदुक्तमस्ति। किन्तु एतस्मिन् मन्त्रे शैशिरीय-शाकल-ऋग्वेदमन्त्रसंहितापदपाठे (४।१।१६) कौथुमसामवेदार्चिकसंहितापदपाठे च (पूर्वा.अ.६, ख.३, म.५) ते मन्वत इत्येव पाठो दृश्यते, स्वरश्च ते इत्येतस्मिन्नक्षरे उदात्तो दृश्यते, म इत्येतस्मिन्नक्षरे स्वरितो दृश्यते इति च एतद् अभिनिहितस्वारोदाहरणं समञ्जसं नाऽवंगम्यते। यदि कस्यां चिद् अन्यस्यां सामवेदशाखायां ते मन्वत इत्यत्र 'ते अमन्वत' इति पदपाठो भवेत् संहितायां तेमन्वत इत्यवस्थायां नैगिप्रोक्तव्यवस्थानुसारम् {ऋक्तन्त्रे २।६।९(५९)} स्वरश्च ते इत्येतस्मिन्नक्षरे स्वरितो भवेत् तदैव एतदुदाहरणं समञ्जसं स्यात्। एतच्च ऋक्तन्त्रविवृतिकारेण "**अस्माकं पाठः स्वरितः**" (ऋक्तन्त्रे, ऋक्तन्त्रविवृतौ, पृ.९) इति वदता सूचितम्। एतौ द्वौ श्लोकौ शैशिरीय-शाकल-ऋग्वेदशाखासम्बद्धायां शैशिरीयशिक्षायां कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षानुबन्धेषु मुद्रितायाम् (श्लो.११६,११७; पृ.७९७) अपि पठ्येते। किन्तु तत्र "**ते मन्वत**" इत्यस्य स्थाने "**तेऽवर्धन्त**" इति पठ्यते। तेऽवर्धन्त इत्यभिनिहितोदाहरणं शैशिरीय-शाकल-ऋग्वेदमन्त्रसंहितायां (१।८५।७) प्राप्यते च। एतदुदाहरणम् ऋग्वेदप्रातिशाख्यस्य "**एकाक्षरसमावेशे पूर्वयोः स्वरितः स्वरः**" इति सूत्रे (३।३) उव्वटेनाऽपि प्रस्तुतमस्ति। तेऽवर्धन्त इत्यादिको मन्त्रस् तु कौथुमसामवेदसंहितायां न दृश्यते। "**सतोऽरुणप्सुः**" (पूर्वा.अ.२, ख.११, म.६) इत्यत्र तु सन्धिजेऽक्षरे स्वरः उदात्त एव दृश्यते। "**वृधे३ऽस्मान्**" (पूर्वा.अ.३, ख.१, म.७) इत्यत्र तु कम्परूपाऽभिनिहितोदाहरणमुपलभ्यते। उदात्तवान् सन्धिरुदात्त एव भवतीति औदव्रजिमतं च ऋक्तन्त्रे "**न्यायेनौदव्रजिः**" (२।६।१०) इति स्वरसन्ध्युपसंहारसूत्रेण प्रतिपादितमिति ऋक्तन्त्रवृत्तिकार-ऋक्तन्त्रविवृतिकारौ भणतः। सूक्ष्मेक्षिकावता सर्ववेदपारिषदं व्याकरणं कुर्वता भगवता पाणिनिना तु "**स्वरितो वाऽनुदात्ते पदादौ**" (अष्टा.८।२।६) इति सूत्रेण एतादृशेषु सन्धिस्थलेषु सन्धिजेऽक्षरे स्वरः प्रायेण स्वरितो भवति क्वचिदुदात्तोऽपि भवतीति सूचितमस्ति। तत् तु भाष्यकारेण आथर्वणिकेन पतञ्जलिना "**स्वरितग्रहणं शक्यमकर्तुम्**" इति वदता सम्यङ्

नाऽऽकलितमवगम्यते। एतत् सर्वमस्माभिः कौण्डिन्न्यायनशिक्षायाः सन्ताना-ऽध्याये उदात्तादिस्वर-संहितानिरूपण-प्रकरणे (श्लो.६८, पृ.६५६-६५९) विवेचनपूर्वकं प्रतिपादितमस्ति। तत् तत्रैव द्रष्टव्यम्। द्रविडदेशान्तर्गत-मायूरक्षेत्र-निवासिना सामवेदिनाऽपि रामनाथदीक्षितेन सामप्रातिशाख्यसङ्ग्रहे (१९७८क्रै., पृ.१७) नारदशिक्षासङ्ग्रहे **"जात्यस्वारः सजात्येन"** इत्यादिश्लोक-व्याख्याने **"ते मन्वत"** इत्यस्योदाहरणस्याऽपि किमपि विवेचनं न कृतमिति उदाहरणानामाकरस्थलनिर्देशनमपि न कृतमिति आश्चर्यस्थानमेव तत्।

हिन्दी– (१) सजात्येन इस पद में त्ये इस अक्षर में वर्तमान स्वरित जात्य स्वरित कहा जाता है, (२) श्रुष्ट्यग्ने इस स्थल में ट्य इस अक्षर में वर्तमान स्वरित क्षैप्र स्वरित कहा जाता है।, (३) तेऽमन्वत इस स्थल में ते इस अक्षर में वर्तमान स्वरित अभिनिहित स्वरित कहा जाता है, (४) ऊतये इस पद में ये इस अक्षर में वर्तमान स्वरित तैरोव्यञ्जन स्वरित कहा जाता है, (५) विऽस्कभिते इस समस्तपद में अवग्रह से उत्तरवर्ती स्क इस अक्षर में वर्तमान स्वरित तिरोविराम स्वरित कहा जाता है, (६) हीन्द्र गिर्वणः इस स्थल में ही इस अक्षर में वर्तमान स्वरित प्राश्लिष्ट स्वरित कहा जाता है, (७) क ईं वेद (क ईवँ वेद) इस स्थल में ईवँ इस अक्षर में वर्तमान स्वरित पादवृत्त (वा पादान्तवृत्त) स्वरित कहा जाता है। इस प्रकार सात स्वरित विज्ञेय हैं।

विशेष– "तेऽमन्वत" इस उदाहरण के विषय में संस्कृत व्याख्या में विशेष विचार प्रस्तुत हुआ है। इस विषय में कौथुमसामवेदसंहिता के और ऋक्तन्त्रादि लक्षणग्रन्थों के उत्कृष्ट विशेषज्ञ लोग गम्भीरतापूर्वक विचार करें और निर्णय में पहुचें॥८,९॥

उच्चादेकाक्षरात् पूर्वात् स्वर्यते यदिहाक्षरम्।
स्वाराणां जात्यवर्ज्यानामेषा प्रकृतिरुच्यते॥१०॥

अन्वयः– पूर्वात् उच्चात् एकाक्षरात् (परम्) यत् अक्षरम् इह स्वर्यते, जात्यवर्ज्यानाम् स्वाराणाम् एषा प्रकृतिः उच्यते।

शब्दार्थः– पूर्वात्=पूर्ववर्तिनः, उच्चात्=उदात्तात्, एकाक्षरात्=पदे उदात्तत्वेन वर्तमानाद् एकस्माद् सव्यञ्जनात् सानुस्वारात् शुद्धाद् वाऽपि स्वरात्, (परम्=उत्तरवर्ति), यत्=आकाङ्क्षाबुद्धिविशेषविषयभूतम्, अक्षरम्=सव्यञ्जनः सानुस्वारः शुद्धो वाऽपि स्वरः, इह=सामवेदे, स्वर्यते=स्वरित-

रूपेणोच्चार्यते, जात्यवर्ज्यानाम्=जात्यभिन्नानां स्वरितानाम्, एषा=एतर्हि एव निर्दिष्टा, प्रकृतिः=स्वरूपम्, उच्यते=कथ्यते।

सरलार्थः– पूर्वस्मात् उदात्ताद् अक्षरात् परमक्षरं स्वरितं भवति। एतदेव जात्यभिन्नानां स्वरितानां लक्षणमस्ति।

विशेषः– पाणिनिनाऽपि **"अनुदात्तं पदमेकवर्जम्"** (अष्टा.६।१।१५८) इति, **"उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः"** (अष्टा.८।४।६६) इति चोक्तम्। वस्तुतस्तु जात्यभिन्नेषु अपि क्षैप्रा-ऽभिनिहित-प्रश्लिष्टेषु स्वरितेषु एतल् लक्षणं न घटते इति एतस्य श्लोकस्याऽर्थो विद्वद्भिर् विवेचनीयः। एतस्मिन् विषये स्वरितानां क्रमस्य विषये (१।८।१०), स्वरितानां क्रमे तैरोव्यञ्जनस्य स्थानस्य विषये च (२।१।४) पूर्वमेवाऽस्माभिरुक्तं सम्बद्धं कौण्डिन्न्यायनशिक्षाप्रकरणं च सुधीभिर् विचार्यम्।

हिन्दी– पूर्ववर्ती उदात्त अक्षर से परवर्ती अक्षर स्वरित होता है। यही जात्यभिन्न स्वरितों का लक्षण है।

विशेष– यह लक्षण जात्यभिन्न होने पर भी क्षैप्र अभिनिहित और प्रश्लिष्ट स्वरितों में नहीं घटता है। अतः यह लक्षण विचारणीय दिखाई देता है॥१०॥

चत्वारस् त्वादितः स्वाराः कम्पं पुष्यन्ति शास्त्रतः।
उदात्ते वैकनीचे वा जुह्वो३ऽग्ने तत्र दर्शनम्॥११॥

अन्वयः– आदितः चत्वारः तु स्वाराः उदात्ते वा एकनीचे वा (परे) शास्त्रतः कम्पम् पुष्यन्ति, तत्र अग्ने जुह्वः (इति पदम्) दर्शनम् (अस्ति)।

शब्दार्थः– आदितः=आदौ स्थिताः, चत्वारः=वेदमिताः, तु=हि, स्वाराः=स्वरिताः, उदात्ते=उच्चे स्वरे, वा=अथवा, एकनीचे=एकेन भागेन नीचे उदात्ते (=स्वरिते), वा=अथवा, (परे=उत्तरत्र स्थिते), शास्त्रतः=शास्त्रप्रमाणात्, कम्पम्=कम्पाख्यं स्वरविशेषरूपम्, पुष्यन्ति=पुष्णन्ति=भजन्ते; तत्र=तस्मिन् विषये, अग्ने=अग्ने इति पदेन उपलक्षितम्, जुह्वः=जुह्व इति पदम्, दर्शनम्=निदर्शनम्=उदाहरणम्, (अस्ति=वर्तते)।

सरलार्थः– आदौ स्थिताः चत्वारस् तु जात्यादयः स्वरितस्वराः उदात्ते स्वरे वा एकेन पूर्वेण भागेन उदात्ते एकेन उत्तरेण भागेन अनुदात्ते च स्वरिताख्ये स्वरे वा परे सति शास्त्रप्रमाणात् कम्पत्वं प्राप्नुवन्तीति विज्ञायते, तत्र निदर्शनं तु "**अग्ने**" इति पदेन उपलक्षितः "**उप त्वा जुह्वो३ मम**" इत्यादिकायामृचि (कौथुमसाम.उत्तरा.अ.१५, ख.१, तृ.३, म.२) वर्तमाने "**जुह्वः**" इति पदे स्थितः जात्यः स्वरोऽस्ति।

विशेषः– अत्र स्वरितभेदानामुद्देशे "**जात्यः क्षैप्रोऽभिनिहितस् तैरोव्यञ्जन एव च**" इत्यादौ (१।८।१०), तेषां भेदानां लक्षणानां प्रतिपादने च (२।१।१-४) जात्य-क्षैप्रा-ऽभिनिहित-तैरोव्यञ्जनाश् चत्वारः स्वारा आदौ प्रोक्ताः, तेषां मध्ये तैरोव्यञ्जनस्य तु कम्पत्वं न भवतीति अत्र षष्ठस्थाने प्रोक्तस्य प्राश्लिष्टस्य तु कम्पत्वं भवतीति च "**चत्वारस् त्वादितः स्वाराः**" (२।१।११) इति कथनं न सङ्गच्छते। ऋग्वेदप्रातिशाख्ये तृतीयपटलान्ते तु–

जात्योऽभिनिहितश्चैव क्षैप्रः प्रश्लिष्ट एव च।
एते स्वाराः प्रकम्पन्ते यत्रोच्चस्वरितोदयाः॥

इति श्लोको दृश्यते। यद्यप्ययं श्लोक उव्वटेनाऽव्याख्यातत्वादनाकर इव भाति, तथापि शौनकीयचतुरध्यायिकायां तु "**अभिनिहितप्रश्लिष्टजात्यक्षैप्राणामुदात्तस्वरितोदयानामणुमात्रा निघाता, विकम्पितं तत् कवयो वदन्ति**" (३।६५) इति स्फुटं वचनमुपलभ्यत एव। अत्रैव नारदीयशिक्षायामपि यानि उदाहरणानि उत्तरस्यां कण्डिकायां प्रोक्तानि तेभ्य उदाहरणेभ्योऽपि जात्याऽभिनिहित-क्षैप्र-प्रश्लिष्टानामेव कम्पत्वप्राप्तिरिति ज्ञायत एव।

यद्यपि अत्र कम्पस्वरूपस्फुटीकरणाय किमपि नोक्तम्, तथापि सामवेदेनैव सम्बद्धायां लोमशीयशिक्षायां तु कम्पस्वरूपं स्पष्टं चिकीर्षितमस्ति। तथा हि–

केन कम्पातितः कम्पः संयोगो येन कम्पते।
किं वा कम्प इति प्रोक्तो येनाऽसौ कम्प उच्यते॥
पूर्वाङ्गेण हतं पूर्वं पराङ्गेण तु धारितम्।
व्यञ्जनेन द्विधा भिन्नः स्वरो भीतस् तु कम्पते॥

दीर्घकम्पेऽध्यर्धमात्रा तृतीये परिकीर्तिता।
द्वितीये अर्धमात्रा तु प्रयोगो घण्टलालवत्॥ इति (१।३-५)।

शैशिरीय-शौनकीय-शिक्षादिष्वपि कम्पस्वरूपं स्फुटीकृतमस्ति। उपलभ्यानां प्रायः सर्वेषामेव शिक्षाग्रन्थानां वचनानि सङ्गृह्य विविच्य च निष्कर्षरूपेण कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां स्वराध्याये कम्पस्वरनिरूपणप्रकरणे (श्लो. २८-३३, पृ. ३५०) प्रोक्तम्–

तुल्ययोः स्वरयोर् मध्ये स्यादण्व्या मात्रया क्वचित्।
स्वरान्तरं यदुच्चार्यं तं हि कम्पं प्रचक्षते॥
कम्पयोगात् स्वरः कम्पः कम्पितो वा विकम्पितः।
बाह्वृच्ये चाऽऽथर्वणे च ख्यातः सोऽन्यत्र च क्वचित्॥
स्वारो जात्योऽभिनिहितः क्षैप्रः प्रश्लिष्टकोऽपि वा।
उच्चोदयो वा स्वरितोदयोऽपि स्याद् विकम्पितः॥
प्राक् तस्मादनुदात्तः स्यादुदात्तो वा तथापि च।
उक्तेन लक्ष्मणा योगात् सम्भवत्येव कम्पता॥
पूर्वे नीचेऽपेक्ष्य तं च कम्पितत्वं विभाव्यते।
प्रोच्चे तु पूर्वे हेतुस् स न कम्पत्वविभावने॥ इति।

एतेषां श्लोकानामर्थश् च तत्रैव नानाग्रन्थवचन-प्रमाणप्रदर्शनेन स्फुटीकृतोऽस्ति।

हिन्दी – आदि में वर्तमान चार जात्यादि स्वरित उदात्त अथवा स्वरित उत्तरवर्ती होने पर कम्पत्व को प्राप्त करते हैं। यह बात शास्त्र प्रमाण से जानी जाती है। इस में उदाहरण तो "उप त्वा जुह्वो मम" इत्यादि (कौथुमसाम. उत्तरा. अध्याय १५, खण्ड १, तृच ३, मन्त्र २) ऋचा में अग्ने इस पद से उपलक्षित "जुह्वः" इस पद में वर्तमान कम्परूप में प्राप्त जात्य स्वरित है॥११॥

॥ इति द्वितीये प्रपाठके प्रथमा कण्डिका॥

अथ द्वितीये प्रपाठके द्वितीया कण्डिका

इकारान्ते पदे पूर्वे उकारे परतः स्थितेः।
ह्रस्वं कम्पं विजानीयान् मेधावी नाऽत्र संशयः॥१॥

अन्वयः– पूर्वे पदे इकारान्ते (सति) परतः उकारे स्थिते (सति) मेधावी (तम्) कम्पम् ह्रस्वम् विजानीयात्, अत्र संशयः न (अस्ति)।

शब्दार्थः– पूर्वे=प्राक्स्थिते, पदे=सुबन्त-तिङन्तान्यतररूपे शब्दे, इकारान्ते=इवर्णे समाप्ते, (सति=वर्तमाने), परतः=उत्तरत्र, उकारे=उवर्णे, स्थिते=अवतिष्ठमाने, (सति=वर्तमाने), मेधावी=धीमान्, (तम्=तादृशे स्थले वर्तमानम्), कम्पम्=कम्पाख्यं स्वरितं स्वरम्, ह्रस्वम्=मात्राकालम्, विजानीयात्=विद्यात्, अत्र=अस्मिन् विषये, संशयः=सन्देहः, न=नैव, (अस्ति=वर्तते)।

सरलार्थः– पूर्वे पदे इकारान्ते सति उत्तरत्र उकारे वर्तमाने यः स्वरितस्वरविशेषरूपः कम्पस्वरः तं कम्पस्वरं धीमान् ह्रस्वं कम्पं विजानीयात्, अत्र सन्देहो नास्ति।

विशेषः– ह्रस्वकम्पस्योदाहरणं कौथुमसामवेदमन्त्रार्चिकसंहितायां पूर्वार्चिके प्रथमेऽध्याये चतुर्थे खण्डे वर्तमाने "**पाहि नो अग्ने**" इत्यादिके द्वितीये मन्त्रे "**पाह्युऽ३त**" इति वर्तते। यत् तु तत्र श्रीपाद-दामोदर-सातवलेकर-महाशयेन "**पाह्यू३त**" इति मुद्रापितम् ('सामवेद अर्थ व स्पष्टीकरण सहित' इति ग्रन्थे, पृ.६) तत् तु प्रामादिकमेव विज्ञायते। मायूरक्षेत्राभिजनेन रामनाथ-दीक्षितेन तु "**पाह्युऽ३त**" इत्येव मुद्रापितं वर्तते (सामवेदपूर्वार्चिकः पदपाठश्च इति ग्रन्थे, १९७८क्रै., पृ.३)।

हिन्दी– पूर्वपद इकारान्त होने पर और उत्तरस्थान में उकार रहने पर जो स्वरितस्वरविशेषरूप कम्पस्वर होता है उस कम्पस्वर को मेधावी अध्येता ह्रस्व कम्प जाने, इस में सन्देह नहीं है॥१॥

इकारान्ते पदे चैवोकारद्वयपदे परे।
दीर्घं कम्पं विजानीयाच् शग्ध्यूष्विति निदर्शनम्॥२॥

अन्वयः– इकान्ते एव च पदे (पूर्वे सति) परे उकारद्वयपदे (सति तम् कम्पम् मेधावी) दीर्घम् कम्पम् विजानीयात्, (तत्र) शग्ध्यूषु इति निदर्शनम् (अस्ति)।

शब्दार्थः– इकारान्ते=इवर्णे समाप्ते, एव=हि, च=अपि, पदे=सुबन्त-तिङन्तान्यतररूपे शब्दे, (पूर्वे=पूर्ववर्तिनि, सति=वर्तमाने), परे=परवर्तिनि, उकारद्वयपदे=द्विगुणितोकारवति पदे=दीर्घोकारयुते पदे, (सति=वर्तमाने, तम्=तादृशे स्थले वर्तमानम्, कम्पम्=कम्पाख्यं स्वरितं स्वरम्, मेधावी=धीमान्), दीर्घम्=द्विमात्रम्, कम्पम्=कम्पस्वरितम्, विजानीयात्=विद्यात्। (तत्र=तस्मिन् विषये), 'शग्ध्यू३षु' इति=कौथुमसामवेदमन्त्रार्चिकसंहितायां पूर्वाचिके तृतीये-ऽध्याये तृतीये खण्डे वर्तमानायां 'शग्ध्यू३षु शचीपते' इत्यादिके प्रथमे मन्त्रे वर्तमानं 'शग्ध्यूऽ३षु' इति, निदर्शनम्=उदाहरणम्, (विजानीयात्=विद्यात्)।

सरलार्थः– इकारान्ते एव च पदे पूर्वे सति परे तु दीर्घोकारवति पदे सति तादृशे स्थले वर्तमानं कम्पस्वरितं मेधावी दीर्घं कम्पस्वरितं विजानीयात्, तत्र 'शग्ध्यूऽ३षु' इति उहारहणं विजानीयात्।

विशेषः– 'शग्ध्यूऽ३षु' इत्यस्य पदपाठे ('सामवेदपूर्वार्चिकः पदपाठश्च' इति ग्रन्थे, १९७८क्रै., पृ.१०४) मायूरक्षेत्राभिजनेन रामनाथदीक्षितेन 'शग्धि-उ-सु' इति पदविभागः प्रदर्शितोऽस्ति, तथात्वे तु पूर्वश्लोकोक्तस्थलादेतच्छ्लोकोक्त-स्थलस्य किं वैशिष्ट्यं स्यादिति विद्वद्भिः परिचिन्तनीयम्। पदपाठे ह्रस्वत्वेऽपि संहितायाम् उ इत्यस्य दीर्घभावादस्योदाहरणस्य पूर्वश्लोकोदाहरणाद् वैशिष्ट्यं स्यात्। एतच्च ऋक्तन्त्रे **"उघोर् घुनि घोषादिः"** {५।३।२(२३७)} इति सूत्रेण प्रतिपादितमेवाऽस्ति।

हिन्दी– पूर्वपद इकारान्त होने पर उत्तर पद दीर्घ उकारवाला होने पर जो कम्पस्वरित होता है उस कम्पस्वरित को मेधावी अध्येता दीर्घ कम्प जाने। इस का 'शग्ध्यूऽ३षु' (कौथुमसाम.पूर्वा.अ.३, ख.३, म.१) उदाहरण जाने॥२॥

त्रयो दीर्घास् तु विज्ञेया ये च सन्ध्यक्षरेषु वै।
समन्या पथ्या इन्द्राभ्या शेषा ह्रस्वाः प्रकीर्तिताः।।३।।

अन्वयः– समन्या पथ्या इन्द्राभ्या (इति) त्रयः, ये सन्ध्यक्षरेषु वै (सन्ति ते) च (कम्पाः) दीर्घाः तु विज्ञेयाः, शेषाः (कम्पाः) ह्रस्वाः प्रकीर्तिताः (सन्ति))।

शब्दार्थः– समन्या=समन्या इति पदे स्थितः, पथ्या=पथ्या इति पदे स्थितः, इन्द्राभ्या=इन्द्राभ्या इति स्थले स्थितः, (इति=एते), त्रयः=अग्निमिताः, ये=आकाङ्क्षाबुद्धिविशेषविषयभूता अन्ये कम्पाः, सन्ध्यक्षरेषु=ए ऐ ओ औ इत्येतेषु स्वरेषु, वै=हि, (सन्ति=वर्तन्ते, ते=आकाङ्क्षापूरणबुद्धिविषयभूताः), च=अपि, (कम्पाः=कम्पस्वरिताः), दीर्घाः=द्विमात्राः, तु=हि, विज्ञेयाः=ज्ञातव्याः, शेषाः=अवशिष्टाः, (कम्पाः=कम्पस्वरिताः), ह्रस्वाः=मात्रिकाः, प्रकीर्तिताः= कथिताः, (सन्ति=वर्तन्ते))।

सरलार्थः– समन्या इति पदे स्थितः, पथ्या इति पदें स्थितः इन्द्राभ्या इत्यत्र स्थितश्चेति त्रयः कम्पाः, एकारादिषु सन्ध्यक्षरेषु स्थिता अन्ये कम्पाश्च दीर्घाः कम्पा विज्ञेयाः, अवशिष्टाः कम्पास् तु ह्रस्वाः कम्पाः प्रकीर्तिताः सन्ति।

विशेषः– "**भद्रा वस्त्रा समन्या३ वसानः**" इति (कौथुमसाम.उत्तरा. अ.१२, ख.३, तृ.२, म.२), **ऋतस्य पथ्या३ अनु**" इति (कौथुमसाम.उत्तरा. अ.१६, ख.१, तृ.२, म.३), "**मा न इन्द्राऽभ्या३ दिशः**" इति (कौथुमसाम.पूर्वा. अ.२, ख.२, म.४) चेति त्रयाणां विशेषत उल्लिखितानां दीर्घकम्पानामुदाहरणानि ज्ञेयानि। सन्ध्यक्षरेषु स्थितानां दीर्घकम्पानामुदाहरणानि च– "**वृधे३ऽस्माँ अवन्तु ते धियः**" इति (कौथुमसाम.पूर्वा.अ.३, ख.१, म.७), "**वरुथ्ये३ वरुणे छन्द्यं वचः**" (कौथुमसाम.पूर्वा.अ.३, ख.३, म.३), "**यददो वात ते गृहे३ऽमृतं निहितं गुहा**" इति (कौथुमसाम.उत्तरा.अ.२०, ख.७, तृ.३, म.३), "**पवमान धिया हितो३ऽभि योनिं कनिक्रदत्**" इति (कौथुमसाम.उत्तरा.अ.५, ख.४, तृ.१, म.३), "**अभिवायुं वीत्यर्षा गृणानो३ऽभि मित्रावरुणा पूयमानः**" इति (कौथुमसाम.उत्तरा.अ.१२, ख.६, तृ.१, म.१), "**दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्यो३ऽ स्माकँ सेना अवतु प्रयुत्सु**" इति (कौथुमसाम.उत्तरा.अ.२१, ख.१, तृ.३, म.१) इत्यादीनि ज्ञेयानि। शेषाः

"न्यइत्रिणम्", "पाह्युइत", "त्वइस्य", "क्वइस्य", "आयत्युइच्छती", "अभ्यृइतस्य", "उर्वइन्तरिक्षम्", "यशस्व्यइस्याः", "स्वइर्नाशुः" इत्यादिषु स्थलेषु वर्तमानाः कम्पाः ह्रस्वाः कम्पा ज्ञेयाः।

हिन्दी– 'समन्या' इस पद में स्थित, 'पथ्या' इस पद में स्थित, 'इन्द्राभ्या' इस स्थल में स्थित तीन कम्पस्वर और एकारादि सन्ध्यक्षर में स्थित अन्य कम्प भी दीर्घ कम्प जानने चाहिए, अवशिष्ट कम्प तो ह्रस्व कम्प कहे गए हैं॥३॥

अनेकानामुदात्तानामनुदात्तः परो यदि।
शिवकं तं विजानीयादुदात्तः प्रत्ययो यदि॥४॥

अन्वयः– यदि अनुदात्तः अनेकानाम् उदात्तानाम् परः (अस्ति), यदि प्रत्ययः उदात्तः (अस्ति) तम् शिवकम् विजानीयात्।

शब्दार्थः– यदि=चेत्, अनुदात्तः=नीचः स्वरः, अनेकानाम्=अनेकेषाम्= द्वित्राणाम्, उदात्तानाम्=उच्चानां स्वराणाम्, परः=उत्तरः, (अस्ति=वर्तते), यदि=चेत्, प्रत्ययः=परस्थः स्वरः, उदात्तः=उच्चः, (अस्ति=वर्तते), तम्=तादृश-मनुदात्तम्, शिवकम्=शिवाख्यम्, विजानीयात्=विद्यात्।

सरलार्थः– यदि अनुदात्तः स्वरः अनेकेषामुदात्तानां स्वराणां परवर्ती वर्तते, ततः पर उदात्तः स्वरश्चाऽस्ति तर्हि तमनुदात्तं शिवकं विद्यात्।

विशेषः– अत्रोदात्तानां मध्ये वर्तमानेनाऽनुदात्तेन केनाऽपि रूपेण कम्पधर्मस्य ग्रहणात् तस्य सर्वथा कम्पत्वस्याऽभावेऽपि विलक्षणत्वात् तस्य कौथुमसामवेदाध्यायिषु शिवकसञ्ज्ञया व्यवहारो भवतीत्युक्तं ज्ञेयम्। शिवक-सञ्ज्ञामूलं तु एतादृशे स्थले अङ्गुलिषु स्वरनिर्देशे मध्यमाया अङ्गुल्याः सूब्जत्वेना-ऽवस्थानात् तर्जन्यनामिकयोः हस्तकुलिं प्रति नमनात् अङ्गुल्यग्राणां त्रिशिखर-कत्वस्य प्राप्त्या त्रिनेत्रकशिवसाधर्म्यस्य प्राप्तिरेवेति भट्टशोभाकरादिव्याख्या-नादवगम्यते। अत्र तमिति परामर्शोऽनुदात्तस्यैवेति शिवकसंज्ञाऽनेकोदात्तमध्य-वर्तिनोऽनुदात्तस्यैवेत्यवगम्यते। अत्र मूलश्लोकपाठे भट्टशोभाकरकृतविवरणपाठे चाप्यव्यवस्थाया दर्शनादर्थो दुर्बोधो जातोऽस्ति। कम्पप्रकरणात् शोभाकरो-ल्लिखितोदाहरणदर्शनाच् चाऽस्मदुक्तोऽर्थः सुसङ्गततरोऽस्तीत्यवगम्यते। अत्र

रामनाथदीक्षितेनाऽऽर्चिकलक्षणसंवादमुक्त्वा योऽन्यथाऽर्थः प्रदर्शितः स त्वनुपपन्न एव, अत्र तत्प्रदर्शिताऽऽर्चिकलक्षणश्लोकार्थसंवादस्य वस्तुतोऽभावात्; आर्चिकलक्षणे अनुदात्तमध्यस्थयोरुदात्तयोर्मध्ये प्रथमस्य उदात्तस्य कोशसंज्ञाया उल्लेखात् अत्र तु उदात्ताभ्यामुदात्तेभ्यो वाऽपि परस्य उदात्तप्रत्ययकस्याऽनुदात्तस्य शिवकसंज्ञायाः प्रतिपादितत्वात्। अत्र भट्टशोभाकरप्रदर्शितम् उदाहरणं च– **"आदित् प्रत्नस्य"** इति {कौथुमसाम.पूर्वा.अ.१, ख.२, म.१० (प्र.१, द.२, म.१०)} द्वाभ्यामुदात्ताभ्यां परस्योदात्तप्रत्ययकस्याऽनुदात्तस्य, अत्र **प्र** इत्यक्षरं तादृशमनुदात्तं ज्ञेयम्; **"गिरा ममाऽऽ जाता"** इति {कौथुमसाम.पूर्वा.अ.१, ख.५, म.८ (प्र.१, द.५, म.८)} इति तु त्रिभ्य उदात्तेभ्यः परस्योदात्तप्रत्ययकस्याऽनुदात्तस्य, अत्र **जा** इत्यक्षरं तादृशमनुदात्तं ज्ञेयम्।

अत्र यद्यपि बृहन्नारदीयपुराणेऽपि (१।५०।१४५) **"शिवकम्पम्"** इत्येव पाठो दृश्यते तथाऽपि तत्राऽपि स्फुटतया भ्रष्टानामनेकेषां पाठानां दृश्यमानत्वात् **"शिवकम्पम्"** इतिपाठोऽनादरणीय एव प्रतीयते।

हिन्दी – यदि अनुदात्त स्वर अनेक उदात्तों से परवर्ती है और उस अनुदात्त से परे भी उदात्त ही आता है तो उस अनुदात्त को शिवक नाम का जाने।

विशेष – अनेक उदात्तों के उच्चारण कर के स्वल्प काल के लिए अनुदात्त के उच्चारण में जाकर फिर शीघ्र उदात्त के उच्चारण करने से यहाँ उच्चारण में कम्पस्वर की जैसी स्थिति आ जाती है। कम्पस्वर के उच्चारण की विशेषता को ठीक प्रकार से समझने से इस स्थिति का कम्पसादृश्य समझा जा सकता है। इसी सादृश्य को लेकर कम्प के साथ में इस शिवक का उल्लेख किया गया मालूम होता है॥४॥

यत्र द्विप्रभृतीनि स्युरुदात्तान्यक्षराणि तु।
नीचं चोच्चं च परतस् तत्रोदात्तं विदुर् बुधाः॥५॥

अन्वयः – यत्र द्विप्रभृतीनि तु अक्षराणि उदात्तानि स्युः, परतः नीचम् च उच्चं च (क्रमेण स्याताम्), तत्र बुधा उदात्तम् विदुः।

शब्दार्थः – यत्र=यस्मिन् स्थलविशेषे, द्विप्रभृतीति=द्व्यादीनि=द्वित्राणि, तु=हि, अक्षराणि=सव्यञ्जनाः सानुस्वाराः शुद्धा वाऽपि अकारादयः स्वराः,

उदात्तानि=उच्चानि, स्युः=भवेयुः, परतः=उत्तरत्र, नीचम्=अनुदात्तमक्षरम्, च=अपि, उच्चम्=उदात्तमक्षरम्, च=अपि, (क्रमेण=यथाक्रमम्, स्याताम्=भवेताम्), तत्र=तस्मिन् स्थले, बुधाः=सुसम्प्रदायविदो वैदिकाः, उदात्तम्=उच्चम्, विदुः=जानन्ति।

सरलार्थः– यस्मिन् स्थलविशेषे द्वित्राणि अक्षराणि उदात्तस्वरकाणि स्युः, ततः परं क्रमेण अनुदात्तमक्षरम् उदात्तमक्षरं च स्यातां तस्मिन् स्थलविशेषे सुसम्प्रदायज्ञा वैदिका विद्वांस उदात्तं जानन्ति।

विशेषः– एतस्मिन् श्लोके अनेकोदात्तपूर्वकस्य उदात्तपरकस्याऽनुदात्तस्य पूर्वोत्तरोदात्तोपरागाधिक्यादुदात्तप्रायत्वं प्रतिपादितं भाति। एतेन शिवकस्याऽनुदात्तस्यैव वैशिष्ट्यं स्फुटीकृतं स्यात्। अन्ये तु अत्र शिवकोदात्तं प्रतिपादितं मन्यन्ते। एतेन श्लोकेन कतमस्योदात्तस्य शिवकोदात्तत्वं केन पदेन सूचितमिति त एव जानीयुः।

हिन्दी– जिस स्थल में दो से लेकर बहुतेरे उदात्त एकत्र हों, फिर अनुदात्त आए और फ़िर उदात्त आए तो उस स्थल में सुसम्प्रदायज्ञ वैदिक विद्वान् उदात्तवत् मानते हैं।

विशेष– उपर्युक्त प्रकार के स्थल में अनेक उदात्तों के मध्य में रहने से पदकाल में स्पष्ट रूप में पूर्णतया अनुदात्त रूप में ही उच्चरित होनेवाले अनुदात्त का भी संहिताकाल में पूर्वोत्तर उदात्तों के उपराग से उदात्तवद्भाव होने की बात इस श्लोक में कही गई मालूम होती है॥५॥

न रेफे वा हकारे वा द्विर्भावो जायते क्वचित्।
न च वर्गद्वितीयेषु न चतुर्थे कदाचन॥६॥

अन्वयः– रेफे वा हकारे वा क्वचित् द्विर्भावः न जायते, वर्गद्वितीयेषु च (क्वचित् द्विर्भावः) न (जायते), चतुर्थे (च) कदाचन (द्विर्भावः) न (जायते)।

शब्दार्थः– रेफे=रवर्णे, वा=अथवा, हकारे=हवर्णे, वा=अथवा, क्वचित्=क्वाऽपि, द्विर्भावः=द्वित्वम्, न=नहि, जायते=भवति; वर्गद्वितीयेषु=कवर्गादीनां व्यञ्जनवर्गाणां द्वितीयेषु खछठथफेषु वर्णेषु, च=अपि, (क्वचित्=क्वाऽपि, द्विर्भावः=द्वित्वम्), न=नैव, (जायते=भवति), चतुर्थे=कवर्गादीनां

व्यञ्जनवर्गाणां चतुर्थे घभढधभेष्वन्यतमे वर्णे, (च=अपि), कदाचन=कदापि, (द्विर्भावः=द्वित्वम्), न=नैव, (जायते=भवति)।

सरलार्थः– रेफे वा हकारे वा कुत्राऽपि द्वित्वं न भवति, व्यञ्जनवर्ण-वर्गद्वितीयेषु खछठथफेषु वर्णेषु च कुत्राऽपि द्वित्वं न भवति, व्यञ्जनवर्णवर्ग-चतुर्थे घभढधभेषु अन्यतमे वर्णे च कदाऽपि द्वित्वं न भवति।

विशेषः– रेफादीनां वर्णानां द्वित्वस्य द्वित्वाभावस्य च विषये कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां सप्तमे सन्तानाध्याये व्यञ्जनद्वित्वनिरूपणप्रकरणे (श्लो.२२९, पृ.७३५; श्लो.२३६-२३८, पृ.७३९-७४१; श्लो.२२३,२२४; पृ.७३२-७३४) सर्ववेदशाखालोकप्रयोगविचारेण विस्तरेण प्रतिपादनं कृतमस्ति, तत् तत्रैव द्रष्टव्यम्।

हिन्दी– रेफ में अथवा हकार में कहीं भी द्वित्व नहीं होता है, व्यञ्जनवर्णों के वर्गों के द्वितीय वर्ण ख-ठ-थ-फ में भी कहीं भी द्वित्व नहीं होता है, व्यञ्जनवर्णों के वर्गों के चतुर्थ वर्ण घ-झ-ढ-ध-भ में भी कहीं भी द्वित्व नहीं होता है॥६॥

चतुर्थं तु तृतीयेन द्वितीयं प्रथमेन तु।
आद्यमन्त्यं च मध्यं च स्वाक्षरेणैव पीडयेत्॥७॥

अन्वयः– चतुर्थम् तु तृतीयेन (पीडयेत्), द्वितीयम् तु प्रथमेन (पीड-येत्), आद्यम् अन्त्यम् च मध्यम् च स्वाक्षरेण एव पीडयेत्।

शब्दार्थः– चतुर्थम्=व्यञ्जनवर्णवर्गेषु तुरीयं घ-झ-ढ-ध-भेषु अन्यतमं वर्णम्, तु=हि, तृतीयेन=व्यञ्जनवर्णवर्गेषु त्रयाणां पूरकेण ग-ज-ड-द-बेषु अन्यतमेन वर्णेन, (पीडयेत्=क्रमयेत्=योधयेत्=योजयेत्), द्वितीयम्=व्यञ्जन-वर्णवर्गेषु द्वयोः पूरकं ख-छ-ठ-थ-फेषु अन्यतमं वर्णम्, तु=हि, प्रथमेन=व्यञ्जन-वर्णवर्गेषु आद्येन क-च-ट-त-पेषु अन्यतमेन वर्णेन (पीडयेत्=क्रमयेत्=योधयेत्= योजयेत्), आद्यम्=व्यञ्जनवर्णवर्गेषु प्रथमं क-च-ट-त-पेषु अन्यतमं वर्णम्, अन्त्यम्=व्यञ्जनवर्गेषु अन्तिमं ङ-ञ-ण-न-मेषु अन्यतमं वर्णम्, च=अपि, मध्यम्=व्यञ्जनवर्णवर्गेषु वर्णानां मध्ये स्थितं ग-ज-ड-द-बेषु अन्यतमं वर्णम्,

च=अपि, स्वाक्षरेण=यथायथं क-च-ट-त-पेषु ङ-ञ-ण-न-मेषु, ग-ज-ड-द-बेषु च अन्यतमेन स्वात्मना वर्णेन, एव=हि, पीडयेत्=क्रमयेत्=योधयेत्=योजयेत्।

सरलार्थः– व्यञ्जनवर्णवर्गेषु चतुर्थं घ-झ-ढ-ध-भेषु अन्यतमं वर्णं हि व्यञ्जनवर्णवर्गेषु तृतीयेन ग-ज-ड-द-बेषु अन्यतमेन वर्णेन योजयेत्, व्यञ्जनवर्णवर्गेषु द्वितीयं ख-छ-ठ-थ-फेषु अन्यतमं वर्णं हि व्यञ्जनवर्णवर्गेषु प्रथमेन क-च-ट-त-पेषु अन्यतमेन वर्णेन योजयेत्, व्यञ्जनवर्णवर्गेषु आद्यं क-च-ट-त-पेषु अन्यतमं वर्णम्, अन्त्यं ङ-ञ-ण-न-मेषु अन्यतमं वर्णम्, मध्यं ग-ज-ड-द-बेषु अन्यतमं वर्णं च क-च-ट-त-पेषु ङ-ञ-ण-न-मेषु ग-ज-ड-द-बेषु चाऽन्यतमेन यथायथं स्वात्मना वर्णेनैव योजयेत्।

विशेषः– व्यञ्जनवर्णद्विर्भावस्य विषये सामवेदेनैव सम्बद्धायां गौतमीयशिक्षायामपि– **"अथ सर्वेषां व्यञ्जनानां द्विर्भावो भवति द्वादशाक्षरवर्जम्"** (१।३) इत्यादि प्रोक्तमस्तीति स्मरणीयम्। वर्गप्रथमादिद्विर्भावोदाहरणानि च **सुक्क्रतुम्, चुच्च्यवत्, ऊत्त्या, विप्प्रासः, सक्ख्ये, वरूत्थ्ये, जिग्ग्युः, परमज्ज्याः, ईड्ड्या, अद्द्या, न्युब्ब्जवीर्यम्, जिग्घ्नसे, दूड्ढ्यम्, अद्ध्वरम्, बिब्भ्रते, युङ्ङ्क्ष्वा, कण्णव, तन्न्वा, सम्म्राजम्** इत्यादीनि कौथुमसामवेदार्चिकसंहितायामागतानि पदानि द्रष्टव्यानि।

हिन्दी – द्विर्भाव के प्रसङ्ग में व्यञ्जन वर्णों के वर्गों में चतुर्थ वर्ण को तृतीय वर्ण से योजित करे, द्वितीय वर्ण को प्रथम वर्ण से, आद्य वर्ण को अन्त्य वर्ण को और मध्य वर्ण को भी उसी उसी वर्ण से योजित करे।।७।।

अनन्त्यश् च भवेत् पूर्वो अन्त्यश् च परतो यदि।
तत्र मध्ये यमस् तिष्ठेत् सवर्णः पूर्ववर्णयोः।।८।।

अन्वयः– यदि अनन्त्यः च पूर्वः भवेत् अन्त्यः च परतः (भवेत्) तत्र मध्ये पूर्ववर्णयोः सवर्णः यमः तिष्ठेत्।

शब्दार्थः– यदि=चेत्, अनन्त्यः=वर्गान्त्यवर्णभिन्नः वर्णः, च=अपि, पूर्वः=पूर्ववर्ती, भवेत्=स्यात्, अन्त्यः=वर्गान्तभवो वर्णः, च=अपि, परतः=

उत्तरत्र, (भवेत्=स्यात्), तत्र=तस्मिन् स्थले, मध्ये=अन्तराले, पूर्ववर्णयोः=पूर्ववर्तिनोर्वर्णयोः, सवर्णः=समानस्थानप्रयत्नः, यमः=यमाख्यो वर्णः, तिष्ठेत्=वर्तेत।

सरलार्थः– यदि वर्गान्त्यवर्णभिन्नः स्पर्शो वर्णः पूर्वत्र भवेत् वर्गान्त्यो वर्णश्च परतो भवेत्, तत्र मध्ये पूर्ववर्णयोः सवर्णो यमाख्यो वर्णविशेषस् तिष्ठेत्।

विशेषः– एतस्मिन् श्लोके यमागमः प्रतिपादितोऽवगम्यते। यमवर्णस्य स्वरूपस्य सङ्ख्यायाश्च विषये बहु वक्तव्यमस्ति। तदत्र ग्रन्थविस्तरभिया वक्तुं न शक्यते। जिज्ञासुभिः कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां द्वितीये वर्णनिरूपणाध्याये यमविवेकप्रकरणं (श्लो. ८३, पृ. २३४-२४६) द्रष्टव्यम्, पाणिनीयशिक्षाया अस्मदीया वेदाङ्गशिक्षाविमर्शाख्या व्याख्या वाऽपि (श्लो. ४,५; पृ. ९,१०) द्रष्टव्या। अत्र **"सवर्णः पूर्ववर्णयोः"** इति कथितत्वात् तु अत्र ध्रुवाख्यो नादविशेष एव यमत्वेनोक्तः प्रतीयते। ध्रुवविवेकश्च कौण्डिन्न्यायनशिक्षायामेव वर्णनिरूपणाध्याये (श्लो. ८२, पृ. २३४) द्रष्टव्यः। **"पूर्वो अन्त्यश्च"** इत्यत्र सन्धिरार्षः।

यमोदाहरणानि च कौथुम-सामवेदाऽर्चिक-संहितायाम्– **अग्ग्ँने, तिग्ग्ँमेन, यज्ज्ँज्ञानाम्, मज्ज्ँमना, प्रत्त्ँनस्स्य, स्तनयित्त्ँनोः, नृषद्द्ँमा, युद्ध्ँम, अप्प्ँनवानवद्** इत्यादिषु पदेषु द्रष्टव्यानि।

हिन्दी– यदि स्पर्शवर्णों में वर्गान्त्यवर्ण से भिन्न कोई वर्ण पूर्व में रहता है और वर्गान्त्यवर्ण उत्तर में रहता है तो उन के बीच में पूर्ववर्ण का सवर्ण यमनामक वर्ण रहता है॥

वर्गान्त्याञ् छषसैः सार्धमन्तस्थैर् वाऽपि संयुतान्।
दृष्ट्वा यमा निवर्तन्ते आदेशिकमिवाऽध्वगाः॥९॥

अन्वयः– श-ष-सैः सार्धम् (स्थितान्) वा अन्तस्थैः संयुतान् अपि वर्गान्त्यान् दृष्ट्वा आदेशिकम् (दृष्ट्वा) अध्वगा इव यमाः निवर्तन्ते।

शब्दार्थः– श-ष-सैः=तालव्यशकार-मूर्धन्यषकार-दन्त्यसकारैः, सार्धम्=सह, (स्थितान्=वर्तमानान्), वा=अथवा, अन्तस्थैः=अन्तस्थसंज्ञकैर् यरलवरूपैर् वर्णैः, संयुतान्=संयुक्तान्, अपि=च, वर्गान्त्यान्=व्यञ्जनवर्णवर्गेषु अन्तिमान् ङ-ञ-ण-न-म-रूपान् वर्णान्, दृष्ट्वा=विलोक्य, आदेशिकम्=फलादेशेन

जीविकां कर्तुं मार्गोपान्ते स्थितं ज्यौतिषिकम्, (दृष्ट्वा=विलोक्य), अध्वगाः= भारिकाः पान्थाः, इव=यथा, यमाः=यमसंज्ञका वर्णाः, निवर्तन्ते=अपगच्छन्ति।

सरलार्थः– श-ष-सैः सह स्थितान् अथवा य-र-ल-वैः संयुक्तानपि वर्गान्त्यान् ङ-ञ-ण-न-मान् वर्णान् दृष्ट्वा फलादेशेन जीविकां कर्तुं मार्गोपान्ते स्थितं ज्यौतिषिकं दृष्ट्वा पान्था इव यमा निवर्तन्ते।

विशेषः– अत्र शषसैः सह स्थितेषु वर्गान्त्येषु यमानां प्राप्तेरेवाऽभावात् मन्दानां भ्रमस्य निवारणाय अप्राप्तानामेव यमानां निषेधः कृतोऽवगम्यते। तत्र शषसैः पञ्चमानां योगस्योदाहरणानि तु कौथुमसामवेदार्चिकसंहितायामागतानि **पृश्नयः, रश्मिभिः, कृष्णः, धृष्णोः, शुष्मात्, दस्स्मम्** इत्यादीनि पदानि द्रष्टव्यानि। अत्र ऋक्तन्त्रस्य "**रात् सण्, रं ह्रात्, ऊष्मा व्यञ्जने**" (५।६।४-६) इति सूत्राणां दर्शनात् श-ष-सानां द्विर्भावो भवतीत्यवगम्यते। अन्तस्थैः संयोगे तु अग्घ्न्यायाः, अग्घ्न्यानाम्, बुद्ध्न्याः दुःष्वप्प्न्यम् इत्यादिषु स्थलेषु यमस्य प्राप्तिरस्ति तथाऽपि एतेन वचनेन निषिध्यते। **धर्म्मणा, चर्म्म, कर्म्मणा, घर्म्मम्, सुपर्ण्णा, ऊर्ण्णुहि, सुपर्ण्ण्यः, रण्णवसन्दृशम्, तन्न्वा, चम्म्वोः** इत्यादिषु कौथुमसामवेदार्चिकसंहितायां स्थितेषु पदेषु पञ्चमानामन्तस्थैः संयोगा दृश्यन्ते, तथापि तेषु यमस्य प्राप्तिरेव नास्ति। तथापि मन्दानां भ्रमस्य निवारणाय तेषु यमस्य निषेधः कृतो भवेत्। अथवा अग्घ्न्याया इत्यादौ प्राप्तमेव यमं निवर्तयितुं एतादृशवचनेन निषेधः कृतः स्यात्।

हिन्दी– श-ष-स के साथ में स्थित अथवा अन्तस्थसंज्ञक य-र-ल-व के साथ में स्थित वर्गों के अन्त्य वर्ण ङ-ञ-ण-न-म को देखकर फलादेश से जीविका करने वाले मार्गप्रान्तस्थित ज्योतिषी को देखकर पान्थ लोगों की भाँति यमवर्ण निवृत्त होते हैं॥९॥

तृतीयश् च चतुर्थश् च चतुर्थादि परं पदम्।
द्वौ तृतीयौ चतुर्थश् च हकारादि परं पदम्॥१०॥

अन्वयः– तृतीयः च चतुर्थः च (यत्र संहितायाम् संयुक्तौ दृश्येते तत्र पदकाले) परम् पदम् चतुर्थादि (ज्ञेयम्), द्वौ तृतीयौ चतुर्थः च (यत्र संहितायाम् संयुक्तौ दृश्येते तत्र पदकाले) परम् पदम् हकारादि (ज्ञेयम्)।

शब्दार्थः– तृतीयः=व्यञ्जनवर्गेषु त्रयाणां पूरणो वर्णः, च=अपि, चतुर्थः=व्यञ्जनवर्गेषु चतुर्णां पूरणो वर्णः, च=अपि, (यत्र=यस्मिन् स्थले, संहितायाम्=सन्निकर्षे, संयुक्तौ=मिलितौ, दृश्येते=विलोक्येते, तत्र=तस्मिन् स्थले, पदकाले=पदपाठसमये), परम्=उत्तरम्, पदम्=सुबन्ततिङन्तान्यतररूपः शब्दः, चतुर्थादि=वर्गचतुर्थ-वर्णेनारब्धम्, (ज्ञेयम्=वेद्यम्)। द्वौ=नेत्रमितौ, तृतीयौ=कवर्गतृतीय-तवर्गतृतीयौ वर्णौ, चतुर्थः=कवर्गचतुर्थस् तवर्गचतुर्थो वा वर्णः, च=अपि, (यत्र संहितायां संयुक्तौ दृश्येते तत्र पदकाले) परम्=उत्तरम्, पदम्=सुबन्ततिङन्तान्यतररूपः शब्दः, हकारादि=हवर्णादि, (ज्ञेयम्=वेद्यम्)।

सरलार्थः– वर्गतृतीयो वर्णो वर्गचतुर्थो वर्णश्च यत्र संहितायां संयुक्तौ दृश्येते तत्र पदपाठे उत्तरं पदं चतुर्थादि भवति, द्वौ कवर्गतृतीयवर्ण-तवर्गतृतीयवर्णौ कवर्गचतुर्थवर्णस् तवर्गचतुर्थवर्णश् च यत्र संहितायां संयुक्तौ दृश्येते तत्र पदपाठे उत्तरं पदं हकारादि भवति।

विशेषः– अत्र परपदस्य चतुर्थादित्वे उदाहरणं कौथुमसामवेदार्चिक-संहितायामागतं **पुरमिद्धृष्णु** इत्यादौ **पुरम् इत्+धृष्णु** इत्येवंरूपं चतुर्थादि पदं ज्ञेयम्। एवमेव **त्रिंशद्धाम** इत्यादावपि ज्ञेयम्। परपदस्य हकारादित्वे उदाहरणं च कौथुमसामवेदसंहितायामागतम् **आजुह्वद्धव्यम् आ जुह्वत्+हव्यम्** इत्येवंरूपं हकारादि पदं ज्ञेयम्। एवमेव **अहमिद्धि, त्वामिद्धि, तद्धर्य, यद्धंसि, विशद्धरिः** इत्यादिष्वपि ज्ञेयम्। अत्र टवर्ग-पवर्ग-तृतीयाभ्यामपि हकारस्य योगे सम्भवति सत्यपि स्वशाखावेदे उदाहरणाभावात् कवर्गतृतीय-तवर्गतृतीययोरेव हकारेण योगमादाय लक्षणं कृतं स्यात्। यत् तु ऋक्तन्त्रवृत्तिकारेण **"तृतीयाद् धश् चतुर्थम्"** (४।४।६) इति सूत्रे **वणिग्घरति** इत्यादीनि लौकिकान्येवोदाहर-णानि प्रस्तुतानि तद् ऋक्तन्त्रस्य सामवेदप्रातिशाख्यत्वस्य अननुरूपाण्येव। **"वाग्घ"** इति रामनाथोक्तमुदाहरणमपि कौथुमसामवेदार्चिकसंहितायां तु न दृश्यते। ब्राह्मणेषु स्थितं स्यात्। एतस्मिन् विषयेऽधिकमस्माभिः कौण्डिन्न्यायन-शिक्षायां सप्तमे सन्तानाध्याये (श्लो.१०६, पृ.६८२; श्लो. २२१, पृ.७३२) प्रतिपादितमस्ति। तत् तत्रैव जिज्ञासुभिर् दृश्यम्।

हिन्दी – वर्गतृतीय तथा वर्गचतुर्थ वर्ण जहाँ संहिता में संयुक्त दिखाई देते हैं वहाँ पदपाठ में उत्तर पद वर्गचतुर्थादि होता है, कवर्गतृतीयवर्ण और तवर्गतृतीयवर्ण जहाँ संहिता में कवर्गचतुर्थवर्ण और तवर्गचतुर्थवर्ण से संयुक्त दिखाई देते हैं वहाँ पदपाठ में उत्तर पद हकारादि होता है।

विशेष – इस विषय में उदाहरण और विशेष विवेचन संस्कृतव्याख्या में देखें॥

अनुस्वारोपध्ममूलानां क्वचित् क्रमते परम्।
रहपूर्वे संयुते चाऽप्युत्तरं क्रमतेऽक्षरम्॥११॥

अन्वयः – अनुस्वारोपध्ममूलानाम् परम् (अक्षरम्) क्वचित् क्रमते। रहपूर्वे संयुते च अपि उत्तरम् अक्षरम् क्रमते।

शब्दार्थः – अनुस्वारोपध्ममूलानाम्=अनुस्वारस्य उपध्मानीयस्य जिह्वामूलीयस्य च, परम्=उत्तरवर्ती, (अक्षरम्=वर्णः), क्वचित्=कुत्र चित् संयोगादौ, क्रमते=द्विर्भावं गच्छति। रहपूर्वे=रेफहकारपूर्वके, संयुते=संयोगे, च=अपि, अपि=च, उत्तरम्=रेफहकारोत्तरवर्ति, अक्षरम्=वर्णः, क्रमते=द्विर्भावं गच्छति।

सरलार्थः – अनुस्वाराद् उपध्मानीयात् जिह्वामूलीयाच् च परं संयोगादौ स्थितं व्यञ्जनमपि क्वचिद् वेदशाखाविशेषे द्विरुच्यते, रेफपूर्वके हकारपूर्वके च संयोगेऽपि रेफहकारोत्तरवर्ति व्यञ्जनं द्विरुच्यते।

विशेषः – अनुस्वारात् परस्य द्विर्भावः ऋग्वेदप्रातिशाख्ये प्रोक्तोऽस्ति। तथा हि– "**स्वरानुस्वारोपहितो द्विरुच्यते संयोगादिः**" (६।१) इति। जिह्वामूलीयोपध्मानीयाभ्यां परस्य द्विर्भावश्च शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्ये प्रतिपादितोऽस्ति। तथा हि– "**जिह्वामूलीयोपध्मानीयाभ्याञ्च**" (४।१०४) इति। रेफहकाराभ्यां परस्य व्यञ्जनस्य द्वित्वं तु प्रातिशाख्येषु सर्वेष्वेवाऽन्वाख्यातं दृश्यते। ऋक्तन्त्रेऽपि– "(प)रं ह्रात्" {५।६।५(२७०)} इत्युक्तमेवाऽस्ति। तथापि "सामलक्षण-श्रौतस्मार्तविचक्षणः धर्मज्ञः विद्यावाचस्पतिः" इति, "ब्राह्मश्रीकः" इति चोक्तोऽपि रामनाथो दीक्षितः "**देवेभिर्मानुषे जने**", "**एह्यूषु ब्रवाणि ते**" इत्यादौ रेफात् हकाराच् च परस्य व्यञ्जनवर्णस्याऽपि कौथुमसामवेदार्चिकसंहितायां पर्वार्चिके (१९७८क्रै., पृ.१) द्वित्वं न प्रदर्शयतीति चित्रमेवैतत्। एतस्मिन्

विषयेऽधिकं जिज्ञासुभिः कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां सप्तमे सन्तानाध्याये व्यञ्जन-द्वित्त्वनिरूपणप्रकरणम् (श्लो. २२५, पृ. ७३४; श्लो. २२९, पृ. ७३५; श्लो. २३६, पृ. ७३९-७४०; श्लो. २३९, पृ. ७४१) पठनीयम्।

हिन्दी – अनुस्वार से उपध्मानीय विसर्ग से और जिह्वामूलीय विसर्ग से भी परत्र वर्तमान संयोगादि व्यञ्जन किसी किसी वेदशाखा में द्विरुक्त होता है। रेफपूर्वक और हकारपूर्वक संयोग में वर्तमान रेफ से और हकार से उत्तरवर्ती व्यञ्जन वर्ण द्विरुक्त होता है।

विशेष – इस विषय का विशेष विचार संस्कृत में देखें।

संयोगे स्वरितं यत्र चोद्घाते पतने यथा।
पूर्वाङ्गमादितः कृत्वा पराङ्गादौ निवेशयेत्॥१२॥

अन्वयः – यत्र संयोगे स्वरितम् (भवति तत्र) उद्घाते पतने च यथा पूर्वाङ्गम् आदितः कृत्वा (स्वरितम्) पराङ्गादौ निवेशयेत्।

शब्दार्थः – यत्र=यस्मिन् स्थले, संयोगे=संयोगवति अक्षरे, स्वरितम्=स्वरितस्वरः, (भवति=वर्तते, तत्र=तस्मिन् स्थले), उद्घाते=उदात्ते, पतने=अनुदात्ते, च=अपि, यथा=इव, पूर्वाङ्गम्=पूर्वस्याऽक्षरस्याङ्गं व्यञ्जनम्, आदितः=आदौ स्वरे, कृत्वा=विधाय, (स्वरितम्=उदात्तानुदात्तसमाहाररूपं स्वरम्) पराङ्गादौ=पराक्षराङ्गभूतव्यञ्जनप्रारम्भे, निवेशयेत्=स्थापयेत्=उच्चारयेत्।

सरलार्थः – यस्मिन् स्थले संयोगवति अक्षरे स्वरितस्वरो भवति तस्मिन् स्थले उदात्ते अनुदात्ते इवैव पूर्वाङ्गं व्यञ्जनमादौ कृत्वा स्वरितं स्वरं परस्वराङ्गव्यञ्जनादौ निवेशयेत्।

हिन्दी – जिस स्थल में संयोगयुक्त अक्षर में स्वरित स्वर होता है, उस स्थल में उदात्त में और अनुदात्त में जैसे ही पूर्व स्वर के अङ्ग अन्तिम व्यञ्जन को प्रारम्भ में लेकर उत्तर स्वर के अङ्ग व्यञ्जन के आदि में स्वरित स्वर को निविष्ट करे॥१२॥

संयोगे यत्र दृश्येत व्यञ्जनं विरते पदे।
पूर्वाङ्गं तद् विजानीयाद् येनाऽऽरम्भस् तत् पराङ्गम्॥१३॥

अन्वयः– संयोगे यत्र विरते पदे व्यञ्जनम् दृश्येत तत् पूर्वाङ्गम् विजानीयात्, येन आरम्भः (भवति) तत् पराङ्गम् (विजानीयात्)।

शब्दार्थः– संयोगे=व्यञ्जनानां सन्निकर्षे, यत्र=यस्मिन् स्थले, विरते पदे=पदस्याऽन्ते, व्यञ्जनम्=स्वरभिन्नो वर्णः, दृश्येत=उपलभ्येत, तत्=तादृशं व्यञ्जनम्, पूर्वाङ्गम्=स्वपूर्ववर्तिस्वराङ्गम्, विजानीयात्=विद्यात्, येन=आकाङ्क्षा-बुद्धिविषयभूतेन व्यञ्जनेन, आरम्भः=पदस्य प्रारम्भः, (भवति=जायते), तत्= आकाङ्क्षापूरणबुद्धिविषयभूतं व्यञ्जनम्, पराङ्गम्=स्वपरवर्तिस्वराङ्गम्, (विजानी-यात्=विद्यात्)।

सरलार्थः– व्यञ्जनानां सन्निकर्षरूपे संयोगे यस्मिन् स्थले पदान्ते व्यञ्जनं दृश्येत तत् स्वपूर्ववर्तिस्वरस्याऽङ्गं विजानीयात्। येन व्यञ्जनेन पदस्य प्रारम्भो भवति तद् व्यञ्जनम् स्वपरवर्तिस्वराङ्गं विजानीयात्।

हिन्दी– संयोग में जिस स्थल में पदान्त में वर्तमान व्यञ्जन है वहाँ वह व्यञ्जन स्वपूर्ववर्ती स्वर का अङ्ग होता है, जिस व्यञ्जन से पद का आरम्भ होता है वह व्यञ्जन स्वपरवर्ती स्वर का अङ्ग होता है॥१३॥

संयोगात् तु परं स्वर्यं परं संयोगनायकम्।
संयुक्तस्य तु वर्णस्य त्वस्वरं पूर्वमक्षरम्॥१४॥

अन्वयः– परम् संयोगनायकम् (अतः) संयोगात् तु परम् स्वर्यम्, संयुक्तस्य वर्णस्य तु पूर्वम् अक्षरम् तु अस्वरम् (कार्यम्)।

शब्दार्थः– परम्=उत्तरवर्ति व्यञ्जनम्, संयोगनायकम्=संयोगे मुख्यम्, (अतः=अस्मात् कारणात्), संयोगात्=अनन्तर-व्यञ्जन-समुदायात्, तु=हि, परम्=उत्तरवर्ति व्यञ्जनम्, स्वर्यम्=उत्तरस्वरयुक्तं कार्यम्, संयुक्तस्य=अनन्तर-व्यञ्जनसमुदाये स्थितस्य, वर्णस्य=व्यञ्जनस्य, तु=हि, पूर्वम्=पूर्ववर्ति, तु=हि अक्षरम्= व्यञ्जनवर्णः, अस्वरम्=उत्तरवर्तिस्वररहितम्, कार्यम्=विधेयम्।

सरलार्थः– परं व्यञ्जनं हि संयोगे मुख्यमुत्तराङ्गं भवति, अस्मात् कारणात् संयोगात् परमेव व्यञ्जनम् उत्तरस्वरयुक्तं कार्यम्, संयुक्तस्य वर्णस्य पूर्वं व्यञ्जनं तु उत्तरस्वररहितमुच्चार्यम्।

विशेषः– एतस्य श्लोकस्य पाठो भ्रष्ट इव प्रतीयते। शोभाकरव्याख्यानं विलोक्य याज्ञवल्क्यशिक्षावचनार्थसंवादं च विचार्य रामनाथदीक्षितानुसृतः पाठ एवाऽस्माभिरपि गृहीतः। एतस्मिन् विषये याज्ञवल्क्यशिक्षाया अधोलिखिताः श्लोका अपि विद्वद्भिः परिचिन्तनीयाः–

नैतत् स्वरितपूर्वाङ्गे नाऽपराङ्गे कथञ्चन।
न स्वरे न च मात्रायां कथं स्वारो विधीयते॥
पराङ्गस्य तु यत् पूर्वं पूर्वाङ्गस्य तु यत् परम्।
उभयोरर्धसंयोगे स्वारङ् कुर्याद् विचक्षणः॥
संयोगे तु परं स्वार्यं परं संयोगनायकम्।
संयुक्तस्य तु वर्णस्य न स्वार्यं पूर्वमक्षरम्॥ इति।

हिन्दी– संयुक्त व्यञ्जन के स्थल में पर व्यञ्जन ही मुख्य रूप में उत्तर अक्षर का अङ्ग होता है, अतः संयोग से उत्तरवर्ती व्यञ्जन को ही उत्तरस्वरयुक्त करना चाहिए, संयुक्तव्यञ्जनों में पूर्वव्यञ्जन को तो उत्तरस्वररहित ही बोलना चाहिए॥१४॥

अनुस्वारः पदान्तश् च क्रमजः प्रत्यये स्वके।
स्वरभक्तिस् तथा रेफः सर्वं पूर्वाङ्गमुच्यते॥१५॥

अन्वयः– अनुस्वारः पदान्तः स्वके प्रयत्ये क्रमजः च तथा स्वरभक्तिः रेफः (इति) सर्वम् पूर्वाङ्गम् उच्यते।

शब्दार्थः– अनुस्वारः=अनुस्वाराख्यो नासिकास्थानो वर्णविशेषः, पदान्तः=पदान्ते वर्तमानो वर्णः, स्वके=स्वे, प्रत्यये=उत्तरवर्तिनि व्यञ्जने सति, क्रमजः=द्विर्भावाज् जातो वर्णः, (इति=एतत्), सर्वम्=निखिलम्, पूर्वाङ्गम्=स्वपूर्ववर्तिनोऽक्षरस्याऽङ्गम्, उच्यते=कथ्यते।

सरलार्थः– अनुस्वाराख्यो नासिकास्थानो वर्णविशेषः, पदान्ते वर्तमानो व्यञ्जनवर्णः, स्ववर्गीये एव वर्णे परे सति द्विर्भावाज् जातो वर्णः, स्वरभक्तिरूपो रेफश्चेति एतत् सर्वं स्वपूर्ववर्तिस्वराङ्गं भवति।

विशेषः– व्यञ्जनेष्वपि उदात्तादिस्वरस्याऽवस्थानात् संयुक्तेषु व्यञ्जनेषु पूर्वस्य स्वरस्य वा परस्य स्वरस्याऽवस्थानं स्यादिति निश्चयाय प्रातिशाख्येषु व्यञ्जनानां पूर्वाङ्गपराङ्गभावचिन्ता कृताऽस्ति। विस्तरेण कृतं तत्विवरणं

कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षायां द्वितीये वर्णनिरूपणाध्याये अक्षरलक्षणाऽक्षरविभजनाऽधिकारे (श्लो.११५-११७, पृ.२९५-३०३) द्रष्टव्यम्। ऋक्तन्त्रेऽपि "**व्यञ्जनं पूर्वस्यान्तस्वरम्**" (२।२।१०) इत्यादिना व्यञ्जनपूर्वाङ्गपराङ्गविचारः कृतोऽस्ति।

हिन्दी– अनुस्वार, पदान्त में वर्तमान व्यञ्जनवर्ण, स्ववर्गीय वर्ण उत्तर स्थान में रहने पर द्विर्भाव से उत्पन्न वर्ण, स्वरभक्तिरूप रेफ ये सब स्वपूर्ववर्ती स्वर के अङ्ग होते हैं॥

पादादौ च पदादौ च संयोगाऽवग्रहेषु च।
यशब्द (जशब्द) इति विज्ञेयो योऽन्यः स य इति स्मृतः॥१६॥

अन्वयः– पादादौ च पदादौ च संयोगाऽवग्रहेषु च यशब्दः (जशब्दः) इति (यकारः) विज्ञेयः, यः अन्यः सः यः इति स्मृतः (अस्ति)।

शब्दार्थः– पादादौ=ऋक्पादस्याऽऽरम्भे, च=अपि, पदादौ=पदस्याऽऽरम्भे, च=अपि, संयोगावग्रहेषु=स्वसंयोगेषु पदविभागाऽवग्रहेषु च, यशब्दः (जशब्दः)= चवर्गीय-तृतीयवर्ण-स्वनः, इति=एवंप्रकारः, (यकारः=अन्तस्थासु आद्यो वर्णः), विज्ञेयः=ज्ञातव्यः, यः=आकाङ्क्षाबुद्धिविषयभूतः, अन्यः=उक्तविधयकारभिन्नः यकारः, सः=आकाङ्क्षापूरणबुद्धिविषयभूतः, यः=प्रथमोऽन्तस्थवर्णः, यः=यकाररूप एव, इति=एवम्, स्मृतः=विज्ञैः स्मृतिविषयं नीतः, (अस्ति=वर्तते)।

सरलार्थः– ऋक्पादस्याऽऽरम्भे वर्तमानः, पदस्याऽऽरम्भे वर्तमानः, स्वसंयोगेषु पदविभागाऽवग्रहेषु च वर्तमानो यकारो ज इत्युच्चार्यो भवति, यस्तु तद्भिन्नो यकारः स यकारस्तु य इत्येवोच्चार्यो भवति।

विशेषः– लोके माध्यन्दिनीयवाजसनेयिनामेव क्वचिद् यकारस्य जकारोच्चारणं भवति नाऽन्येषामिति भ्रमो दृश्यते। शिक्षाग्रन्थानां परिशीलनात् तु अन्येषां शाखायामपि यकारस्य जकारोच्चारणमस्तीति विज्ञायते। एतस्या एव वस्तुस्थितेर् बोधकोऽयं नारदीयशिक्षाश्लोकोऽस्ति। वाजसनेयिनां याज्ञवल्क्यशिक्षायां तु एतादृशं वचनमस्त्येव। अन्यत्राऽपि दृश्यते। तथा हि– ऋग्वेदसम्बद्धायां शैशिरीयशिक्षायां (श्लो.९५), अथर्ववेदसम्बद्धायां माण्डूकीयशिक्षायां {श्लो.८७(८।७)} चैतद् वचनमस्ति। एतस्मिन् विषये विवेचकैरवधानं देयम्। अधिकं कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षायां द्वितीये वर्णनिरूपणाध्याये (श्लो.९६, ९७, पृ.२६६-२७०) द्रष्टव्यम्।

हिन्दी – ऋचा के पाद के आदि में वर्तमान, पद के आदि में वर्तमान, अपने ही संयोग में और अवग्रह से विच्छिन्न परपद के आदि में वर्तमान यकार ज के रूप में उच्चारणीयं होता है, उक्त प्रकार के यकार से भिन्न यकार य के ही रूप में उच्चारणीय होता है॥१६॥

पदादावप्यविच्छेदे संयोगान्ते च तिष्ठताम्।
वर्जयित्वा रहयाणां न जादेशः प्रदृश्यते॥१७॥

अन्वयः – पदादौ अपि अविच्छेदे संयोगान्ते च तिष्ठताम् (यकाराणाम्) रहयाणाम् (संयोगम्) वर्जयित्वा (अन्यत्र) जादेशः न प्रदृश्यते।

शब्दार्थः – पदादौ=सुप्तिङन्तान्यतररूपपदस्य प्रारम्भे, अपि=च, अविच्छेदे=संहितायाम्, संयोगान्ते=संयोगस्य पश्चाद्भागे, च=अपि, तिष्ठताम्=वर्तमानानाम्, (यकाराणाम्=प्रथमान्तस्थवर्णानाम्), रहयाणाम्=रेफ-हकार-यकाराणाम्, (संयोगम्=अनन्तरसन्निकर्षम्), वर्जयित्वा=त्यक्त्वा, (अन्यत्र=अन्येषु स्थलेषु), जाऽऽदेशः=जकाररूपेणोच्चारणम्, न=नैव, दृश्यते=उपलभ्यते।

सरलार्थः – पदादौ स्थितानामपि संहिताकाले पूर्वपदान्त्यव्यञ्जन-संयोगान्ते तिष्ठतां यकाराणां र-ह-य-योगं वर्जयित्वाऽन्यत्र जकारोच्चारणं सम्प्रदाये न दृश्यते।

विशेषः – अत्र शिक्षासङ्ग्रहे पदादौ इत्येव पाठो द्रष्टव्यः। अत्र पदादौ स्थितस्याऽपि संहिताकाले पूर्वपदान्त्यव्यञ्जनसंयोगान्ते स्थितस्य यकारस्योदाहरणम् **"अहन्यद् दस्युम्"** (कौथुमसाम.पूर्वा. अ.४, ख.३, म.२) इत्यादौ द्रष्टव्यम्। पूर्वपदान्तरेफयोगोदाहरणं च **"नमोभिर्य्यस्य"** (कौथुमसाम.पूर्वा.अ.१, ख.७, म.८), **"छर्दिर्य्यच्छ"** (कौथुमसाम.पूर्वा.अ.२, ख.४, म.४) इत्यादौ द्रष्टव्यम्।

हिन्दी – पद के आदि में रहने पर भी संहिताकाल में पूर्वपद के अन्त्य व्यञ्जन के संयोग के अन्त्य में रहने वाले यकारों के स्थान में तो रेफ और हकार के संयोगस्थल को छोडकर अन्यत्र उच्चारण में जकारादेश नहीं होता है॥१७॥

स्वसंयुक्तो गुरुर् ज्ञेयः साऽनुस्वाराग्रिमः स्फुटः।
अणुशेषोऽधिगोर् वाऽपि युगलादिरविस्फुटः॥१८॥

अन्वयः– स्वसंयुक्तः (यकारः) गुरुः ज्ञेयः (अस्ति), साऽनुस्वाराग्रिमः (यकारः) स्फुटः (ज्ञेयः), अणुशेषः अध्रिगोः वा अपि युगलादिः (यकारः) अविस्फुटः (ज्ञेयः अस्ति)।

शब्दार्थः– स्वसंयुक्तः=स्वेनैव युक्तः (यकारः=प्रथमोऽन्तस्थवर्णः), गुरुः=जकाररूपेणोच्चार्यः, ज्ञेयः=वेद्यः, (अस्ति=वर्तते), सानुस्वाराऽग्रिमः= अनुस्वारसहितस्याऽक्षरस्याऽग्रे स्थितः, (यकारः=यवर्णः), स्फुटः=स्पष्टः, (यकारः), (ज्ञेयः=बोध्यः), अणुशेषः=अणुना शेषेणोपलक्षितः, अध्रिगोः=अध्रिगुशब्दयुक्तस्य **"यो राजा चर्षणीनाम्"** इत्यादिकस्य मन्त्रस्य, वा=अथवा, अपि=च, युगलादिः= स्वसदृशवर्णादिकः, (यकारः=यवर्णः), अविस्फुटः=ईषत्तरप्रयत्नकत्वेनाऽविस्पष्टः, (ज्ञेयः=वेद्यः, अस्ति=वर्तते)।

सरलार्थः– स्वात्मकेनैव वर्णेन युतो यकारो जकारत्वेन गुरुतयोच्चार्योऽस्ति, अनुस्वारसहितादक्षरात् परतः स्थितो यकारो यकाररूपेणैव स्फुटतयोच्चार्योऽस्ति, वेदशाखाविशेषे अनुस्वारस्य परसवर्णादिशेऽणुतया शिष्टेन यकारेण युक्तः, अध्रिगुशब्दयुक्तमन्त्रे वर्तमानश्च स्वसदृशवर्णादिको यकारः ईषत्तरप्रयत्नकत्वेनाऽविस्पष्ट उच्चार्योऽस्ति।

विशेषः– एतस्मिन् श्लोके शोभाकरविवरणं नोपलभ्यते। अस्य श्लोकस्य पाठोऽपि भ्रष्ट इव प्रतीयते। रामनाथदीक्षितेनाऽपि सामप्रातिशाख्य-सङ्ग्रहे (१९७८क्रै., पृ. २२) एतस्य श्लोकस्य विवरणं कृतं न दृश्यते। अस्माभि-रेतस्य श्लोकस्य नानाशाखाशिक्षाग्रन्थविचारेण यथामति विवरणं कृतमस्ति। स्वसंयोगस्योदाहरणानि **निचाय्य, वाय्ये, कुण्डपाय्यः, सूर्य्यः, पर्य्यूषु, मर्य्याः, नर्य्यम्, एह्य्यूषु, देवोह्य्यसि, पाह्य्युत** इत्यादिकानि कौथुमसामवेदार्चिक-संहितायामागतानि ज्ञेयानि।

हिन्दी– स्वसंयुक्त यकार जकाररूप से गुरुरूप में उच्चारणीय जानाना चाहिए, अनुस्वारसहित अक्षर से परवर्ती यकार यकाररूप में ही स्पष्टतया उच्चार्य जानना चाहिए, वेदशाखाविशेष में अनुस्वार के स्थान में परसवर्णादिश होने पर अणुरूप में अवशिष्ट यकार से युक्त और अध्रिगुशब्दयुक्त मन्त्र में स्थित स्वसदृशवर्ण से युक्त यकार ईषत्तरप्रयत्नक रूप में लघुतरतया उच्चारणीय जानना चाहिए॥१८॥

॥ इति द्वितीये प्रपाठके द्वितीया कण्डिका॥

अथ द्वितीये प्रपाठके तृतीया कण्डिका

यदुदात्तमुदात्तं तद् यत् स्वरितं तत् पदे भवति नीचम्।
यन् नीचं नीचमेव तद् यत् प्रचयस्थं तदपि नीचम्॥१॥

अन्वयः– (संहितायाम्) यत् उदात्तम् तत् पदे उदात्तम् (भवति), (संहितायाम्) यत् स्वरितम् तत् (पदे) नीचम् भवति, (संहितायाम्) यत् नीचम् तत् (पदे) नीचम् एव भवति, (संहितायाम्) यत् प्रचयस्थम् (पदे) तत् अपि नीचम् (भवति)।

सरलार्थः– संहितापाठे यदक्षरमुदात्तं भवति पदपाठेऽपि तदक्षरमुदात्तमेव भवति, संहितापाठे यदक्षरं तैरोव्यञ्जनादिरूपं स्वरितं भवति तदक्षरं पदपाठेऽनुदात्तं भवति, संहितापाठे यदक्षरमनुदात्तं भवति पदपाठेऽपि तदक्षरमनुदात्तमेव भवति, संहितापाठे यदक्षरं प्रचयस्थं भवति पदपाठे तदक्षरमपि अनुदात्तं भवति।

हिन्दी– संहितापाठ में जौन अक्षर उदात्त होता है पदपाठ में भी वह अक्षर उदात्त ही होता है, संहितापाठ में जौन अक्षर तैरोव्यञ्जनादि स्वरित होता है पदपाठ में वह अक्षर अनुदात्त होता है, संहितापाठ में जौन अक्षर अनुदात्त होता है पदपाठ में भी वह अक्षर अनुदात्त ही होता है, संहितापाठ में जौन अक्षर प्रचयस्वर वाला है पदपाठ में वह अक्षर भी अनुदात्त होता है॥१॥

अयमग्निः सुतो मित्रमिदं वयमया वहाः।
प्रियं दूतं घृतं चित्तमभिशब्दश् च नीचतः॥२॥

सरलार्थः– अयम् अग्निः सुतः मित्रम् इदम् वयम् अया वहाः प्रियम् दूतम् घृतम् चित्तम् अभि इत्येतानि पदानि अनुदात्ततः प्रारभ्यन्ते। एतानि पदानि अनुदात्तादीनि उदात्तान्तानि सन्ति।

विशेषः– अत्र वहाः इति शब्दः कौथुमसामवेदार्चिकसंहितायां न दृष्ट इति रामनाथदीक्षितः।

हिन्दी– कौथुमसामवेद की आर्चिकसंहिता में आए हुए अयम्, अग्निः, सुतंः, मित्रम्, इदम्, वयम्, अया, वहाः, प्रियम्, दूतम्, घृतम्, चित्तम्, अभि ये पद अनुदात्त से आरब्ध होते हैं॥२॥

अर्केष्वेव सुतेष्वेव यज्ञेषु कलशेषु च।
शतेषु सपवित्रेषु नीचादुच्चार्यते श्रुतिः॥३॥

सरलार्थः– अर्कशब्देषु सुतशब्देषु यज्ञशब्देषु कलशशब्देषु शत-शब्देषु पवित्रशब्दसहितेषु शब्दः अनुदात्तात् स्वराद् उपक्रम्य उच्चार्यते।

हिन्दी– अर्क शब्दों में, सुत शब्दों में, यज्ञ शब्दों में, कलश शब्दों में, शत शब्दों में और पवित्र शब्दों में शब्द अनुदात्त स्वर से प्रारम्भ कर के बोला जाता है॥३॥

हरि-वरुण-वरेण्येषु धारा-पुरुषेषु च स्वरति रेफः।
विश्वानरे नकारश् च शेषा रस्वरिता नराः॥४॥

सरलार्थः– हरिशब्दे वरुणशब्दे वरेण्यशब्दे धाराशब्दे पुरुषशब्दे च रेफयुक्तमक्षरं स्वरितस्वरं कुरुते। विश्वानरशब्दे नकारः स्वरितस्वरं कुरुते, अवशिष्टा नरशब्दा रेफयुक्तेऽक्षरे स्वरितेन स्वरेण युक्ता भवन्ति।

हिन्दी– हरि शब्द में, वरुण शब्द में, वरेण्य शब्द में, धारा शब्द में और पुरुष शब्द में भी रेफयुक्त अक्षर स्वरित स्वरयुक्त होता है। विश्वानर शब्द में नकारयुक्त अक्षर स्वरितस्वरयुक्त होता है, अवशिष्ट नर शब्दों में रेफयुक्त अक्षर स्वरित होता है॥४॥

द्वौ वरुणौ वस्वरितावुदुत्तमन्-त्वंवरुणौ।
धाकारे चोरुधारायामुरुधारेव दोहने॥५॥

सरलार्थः– **'उदुत्तमं वरुण'** इत्यत्र, येना पावकेत्यादिकायामृचि **'त्वं वरुण'** इत्यत्र च स्थितौ द्वौ वरुणशब्दौ वकारवत्यक्षरे स्थितेन स्वरितेन स्वरेण युक्तौ भवतः, **'उरुधारामरङ्कृतम्'** इत्यत्र पूर्वार्चिके **'उरुधारेव दोहने'** इत्यत्र उत्तरार्चिके च धाराशब्दौ धाकारे स्वरितेन स्वरेण युक्तौ भवतः।

विशेषः– पूर्वश्लोकोक्तलक्षणातिव्याप्तिनिवारकोऽयं श्लोको रामनाथ-दीक्षितेन किन्नु त्यक्त इति न ज्ञायते। मन्ये पाठभ्रंशेन दुर्बोधत्वं प्राप्त इति त्यक्तः स्यात्।

हिन्दी– "उदुत्तमं वरुण" इस स्थल में स्थित और "येना पावक" इत्यादि ऋचा के "त्वं वरुण" इस स्थल में स्थित ये दो वरुण शब्द वकारयुक्त अक्षर में स्वरित स्वर से युक्त होते हैं; "आ त्वाद्य सबर्दुघाम्" इत्यादि ऋचा में स्थित "उरुधाराम्" इस पद में स्थित धारा शब्द और "सन इन्द्रः शिवः सखा" इत्यादि ऋचा में वर्तमान "उरुधारा" इस पद में स्थित धारा शब्द धाकार में रहे हुए स्वरित स्वर से युक्त होते हैं॥५॥

मात्रिकं वा द्विमात्रं वा स्वर्यते यदिहाऽक्षरम्।
तस्याऽऽदितोऽर्धमात्रा वै शेषं तु परतो भवेत्॥६॥

अन्वयः– इह मात्रिकम् वा द्विमात्रम् वा यत् अक्षरम् स्वर्यते, तस्य अर्धमात्रा आदितः (भवेत्), वै शेषम् तु परतः भवेत्।

शब्दार्थः– इह=कौथुमसामवेदे, मात्रिकम्=ह्रस्वम्, वा=अथवा, द्विमात्रम्=दीर्घम्, वा=अथवा, यत्=आकाङ्क्षाबुद्धिविशेषविषयभूतम्, अक्षरम्=सव्यञ्जनः सानुस्वारः शुद्धो वाऽपि स्वरः, स्वर्यति=उदात्तानुदात्तसमाहाररूप-स्वरितस्वरवत्तया उच्चार्यते, तस्य=आकाङ्क्षापूरणबुद्धिविषयस्य अक्षरस्य, अर्धमात्रा=पूर्वोऽर्धमात्रातुल्यो भागः, आदितः=स्वरिते आदौ स्थितस्य उदात्तस्य स्वरस्य भागे, (भवेत्=स्यात्), वै=खलु, शेषम्=अवशिष्टमक्षरम्, ह्रस्वे अर्ध-मात्रात्मकम्, दीर्घे तु सार्धमात्रात्मकम्, तु=हि, परतः=स्वरिते उत्तरभागे स्थितस्य अनुदात्तस्य स्वरस्य भागे, भवेत्=स्यात्।

सरलार्थः– इह कौथुमसामवेदे ह्रस्वं वा दीर्घं वाऽपि यदक्षरं स्वरित-स्वरवत्तयोच्चार्यं भवति तस्याऽक्षरस्य पूर्वाऽर्धमात्रा स्वरितस्वरादिस्थोदात्तस्वर-भागे भवेत्, अवशिष्टं ह्रस्वेऽक्षरे अर्धमात्रात्मकं खण्डम्, दीर्घेऽक्षरे सार्धमात्रा-त्मकं खण्डं तु स्वरितस्वरान्त्यभागस्थानुदात्तस्वरभागे भवेत्।

विशेषः– स्वरितस्वरपूर्वोत्तरभागव्यवस्थाविषये कौण्डिन्न्यायशिक्षायां तृतीये स्वरनिरूपणाध्याये (श्लो.८, पृ.३२६-३३१) विस्तरेण विचारः कृतोऽस्ति। स जिज्ञासुभिस् तत्रैव द्रष्टव्यः।

हिन्दी– इस कौथुमसामवेद में ह्रस्व वा दीर्घ जो अक्षर स्वरित रूप में उच्चरित होता है, उस का पहला अर्धमात्रात्मक भाग स्वरित स्वर में आदि में रहने वाले उदात्त स्वर के भाग में होता है, अवशिष्ट ह्रस्व अक्षर में अर्धमात्रा वाला और दीर्घ अक्षर में डेढ मात्रा वाला भाग स्वरित स्वर में अन्त्य में रहने वाले अनुदात्त स्वर के भाग में होता है॥६॥

अदीर्घं दीर्घवत् कुर्याद् द्विस्वरं यत् प्रयुज्यते।
कम्पोत्स्वरिताऽभिगीतं ह्रस्वकर्षणमेव च॥७॥

अन्वयः– कम्पोत्स्वरिताऽभिगीतम् ह्रस्वकर्षणम् एव च यत् द्विस्वरम् प्रयुज्यते (तत्) अदीर्घम् (अपि) दीर्घवत् कुर्यात्।

शब्दार्थः– कम्पोत्स्वरिताऽभिगीतम्=कम्पस्वरः, उत्स्वरितः स्वरः, अभिगीतम्, ह्रस्वकर्षणं च, एव=हि, च=अपि, यत्=आकाङ्क्षाबुद्धिविशेष-विषयभूतम् उच्चार्यम्, द्विस्वरम्=द्वाभ्यां स्वराभ्यां युक्तम्, प्रयुज्यते=उच्चार्यते, (तत्=आकाङ्क्षापूरणबुद्धिविषयभूतम् उच्चार्यम्), अदीर्घम्=अद्विमात्रम्, (अपि=च), दीर्घवत्=द्विमात्रतुल्यम्, कुर्यात्=उच्चारयेत्।

सरलार्थः– कम्पस्वरः उत्स्वरितः स्वरः अभिगीतं ह्रस्वकर्षणं चेति यत् स्वरद्वययुक्तमुच्चार्यते तद् अदीर्घमपि दीर्घतुल्यं कृत्वोच्चारयेत्।

विशेषः– कम्पस्वरः पूर्वं निरूपित एव (२।१।११, २।२।१-३)। उत्स्वरितम् 'भूर् भुवः स्वः' इत्यत्रेव नीचादुपरि स्थितं स्वरितमुत्स्वरितमिति शोभाकरः। अभिगीतं ह्रस्वकर्षणं च सामगानविषयकं विशिष्टमुच्चारणम्। **"स्वरित-विनत-प्रणतोत्स्वरिताऽभिगीतानाम् आर्चिकोक्षरकालः"** इति (३।३) मात्रालक्षणे, **"उत्स्वरितं चतुर्थादिर् मन्द्रान्तम्, अभिगीतं द्वितीयादिः प्रथमान्तम्"** इति (३।४), **"ह्रस्वकर्षणे पृथङ् मात्रिकौ स्वरौ"** इति च तत्रैव (२।११)।

हिन्दी– कम्पस्वर, उत्स्वरित स्वर, अभिगीत और ह्रस्वकर्षण इन में जो स्वर-द्वययुक्त उच्चारण किया जाता है उस में अदीर्घ स्वर को भी दीर्घतुल्य बनाकर उच्चारण करे।

निमेषकाला मात्रा स्याद् विद्युत्कालेति चाऽपरे।
ऋस्वरा तुल्ययोगा वा मतिः स्यात् सोमशर्मणः॥८॥

अन्वयः– मात्रा निमेषकाला स्यात्, अपरे च (मात्रा) विद्युत्काला इति (मन्यन्ते), (मात्रा) ऋस्वरा वा तुल्ययोगा स्यात् (इति) सोमशर्मणः मतिः (अस्ति)।

शब्दार्थः– मात्रा=अकारादीनां स्वरवर्णानां स्वरूपमात्रम्, निमेषकाला= नेत्रच्छदस्य शमीलने यावान् कालो लगति तावता कालेनोच्चार्या, स्यात्= भवेत्; अपरे=अन्ये आचार्याः, च=तु, (मात्रा=अकारादिस्वरवर्णस्वरूपमात्रम्), विद्युत्काला=विद्युतः स्फुरणे यावान् कालो लगति तावता कालेनोच्चार्या, इति=एवम्, (मन्यन्ते=विचारयन्ति), (मात्रा=अकारादिस्वरवर्णस्वरूपमात्रम्), ऋस्वरा=ऋकारस्वरस्य लघुतमस्योच्चारणे यावान् कालो लगति तावता कालेनोच्चार्या, वा=अथवा, तुल्ययोगा=कचटतप-गजडदबानां कुक्कुट इत्यादाविव तुल्ययोरभिन्नयोर् व्यञ्जनयोर् योगे कचटतपादीनां सध्रुवाणामुच्चारणे यावान् कालो लगति तावता कालेनोच्चार्या, स्यात्=भवेत्, (इति=एवंरूपा), सोमशर्मणः=सोमशर्माख्यस्याऽऽचार्यस्य, मतिः=मतम्, (अस्ति=वर्तते)।

सरलार्थः– अकारादिवर्णस्वरूपमात्ररूपा मात्रा नेत्रच्छदशमीलनकालतुल्यकाला स्यात्; अन्ये आचार्या मात्रा विद्युत्स्फुरणकालतुल्यकाला इति मन्यन्ते, ऋकारस्वरोच्चारणकालतुल्यकाला वा कचटतपादिवर्णानां स्वेनैव संयोगे तेषामुच्चारणे यावान् कालो लगति तावता कालेनोच्चार्या वा मात्रेति सोमशर्मण आचार्यस्य मतं स्यात्।

विशेषः– अयं श्लोकः स्वल्पेन पाठभेदेन याज्ञवल्क्यशिक्षायामपि पठ्यते। मात्रास्वरूपविषये कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां चतुर्थे मात्रानिरूपणाध्याये (श्लो.१, पृ.४४२-४४३) विवेचनं प्रस्तुतमस्ति, **"निमेषकाला मात्रा स्यात्"** इत्यादिकस्य श्लोकस्य विवेचनपूर्वकमर्थनिर्धारणं च तत्रैव (श्लो.४, पृ.४४५) कृतमस्ति। तत् तत्रैव जिज्ञासुभिर् द्रष्टव्यमस्ति। ऋस्वरेत्यादिकः श्लोकार्धो रामनाथदीक्षितेन किन्नु न व्याख्यात इति न ज्ञायते। अस्य श्लोकार्धस्य पाठनिर्धारणं व्याख्यानं चाऽस्माभिः शोभाकरविवरणस्थम् **"ऋकारकालः"** इति

विवरणं ग्रन्थान्तरसंवादं च विचार्य कृतमस्ति। अधिकं कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षायामुक्ते स्थले द्रष्टव्यम्।

हिन्दी– मात्रा आँख के पलक मारने भर का समय लेने वाली होती है। दूसरे आचार्य मात्रा को बिजली चमकने के समय के तुल्य समय लेने वाली मानते हैं। मात्रा ऋकारस्वर के उच्चारण के समय के तुल्य समय लेने वाली अथवा क-च-ट-त-पादि व्यञ्जनवर्ण के स्ववर्ण से ही संयोग में उन के उच्चारण में लगने वाले समय के तुल्य समय लेने वाली होती है, यह आचार्य सोमशर्मा का मत है॥८॥

समासेऽवग्रहं कुर्यात् पदं चाऽत्राऽनुसंहितम्।
यतोऽक्षरादितिकरणं पदान्तं तस्य तं विदुः॥९॥

अन्वयः– अत्र समासे अनुसंहितम् पदम् अवग्रहम् च कुर्यात्। यतः अक्षरात् इतिकरणम् तम् तस्य पदान्तम् विदुः।

शब्दार्थः– अत्र=कौथुमसामवेदपदपाठे, समासे=समस्तपदे, अनुसंहितम्=संहितानुसारि, पदम्=पूर्णपदोच्चारणम्, अवग्रहम्=पूर्वपदान्ते क्षणिकेन स्थानकरणविमोक्षरूपेण विरामेण पूर्वपदमात्रस्य ग्रहणं विच्छेदरूपम्, च=अपि, कुर्यात्=विदधीत। यतः=यस्मात्, अक्षरात्=वर्णात् परम्, इतिकरणम्=अध्येतॄणाम् इतिशब्दस्योच्चारणम्, तम्=तादृशं पूर्वं वर्णम्, तस्य=तादृशस्य पूर्वपदस्य, पदान्तम्=पदान्ते स्थितं वर्णम्, विदुः=जानन्ति।

सरलार्थः– कौथुमसामवेदार्चिकसंहितापदपाठे समस्तपदे संहितानुसारि पदं पूर्वपदान्तेऽवग्रहं च कुर्यात्। यस्माद् वर्णात् परम् अध्येतॄणाम् इतिशब्दस्योच्चारणं भवति तादृशं पूर्वं वर्णं तस्य पूर्वपदस्य पदान्तं विजानीयात्।

विशेषः– अत्र पदपाठेऽवग्रहस्योदाहरणम् "हव्यदातय इति हव्यऽदातये" इति, "विश्ववेदसमिति विश्वऽवेदसम्" इति च भट्टशोभाकरेणोक्तमस्ति।

हिन्दी– कौथुमसामवेद की आर्चिकसंहिता के पदपाठ में समस्तपद में संहितानुसारी पद का और अवग्रह का उच्चारण करे। जिस वर्ण से परे इति शब्द का ग्रहण होता है उस वर्ण को पूर्वपद का पदान्तस्थ वर्ण जाने॥९॥

सर्वत्र पुत्र-मित्र-सखिशब्दा अद्रिशतक्रतुरवग्राह्याः।
आदित्य-विप्र-जातवेदाश्च सत्पति-गोपति-वृत्रहा समुद्रश्च ॥१०॥

सरलार्थः– सर्वेषु स्थलेषु समासे आगता पुत्र-मित्र-सखिशब्दाः, अद्रिशब्दः, शतक्रतुशब्दः, आदित्य-विप्र-जातवेदश्-शब्दाः, सत्पति-गोपति-वृत्रह-शब्दाः, समुद्रशब्दश्च अवग्राह्या भवन्ति।

हिन्दी– सभी स्थल में समास में आए हुए पुत्र, मित्र, सखि, अद्रि, शतक्रतु, आदित्य, विप्र, जातवेदा, सत्पति, गोपति, वृत्रहा और समुद्र ये शब्द पदपाठ में अवग्रहयुक्त रूप में उच्चारणीय होते हैं ॥१०॥

स्वर्युवो देवयवश्चाऽरतिं देवतातये।
चिकितिश् चुक्रुधं चैव नाऽवगृह्णन्ति पण्डिताः॥११॥

सरलार्थः– स्वर्युवः, देवयवः, अरतिम्, देवतातये, चिकितिः, चुक्रुधम् इत्येतानि पदानि असमस्तानि पदानि ज्ञात्वा प्रकृतिप्रत्ययोग-समासाऽसमास-विशेषज्ञाः पण्डिताः पदकारा गार्ग्यादयो नाऽवगृह्णन्ति।

हिन्दी– स्वर्युवः, देवयवः, अरतिम्, देवतातये, चिकितिः, चुक्रुधम् इन कौथुम-सामवेद की आर्चिक संहिता में आए हुए पदों को पण्डित पदकार अवग्रहयुक्त नहीं करते हैं।

॥ इति द्वितीये प्रपाठके तृतीया कण्डिका॥

अथ द्वितीये प्रपाठके चतुर्थी कण्डिका

विवृत्तयश् चतस्रो वै विज्ञेया इति मे मतम्।
अक्षराणां नियोगेन तासां नामानि मे शृणु॥१॥

अन्वयः– अक्षराणाम् नियोगेन चतस्रः वै विवृत्तयः विज्ञेयाः इति मे मतम् (अस्ति)। तासाम् नामानि मे शृणु।

शब्दार्थः– अक्षराणाम्=स्वराणाम्, नियोगेन=नियमेन, चतस्रः=वेद-मिताः, वै=खलु, विवृत्तयः=निरन्तरयोः स्वरयोर्मध्ये पूर्वं स्वरमुच्चार्य कार्या

विरतिविशेषाः, विज्ञेयाः=वेद्याः, इति=एतादृशम्, मे=मम, मतम्=निश्चयः, (अस्ति=वर्तते)। तासाम्=उक्तानां चतसृणां विवृत्तीनाम्, नामानि=आख्याः, मे=मम, शृणु=आकर्णय।

सरलार्थः– स्वराणां नियमविशेषेण चतस्रो विवृत्तयो वेद्या इति मम मतमस्ति, तासां चतसृणां विवृत्तीनां नामानि शृणु।

विशेषः– विवृत्तिरूपविरामस्य विषये कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षायां षष्ठे सामनिरूपणाध्याये (श्लो.४१, पृ.५७८-५८२) विस्तरेण विचारः प्रस्तुतोऽस्ति। स तत्रैव द्रष्टव्यः। विवृत्तिलक्षणं तु याज्ञवल्क्यशिक्षायां स्फुटतयोक्तम्। तद् यथा–

द्वयोस् तु स्वरयोर् मध्ये सन्धिर् यत्र न दृश्यते।
विवृत्तिस् तत्र विज्ञेया *"यऽईशे"* तु निदर्शनम्॥ इति।

हिन्दी– स्वरों की पूर्वापरस्थिति की विशेषता से चार प्रकार की विवृत्तियाँ ज्ञातव्य हैं, यह मेरा मत है, उन चार विवृत्तियों के नाम सुनो॥१॥

ह्रस्वादिर् वत्सानुसृता वत्सानुसारिणी चाऽग्रे।
पाकवत्युभयोर् ह्रस्वा दीर्घवृद्धा पिपीलिका॥२॥

अन्वयः– ह्रस्वादिः (विवृत्तिः) वत्सानुसृता (विज्ञेया), अग्रे (ह्रस्वस्वर-युता विवृत्तिः) च वत्सानुसारिणी (विज्ञेया), उभयोः ह्रस्वा (विवृत्तिः) पाकवती (विज्ञेया), (उभयोः) दीर्घवृद्धा (विवृत्तिः) पिपीलिका (विज्ञेया)।

शब्दार्थः– ह्रस्वादिः=निरन्तरयोः स्वरयोर् मध्ये ह्रस्वेन पूर्वस्वरेण युक्ता (विवृत्तिः=स्वरद्वयमध्यस्था विरतिः), वत्सानुसृता=वत्सानुसृताख्या, (विज्ञेया=वेद्या), अग्रे=निरन्तरयोः स्वरयोर् मध्ये उत्तरस्वरे, (ह्रस्वस्वरयुक्ता=मात्रिकस्वरेण युक्ता, विवृत्तिः=स्वरमध्यस्था विरतिः), च=अपि, वत्सानुसारिणी=वत्सानुसारिण्याख्या, (विज्ञेया=वेद्या), उभयोः=द्वयोरेव पूर्वोत्तरस्वरस्थानयोः, ह्रस्वा=ह्रस्वस्वरयुक्ता, (विवृत्तिः=स्वरद्वयमध्यस्था विरतिः), पाकवती=पाक-वत्याख्या, (विज्ञेया=वेद्या), (उभयोः=द्वयोरेव पूर्वोत्तरस्वरस्थानयोः), दीर्घवृद्धा=दीर्घाभ्यां स्वराभ्यां वृद्धिं गता, (विवृत्तिः=स्वरद्वयमध्यस्था विरतिः), पिपीलिका=पिपीलिकाख्या, (विज्ञेया=वेद्या)।

सरलार्थः– निरन्तरयोः स्वरयोर्मध्ये ह्रस्वेन पूर्वस्वरेण युक्ता विवृत्तिर् वत्सानुसृता विज्ञेया, ह्रस्वेन उत्तरस्वरेण युक्ता विवृत्तिर् वत्सानुसारिणी विज्ञेया, द्वयोरेव पूर्वोत्तरस्वरस्थानयोर् ह्रस्वाभ्यां स्वराभ्यां युक्ता विवृत्तिः पाकवती विज्ञेया, दीर्घाभ्यां स्वराभ्यां युक्ता विवृत्तिः पिपीलिका विज्ञेया।

विशेषः– अत्र क्रमेणोदाहरणानि "**अग्न आयाहि वीतये**" इति, "**प्रेष्ठं वो अतिथिम्**" इति, "**अग्न इत्थेतरा गिरः**" इति, "**निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः**" इति च भट्टशोभाकरेण प्रदर्शितानि सन्ति।

हिन्दी– ह्रस्व पूर्वस्वर से युक्त विवृत्ति वत्सानुसृता, ह्रस्व उत्तरस्वर से युक्त विवृत्ति वत्सानुसारिणी, पूर्वोत्तर दोनों ह्रस्व स्वरों से युक्त विवृत्ति पाकवती और पूर्वोत्तर दोनों दीर्घ स्वरों से युक्त विवृत्ति पिपीलिका जाननी चाहिए॥२॥

चतसृणां विवृत्तीनामन्तरं मात्रिकं भवेत्।
अर्धमात्रिकमन्येषामन्येषामणुमात्रिकम्॥३॥

सरलार्थः– कौथुमसामवेदे उक्तानां चतुर्विधानां विवृत्तीनामुच्चारणे मध्ये विरामरूपमन्तरं मात्राकालं स्यात्, अन्येषां केषाञ्चिद् वेदशाखाध्यायिनां वेदे तासां विवृत्तीनामन्तरम् अर्धमात्राकालं स्यात्, पुनरन्येषां केषाञ्चिद् वेद-शाखाध्यायिनां वेदे तासां विवृत्तीनामन्तरम् अणुमात्राकालं स्यात्।

हिन्दी– कौथुमसामवेद में उक्त चार प्रकार की विवृत्तियों के उच्चारण में स्वरों के मध्य में होने वाला विरामरूप अन्तर मात्राकाल का होता है। दूसरे किसी वेद के अध्येताओं की शाखा में वह अन्तर अर्धमात्राकाल का होता है। फिर और दूसरे किसी वेदशाखा के अध्येताओं की शाखा में वह अन्तर अणुमात्राकाल का होता है॥३॥

अभ्रमध्ये यथा विद्युद् दृश्यते मणिसूत्रवत्।
एष च्छेदो विवृत्तीनां यथा वालेषु कर्तरी॥४॥

अन्वयः– अभ्रमध्ये मणिसूत्रवत् विद्युत् यथा दृश्यते, वालेषु कर्तरी यथा (व्याप्रियते) एष विवृत्तीनाम् छेदः (भवति)।

शब्दार्थः– अभ्रमध्ये=वार्धरमध्ये, मणिसूत्रवत्=मणिसूत्रेण तुल्यतया, विद्युत्=तडित्, यथा=येन प्रकारेण, दृश्यते=सकृत् प्रकाशते, वालेषु=केशेषु, कर्तरी=केशनिकृन्तनी, यथा=येन प्रकारेण, व्याप्रियते=शीघ्रतया प्रवर्तते; एषः=एतादृश एव, विवृत्तीनाम्=वत्सानुसृतादीनां चतसृणां विवृत्तीनाम्, छेदः=विरतिविशेषः, (भवति=प्रयोज्यो जायते)।

सरलार्थः– वार्धरमध्ये मणिसूत्रवत् चमत्कृता विद्युद् यथा क्षणं प्रकाशते, केशेषु कर्तरी यथा शीघ्रं प्रवर्तते, तथैव वत्सानुसृतादीनां चतसृणां विवृत्तीनां छेदोऽपि शीघ्रं प्रयोज्यो भवति।

विशेषः– एष श्लोको विवृत्तीनां कालस्यैव स्पष्टीकरणे प्रवृत्तोऽवगम्यते। अत एव नारदीयशिक्षाकोशेषु प्रथमप्रपाठकषष्ठकण्डिकायां क्षेपकतयाऽसान्दर्भिकत्वेन वर्तमानोऽयं श्लोकोऽस्माभिरत्र विवृत्तिकालनिरूपणप्रसङ्गे निवेशितोऽस्ति।

हिन्दी– बादल के बीच में मणि के धागे की भाँति चमत्कृत बिजली जैसे क्षणिक रूप में प्रकाशित होती है, वालों में कैंची जैसे शीघ्रता से वाल काटने में व्यापृत होती है, वैसे ही वत्सानुसृतादि चार विवृत्तियों का छेद (विरति) भी शीघ्रता से पलक भर में प्रयोज्य है॥४॥

आपद्यते मकारो रेफोष्मसु प्रत्ययेष्वनुस्वारम्।
यलवेषु परसवर्णं स्पर्शेषु चोत्तमापत्तिम्॥५॥

अन्वयः– मकारः रेफोष्मसु प्रत्ययेषु अनुस्वारम् आपद्यते; (मकारः) यलवेषु (प्रत्ययेषु) परसवर्णम् (आपद्यते); (मकारः) स्पर्शेषु (प्रत्ययेषु) उत्तमापत्तिम् च आपद्यते।

शब्दार्थः– मकारः=पवर्गान्तिमवर्णः, रेफोष्मसु=रेफे ऊष्माख्येषु श-ष-स-हेषु, प्रत्ययेषु=उत्तरवर्तिषु सत्सु, अनुस्वारम्=अनुस्वाराख्यं नासिकास्थानकं वर्णम्, आपद्यते=स्वरूपेण प्राप्नोति; (मकारः=पवर्गान्तिमवर्णः), यलवेषु= रेफभिन्नान्तस्थवर्णेषु, (प्रत्ययेषु=उत्तरवर्तिषु सत्सु), परसवर्णम्=परवर्णसवर्णं वर्णम्, (आपद्यते=स्वरूपेण प्राप्नोति), (मकारः=पवर्गीयान्तिमवर्णः), स्पर्शेषु= स्पर्शसंज्ञकेषु कादि-मान्तेषु वर्णेषु, (प्रत्ययेषु=उत्तरवर्तिषु सत्सु), उत्तमापत्तिम्= परवर्णवर्गीयपञ्चमापत्तिम्, (आपद्यते=स्वरूपेण प्राप्नोति)।

सरलार्थः– मकारो रेफे ऊष्माख्येषु श-ष-स-हेषु च परेषु अनुस्वार-भावं गच्छति, मकारो य-ल-वेषु परेषु परसवर्णभावं गच्छति, मकारः स्पर्शाख्येषु कादि-मान्तेषु वर्णेषु परेषु परवर्णवर्गीयपञ्चमवर्णत्वं च गच्छति।

विशेषः– अत्र उदाहरणानि च **"मा वां रातिः"**, **"तं सखायः"**, **"यज्ञानां होता"**, **"शयँ् योः"**, **"तलँ् लोकम्"**, **"होतारवँ् विश्ववेदसम्"**, **"त्वाङ् कामये"**, **"अग्निन् दूतम्"** इत्यादीनि ज्ञेयानि। कौथुमसामवेदसम्बद्धायां नारदीयशिक्षायामेतादृशे निर्विकल्पेऽन्वाख्याने वर्तमानेऽपि आर्यसमाजिनः श्रीपाद-दामोदर-सातवलेकरादय इवैव रामनाथदीक्षितोऽपि किन्नु कौथुमसाम-वेदार्चिकसंहितायाम् **"अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्"**, **"अग्ने रथं न वेद्यम्"**, **"त्वं नो अग्ने"**, **"प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय"** इत्यादिकं मुद्रापयतीति न ज्ञायते। वस्तुतस्तु **"अग्निन् दूतवँ् वृणीमहे"** इत्यादिकेन रूपेणैव मुद्रापणीयमवगम्यते।

हिन्दी– मकार रेफ और ऊष्मसंज्ञक श-ष-स-ह वर्ण उत्तरवर्ती होने पर अनुस्वारभाव में प्राप्त होता है, मकार य-ल-व उत्तरवर्ती होने पर परसवर्णभाव (यँ्-लँ्-वँ्-भाव) में प्राप्त होता है, मकार क-ख-ग इत्यादि मकार तक के वर्ण उत्तरवर्ती होने पर उत्तरवर्ती वर्ण के वर्ग के पञ्चमवर्णत्व में प्राप्त होता है॥५॥

नकारान्ते पदे पूर्वे स्वरे च परतः स्थिते।
आकारं रक्तमित्याहुर् नकारेण तु रज्यते॥६॥

अन्वयः– पूर्वे पदे नकारान्ते (सति) परतः च स्वरे स्थिते (सति) (पूर्वपदोपान्त्यवर्णम्) आकारम् रक्तम् (कुर्वन्ति) इति आहुः, नकारेण तु (स आकारः) रज्यते।

शब्दार्थः– पूर्वे=प्राग्वर्तिनि, पदे=सुबन्ततिङन्तान्यतररूपे शब्दे, नकारान्ते=नवर्णेन समाप्ते, (सति=वर्तमाने), परतः=उत्तरत्र, च=अपि, स्वरे=अकारादिके स्वरवर्णे, स्थिते=अवस्थिते, (सति=वर्तमाने), (पूर्वपदोपान्त्यवर्णम्=प्राग्वर्तिपदस्थं नकारात् पूर्वं वर्णम्), रक्तम्=अनुनासिकम्, (कुर्वन्ति=उच्चा-

रयन्ति सम्प्रदायविदः), इति=एवम्, आहुः=कथयन्ति शिक्षाग्रन्थकारादयः; नकारेण=पदान्तवर्तिना नवर्णेन स्वपूर्ववर्तिनि आकारे प्रविष्टेन, तु=हि, (सः=तादृशो नकारपूर्ववर्ती, आकारः=आवर्णः), रज्यते=अनुनासिकीक्रियते।

सरलार्थः– पूर्वे पदे नकारान्ते सति तस्मान् नकाराद् अकारादिके स्वरवर्णे परे च सति, तस्मान् नकारात् पूर्वं पूर्वपदोपान्त्यवर्णमाकारं सुसम्प्रदायविदोऽध्येतारोऽनुनासिकमुच्चारयन्ति इति शिक्षाग्रन्थकारादय आहुः, स आकारो नकारेण हि अनुनासिकीक्रियते।

विशेषः– वस्तुतस्त्वेतादृशे स्थले पूर्णो वर्णो नाऽनुनासिकीक्रियते, किन्तु तस्य वर्णस्योत्तरोऽर्ध एवाऽनुनासिकीक्रियते, स चाऽनुनासिकीकृतो भागो रङ्गवर्ण इत्युच्यते इति बोध्यम्। अत्रोदाहरणं च "**वण् महाँ ऽ असि**" इत्यादि ज्ञेयम्।

हिन्दी– पूर्व पद नकारान्त होने पर और उस नकार से परे अकारादि स्वर वर्ण रहने पर उस नकार से पूर्ववर्ती आकार को सुसम्प्रदायवित् वेदाध्यायी लोग अनुनासिक रूप में उच्चरित करते हैं, ऐसा शिक्षाग्रन्थकारादि कहते हैं। वह आकार नकार से ही अनुनासिकीकृत होता है॥६॥

नकारान्ते पदे पूर्वे व्यञ्जनैश् च यवोहिषु।
अर्धमात्रा तु पूर्वस्य रज्यते त्वणुमात्रया॥७॥

अन्वयः– पूर्वे पदे नकारान्ते (सति) (तस्मिन् नकारे च) य-वो-हि-षु (वर्तमानैः) व्यञ्जनैः (सन्निकृष्टे) च (सति) पूर्वस्य तु अर्धमात्रा अणुमात्रया रज्यते।

शब्दार्थः– पूर्वे=प्राग्वर्तिनि, पदे=सुबन्ततिङन्तान्यतररूपे शब्दे, नकारान्ते=नवर्णेन समाप्ते, (सति=वर्तमाने), (तस्मिन्=तादृशे, नकारे=नवर्णे, च=अपि), य-वो-हि-षु=यशब्दे वोशब्दे हिशब्दे च, (वर्तमानैः=स्थितैः), व्यञ्जनैः=व्यञ्जनवर्णैः, (सन्निकृष्टे=सन्निकर्षं गते), च=अपि, (सति=वर्तमाने), पूर्वस्य=नकारपूर्ववर्तिनः स्वरस्य, तु=हि, अर्धमात्रा=पाश्चात्त्योऽर्धभागः, अणुमात्रया=नकारविकाररूपेण मात्राचतुर्थांशपरिमाणेन आनुनासिक्येन, रज्यते=अनुनासिकीक्रियते।

सरलार्थः– पूर्वे पदे नकारान्ते सति तस्य नकारस्य य-वो-हि-शब्देषु वर्तमानैर् व्यञ्जनैः सन्निकर्षे सति चाऽपि नकारपूर्ववर्तिनः स्वरस्य हि पाश्चात्त्याऽर्धमात्रा नकारविकाररूपेण मात्राचतुर्थांशपरिमाणेन आनुनासिक्येन अनुनासिकीक्रियते।

विशेषः– अत्रोदाहरणानि "**गोमाँ यदिन्द्र ते, दधन्वाँ यो नर्यः, दाशिवाँ वोचे, महाँ हि षः**" इत्यादीनि ज्ञेयानि। पाणिनीयव्याकरणेऽपि "**दीर्घादटि समानपादे**" (८।३।९) इति एष विषयोऽन्वाख्यातः। एतेन श्लोकेन प्रतिपादितो विषय ऋक्तन्त्रस्य "**घान् नो डि विसर्जनीयं यवोहिषु**" (३।६।२) इति सूत्रेणाऽपि प्रतिपादितोऽस्ति। पदपाठज्ञानोपयोग्यपि एष श्लोको रामनाथदीक्षितेन किन्नु न व्याख्यात इति न ज्ञायते।

हिन्दी– पूर्व पद नकारान्त होने पर और उस नकार का परवर्ती य-वो-हि शब्द में वर्तमान व्यञ्जनों से सन्निकर्ष होने पर उस नकार से पूर्ववर्ती आकार की पश्चाद्वर्ती अर्धमात्रा नकारविकाररूप मात्राचतुर्थांश परिमाण वाले आनुनासिक्य से अनुनासिकीकृत होती है॥७॥

नकारः स्वरसंयुक्तश् चतुर्युक्तो विधीयते।
रेफो रङ्गश् च लोपश् च अनुस्वारोऽपि वा क्वचित्॥८॥

अन्वयः– स्वरसंयुक्तः नकारः रेफः रङ्गः च लोपः च क्व चित् अनुस्वारः वा अपि (इति) चतुर्युक्तः विधीयते।

शब्दार्थः– स्वरसंयुक्तः=उत्तरपदस्थेन स्वरेण सन्निकृष्टः, नकारः= नवर्णः, रेफः=रवर्णः, रङ्गः=रङ्गाख्यो नासिकास्थानकोऽनुस्वारसदृशो विलक्षणो वर्णविशेषः, च=अपि, लोपः=अदर्शनभावः, च=अपि, क्वचित्=कुत्राऽपि, अनुस्वारः=अनुस्वाराख्यो नासिकास्थानः सदा स्वपूर्ववर्तिस्वराङ्गतया तिष्ठन् वर्णविशेषः, वा=अथवा, अपि=च, (इति=एवम्प्रकारेण), चतुर्युक्तः=वेदमितैर् विकारैर् युक्तः, विधीयते=क्रियते।

सरलार्थः– उत्तरपदस्थेन स्वरेण सन्निकृष्टो नकारो रेफरूपः रङ्गरूपः अदृश्यरूपः क्वचिद् अनुस्वाररूपश् चेति चतुष्प्रकारैर् विकारैर् युक्तः क्रियते।

विशेषः– अत्रोदाहरणानि च "**ऋतूँरनु, वण् महाँ असि**" इत्यादीनि ज्ञेयानि। एष विषयोऽस्माभिः कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षायां सप्तमे सन्ताननिरूपणाध्याये (श्लो. ८७, पृ. ६७०-६७१) नानाप्रातिशाख्यादिवचनविचारेण निरूपितोऽस्ति। तत्राऽन्यविकाराऽनुपलक्षितस्य लोपस्य तूदाहरणं मृग्यमेवाऽस्ति। अनुस्वारभावस् तैत्तिरीयशाखायां प्रसिद्ध इत्यपि तत्रैव प्रदर्शितमस्ति। एष श्लोकोऽपि पदपाठव्यवस्थाज्ञानायाऽत्यन्तमावश्यकोऽपि नारदीयशिक्षाया आर्चिकपदपाठोपयुक्तानां पद्यानां विवरणे प्रवृत्तेनाऽपि रामनाथदीक्षितेन पृथक्तयाऽपि प्रचारिते, "**सामवेदपूर्वार्चिकः पदपाठश्च**" इत्युक्ते ग्रन्थे सङ्गृहीते च सामप्रातिशाख्यसङ्ग्रहे (१९७८क्रै., पृ. २५) किन्नु न विवृत इति नाऽवगम्यते।

हिन्दी– उत्तर पद में वर्तमान अकारादि स्वरवर्ण से सन्निकृष्ट नकार कहीं पर रेफरूप बनाकर कहीं पर रङ्गरूप बनाकर कहींपर लोपभाव में प्राप्त बनाकर और कहीं पर अनुस्वाररूप बनाकर चार प्रकार के विकारों से युक्त किया जाता है॥८॥

हृदयादुत्तिष्ठते रङ्गः कांस्येन समनिःस्वनः।
मृदुश् चैव द्विमात्रश् च दधन्वाँ इति दर्शनम्॥९॥

अन्वयः– कांस्येन समनिःस्वनः मृदुः च एव द्विमात्रः च रङ्गः हृदयाद् उत्तिष्ठते, (तत्र) दधन्वाँ इति दर्शनम् (अस्ति)।

शब्दार्थः– कांस्येन=वाद्यविशेषादिनिर्माणोपयोगिमिश्रितधातुविशेषेण, समनिःस्वनः=तुल्यशब्दः, मृदुः=अधिकनादरहितः कोमलः, च=अपि, एव=हि, द्विमात्रः=मात्राद्वयकालेनोच्चार्यः, च=अपि, रङ्गः=रङ्गनामको नासिकास्थानकोऽनुस्वारसदृशो विलक्षणो वर्णविशेषः, हृदयात्=हृत्प्रदेशात्, उत्तिष्ठते=उद्गच्छति; (तत्र=तस्मिन् विषये) दधन्वाँ इति=परितो षिञ्चतेत्यादिकायामृचि "**दधन्वाँ यो नर्यः**" इत्यत्र स्थितः प्रयोगः, दर्शनम्=उदाहरणम्, (अस्ति=वर्तते)।

सरलार्थः– वाद्यविशेषादि-निर्माणोपयोगि-मिश्रित-धातुविशेष-शब्देन तुल्येन स्वनेन युक्तोऽनुस्वारनादान् न्यूनेन नादेन युक्तत्वान् मृदुर् मात्राद्वयकालेनोच्चार्यश्च रङ्गनामको वर्णो हृदयप्रदेशादुद्गच्छति। तत्र "**दधन्वाँ यो नर्यः**" इत्यत्र स्थितः प्रयोग उदाहरणमस्ति।

विशेषः– रङ्गवर्णोच्चारणप्रक्रिया कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां द्वितीये वर्णनिरूपणाध्याये (श्लो.७९,८० पृ.२२१-२३०) रङ्गविवेकप्रकरणे विस्तरेण प्रतिपादिताऽस्ति। सा तत्रैव द्रष्टव्या।

हिन्दी– काँसे के शब्द से तुल्य शब्द से युक्त, अनुस्वार के नाद से न्यून नाद होने से कोमल और मात्राद्वयकाल में उच्चार्य रङ्गवर्ण हृदयप्रदेश से उठता है, उस में "दधन्वाँ यो नर्यः" यह प्रयोग उदाहरण हैं॥९॥

यथा सौराष्ट्रिका नारी तक्रऽाँ इत्यभिभाषते।
एवं रङ्गः प्रयोक्तव्यो नारदस्य मतं यथा॥१०॥

अन्वयः– नारदस्य मतम् यथा (अस्ति तदनुसारम्) यथा सौराष्ट्रिका नारी तक्रऽाँ इति अभिभाषते, एवम् रङ्गः प्रयोक्तव्यः (अस्ति)।

शब्दार्थः– नारदस्य=नारदनामकस्य मुनेः, मतम्=निश्चयः, यथा= यत्प्रकारकम्, (अस्ति=वर्तते, तदनुसारम्=तदनुकूलतया), यथा=येन प्रकारेण, सौराष्ट्रिका=सुराष्ट्रदेशजा, नारी=स्त्री, तक्रऽाँ इति=तक्रऽाँ इति पदम्, अभि- भाषते=वक्ति, एवम्=एतेनैव प्रकारेण, रङ्गः=रङ्गनामको वर्णः, प्रयोक्तव्यः= उच्चारणीयः, (अस्ति=भवति)।

सरलार्थः– नारदस्य मतं यत्प्रकारकं वर्तते तदनुसारं हि यथा सुराष्ट्रदेशभवा गौर्जरी वा तक्रविक्रयिणी गोपालस्त्री ह्रस्वान्तमपि तक्रपदं दीर्घान्तमिव कृत्वा तद्दीर्घीकृतस्वरप्रान्ते ह्रस्वम् आँ इत्येतादृशं वर्ण योजयित्वा स्वकीयतक्रविक्रयार्थं भ्रमणस्य काले "**तक्रऽआँ**" इतीव भाषते, एवमेव रङ्गनामको वर्ण उच्चारणीयोऽस्ति।

हिन्दी– नारद का मत जैसा है उस के अनुसार सुराष्ट्र देश (गुजरात) की तक्र बेचनै वाली गोपालस्त्री जिस प्रकार "तक्रऽाँ" इस पद को (हस्वान्त पद को भी दीर्घान्त वा प्लुतान्त जैसा बनाकर और पीछे हस्व आँ-ध्वनि को जोडकर) बोलती है उसी प्रकार से रङ्गवर्ण उच्चारणीय है॥१०॥

॥ इति द्वितीये प्रपाठके चतुर्थी कण्डिका॥

अथ द्वितीये प्रपाठके पञ्चमी कण्डिका

स्वरा गडदबाश् चैव ङणनमाः सहोष्मभिः।
चतुर्णां पदजातीनां पदान्ता दश कीर्तिताः॥१॥

अन्वयः– स्वराः गडदबाः ऊष्मभिः सह ङणनमाः च एव (इति) दश चतुर्णाम् पदजातीनाम् पदान्ताः (वर्णाः) कीर्तिताः (सन्ति)।

शब्दार्थः– स्वराः=अकारादयः स्वरवर्णाः, ग-ड-द-बाः=कवर्ग-टवर्ग-तवर्ग-पवर्गाणां तृतीया वर्णाः, ऊष्मभिः=ऊष्मनामकैर् वर्णैः, सह=साकम्, ङ-ण-न-माः=कवर्ग-टवर्ग-तवर्ग-पवर्गपञ्चमवर्णाः, च=अपि, एव=हि, (इति=एवम्प्रकारेण) दश=ग-ड-द-बाः ङ-ण-न-माः स-षौ चेति पङ्क्तिमिता व्यञ्जन-वर्णाः, चतुर्णाम्=चतसृणाम्=वेदमितानाम्, पदजातीनाम्=नामाऽऽख्याते चोप-सर्गनिपाताश्चेत्युक्तानां पदजातानाम्, पदान्ताः=पदान्ते स्थिताः (वर्णाः=अक्ष-राणि), कीर्तिताः=उक्ताः, (सन्ति=वर्तन्ते)।

सरलार्थः– अकारादयः स्वरवर्णाः, ग-ड-द-बाः ऊष्मभ्यां ष-साभ्यां सह ङ-ण-न-माश्चेति दश व्यञ्जनवर्णाश्च नामाऽऽख्यातोपसर्गनिपातरूपाणां चतसृणां पदजातीनां पदान्तस्था वर्णा उक्ताः सन्ति।

विशेषः– पदान्तस्थवर्णविषयः कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां सप्तमे सन्तानाध्याये पदान्तगामिवर्णनिरूपणप्रकरणे (श्लो.१६,१७; पृ.५९९) सम्यक् प्रतिपादितोऽस्ति। उदाहरणानि च तत्र प्रदर्शितानि। एष विषयः वाक्यस्थ-पद-विभजन-सन्धानकल्पनासौकर्याय प्रतिपादितो बोध्यः। तत्र वर्गतृतीयाः पदान्तस्था न वर्गप्रथमा इति शौनकस्य मतं शौनकीयचतुरध्यायिकायाम् (१।३-८) पदान्तगामिवर्णनिरूपणप्रकरणे प्रोक्तम्। ऋग्वेदप्रातिशाख्यादिषु सर्वत्रैव वर्गप्रथमा एव पदान्तगामिवर्णत्वेनोक्ता न वर्गतृतीयाः। अत्र नारदीयशिक्षायां तु ग-ड-द-बाः पदान्तगामिवर्णत्वेनोक्ता इत्यत्र विवेचकैरवधानं देयम्। ऋक्तन्त्रेऽपि पदान्तस्थानां वर्गतृतीयत्वं स्वीकृत्य तेषां विकारा वर्णिताः सन्ति (४।४।२-३) इति चाऽत्र स्मर्तव्यम्। नारदीयशिक्षाया आर्चिकपदपाठोपयुक्तानां

पद्यानां विवरणे प्रवृत्तेनाऽपि द्रविडदेशान्तर्गतमायूरक्षेत्राभिजनेन रामनाथ-दीक्षितेन पृथक्तया प्रचारिते, "सामवेदपूर्वार्चिकः पदपाठश्च" इत्युक्ते ग्रन्थे सङ्गृह्य प्रचारिते च सामवेदप्रातिशाख्यसङ्ग्रहे (१९७८क्रै., पृ. २६) एष श्लोकः किन्तु न विवृतः, **"जङ्घनद् द्रविणस्युः"**, **"यमत् परमाच् चित् सधस्थाद्"** इत्यादौ **"जङ्घनत्। द्रविणस्युः"**, **"यमत्। परमात्-चित्-सधस्थात्"** इति पदपाठः कथं किं शास्त्रमुपजीव्य तेन प्रदर्शित इति न विज्ञायते। एतस्मिन् विषये कौथुमसामवेदशाखाध्यायिभिर् वैदिकवरैर् लक्षणशास्त्रविज्ञैश्च विचारः कर्तव्यः। पाणिनिना तु सर्ववेदपारिषदं व्याकरणशास्त्रं रचयता **"झलां जशोऽन्ते"** (८।२।३९), **"वाऽवसाने"** (८।४।५६) इति वदता पदान्ते वर्गप्रथमा वर्गतृतीयाश्चाऽन्वाख्याताः सन्ति। ततच्छाखाध्यायिभिर् वैदिकैस् तु स्वशाखा-लक्षणशास्त्रविधिविशेषोऽवधारणीयोऽनुसरणीयश्चेत्यवगन्तव्यम्।

हिन्दी– अकारादि स्वरवर्ण, ग-ड-द-ब, ष-स के साथ में ङ-ण-न-म ये दश व्यञ्जन वर्ण भी नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात इन चार प्रकार के पदों के अन्त में आने वाले वर्ण हैं॥१॥

स्वर उच्चः स्वरो नीचः स्वरः स्वरित एव च।
व्यञ्जनान्यनुवर्तन्ते यत्र तिष्ठति स स्वरः॥२॥

अन्वयः– स्वरः उच्चः (भवति), स्वरः नीचः (भवति), स्वरः एव स्वरितः च (भवति)। स स्वरः यत्र तिष्ठति व्यञ्जनानि (तम्) अनुवर्तन्ते।

शब्दार्थः– स्वरः=अकारादिर् वर्णः, उच्चः=उदात्तः, (भवति=जायते), स्वरः=अकारादिर् वर्णः, नीचः=अनुदात्तः, (भवति=जायते), स्वरः=अकारादिर् वर्णः, एव=हि, स्वरितः=उदात्तानुदात्तसमाहाररूपस्वरयुक्तः, च=अपि, (भवति=जायते)। सः=पूर्वोक्तप्रकारः अकारादिषु वर्णेषु स्थाता, स्वरः=उदात्तादिः, यत्र=यस्मिन् अकारादिके वर्णे, तिष्ठति=आस्ते, व्यञ्जनानि=अकारादिवर्णरूपस्वराङ्ग-भूतानि कादीनि अक्षराणि, (तम्=पूर्वोक्तविधम् उदात्तादिस्वरवन्तम् अकारादिकं स्वरम्), अनुवर्तन्ते=अनुगच्छन्ति, तदीयमेवोदात्तादिकं स्वरं गृह्णन्ति।

सरलार्थः– अकारादिः स्वर उदात्तो भवति, अकारादिः स्वरोऽनुदात्तो भवति, अकारादिः स्वर एव स्वरितश्च भवति। स अकारादिषु वर्णेषु स्थाता उदात्तादिः स्वरो यस्मिन् अकारादिके स्वरवर्णे तिष्ठति तमेवोदात्तादिकस्वरवन्त-मकारादिकं स्वरवर्णं तदङ्गभूतानि कादीनि व्यञ्जनानि तदीयस्वरग्रहणेनाऽनुगच्छन्ति।

हिन्दी– अकारादि स्वरवर्ण उदात्त होता है, अकारादि स्वरवर्ण अनुदात्त होता है, अकारादि स्वरवर्ण ही स्वरित भी होता है। उस प्रकार का अकारादि स्वरवर्ण में रहने वाला उदात्तादि स्वर जिस अकारादि वर्ण में रहता है उस अकारादि स्वरवर्ण के अङ्गभूत व्यञ्जन भी उसी उदात्तादि स्वरयुक्त अकारादि वर्ण का अनुगमन करते हैं, उसी अकारादि स्वर के उदात्तादि स्वर को लेते हैं॥२॥

स्वरप्रधानं त्रैस्वर्यमाचार्याः प्रतिजानते।
मणिवद् व्यञ्जनं विद्यात् सूत्रवच् च स्वरं विदुः॥३॥

अन्वयः– आचार्याः त्रैस्वर्यम् स्वरप्रधानम् प्रतिजानते। व्यञ्जनम् मणिवद् विद्यात्, स्वरं च सूत्रवद् विदुः।

शब्दार्थः– आचार्याः=सदाचारवन्तः साङ्गसरहस्यवेदाध्यापकाः गुरवः, त्रैस्वर्यम्=उदात्ता-ऽनुदात्त-स्वरितस्वरत्रयम्, स्वरप्रधानम्=अकारादिवर्णप्रमुखा-श्रयम्, प्रतिजानते=कथयन्ति। व्यञ्जनम्=कादिव्यञ्जनवर्णम्, मणिवत्=सूत्रे प्रोतेन मणिना तुल्यम्, विद्यात्=जानीयात्, स्वरम्=अकारादिकं स्वरवर्णम्, च=अपि, सूत्रवत्=अनेकमणिग्रथनसमर्थेन तन्तुना तुल्यम्, विदुः=जानन्ति।

सरलार्थः– सदाचारवन्तः साङ्गसरहस्यवेदाध्यापका गुरवः उदात्ता-ऽनुदात्त-स्वरितस्वरत्रयं प्रमुखरूपेणाऽकारादिषु स्वरवर्णेष्वाश्रितं प्रतिपादयन्ति, ककारादिव्यञ्जनवर्णं सूत्रे प्रोतेन मणिना तुल्यं जानीयात्, अकारादिकं स्वरवर्णं च अनेकमणिग्रथनसमर्थेन सूत्रेण तुल्यं जानन्ति।

हिन्दी– सदाचारवान् साङ्ग सरहस्य वेद के अध्यापक गुरु लोग उदात्त अनुदात्त और स्वरित इन तीन स्वरों को प्रमुख रूप में अकारादि स्वरवर्ण में आश्रित होने वाले बताते हैं, ककारादि व्यञ्जन वर्ण को धागे में पिरोए हुए मणि के तुल्य जाने, अकारादि स्वरवर्ण को अनेक मणियों को गूँथने में समर्थ धागे का तुल्य जानते हैं॥३॥

दुर्बलस्य यथा राष्ट्रं हरते बलवान् नृपः।
दुर्बलं व्यञ्जनं तद्वद् धरते बलवान् स्वरः॥४॥

अन्वयः– यथा बलवान् नृपः दुर्बलस्य (नृपस्य) राष्ट्रम् हरते, तद्वत् बलवान् स्वरः दुर्बलम् व्यञ्जनम् हरते।

शब्दार्थः– यथा=येन प्रकारेण, बलवान्=बलयुक्तः, नृपः=भूपः, दुर्बलस्य=अल्पबलस्य, (नृपस्य=भूपस्य), राष्ट्रम्=सभूमिं प्रजागणम्, हरते= आच्छिनत्ति, स्वाधीनं कुरुते; तद्वत्=तेनैव प्रकारेण, बलवान्=बलयुक्तः, स्वरः=अकारादिकः स्वरवर्णः, दुर्बलम्=अल्पबलम्, व्यञ्जनम्=ककारादिकं व्यञ्जनवर्णम्, हरते=स्वाधीनं कुरुते।

सरलार्थः– यथा अधिकबलो नृपः अल्पबलस्य नृपस्य सभूमिं प्रजागणं स्वाधीनं कुरुते, तथैव बलवान् अकारादिस्वरवर्णः दुर्बलं ककारादिकं व्यञ्जनवर्णं स्वाधीनं कुरुते।

विशेषः– अकारादीनां स्वरवर्णानां बलवत्त्वं नाम स्वतन्त्रतयाऽपि उच्चारयितुं शक्यत्वम्, ककारादीनां व्यञ्जनानां दुर्बलत्वं नाम स्वतन्त्रतयो-च्चारयितुमपि अशक्यत्वम्, अक्षरे अकारादिस्वराङ्गतयैव स्थातृत्वं च ज्ञेयम्। उक्तं हि पाणिनीयव्याकरणभाष्यकारेण मुनिना पतञ्जलिना "**न पुनरन्तरेणाऽचं व्यञ्जनस्योच्चारणमपि भवति, अन्वर्थं खल्वपि निर्वचनं स्वयं राजन्त इति स्वरा अन्वग् भवतीति व्यञ्जनम्**" इति (१।२।२९-३०)।

हिन्दी– जैसे अधिक बलवान् नृपति अल्पबल वाले नृपति के राष्ट्र को अपने अधीन में कर लेता है वैसे ही बलवान् अकारादि स्वरवर्ण दुर्बल ककारादि व्यञ्जन वर्ण को अपने अधीन में कर लेता है॥४॥

ओभावश्च विवृत्तिश् च शषसा रेफ एव च।
जिह्वामूलमुपध्मा च गतिरष्टविधोष्मणः॥५॥

अन्वयः– ऊष्मणः ओभावः च विवृत्तिः च शषसाः रेफः एव च जिह्वामूलम् उपध्मा च (इति) अष्टविधा गतिः (भवति)।

शब्दार्थः– ऊष्मणः=विसर्गस्य, ओभावः=ओकारत्वप्राप्तिः, च=अपि, विवृत्तिः=रिक्त-कालताप्राप्तिः (लोपविशेषः), च=अपि शषसाः=शकारभाव-षकारभाव-सकारभावाः, रेफः=रवर्णत्वप्राप्तिः, एव=हि, च=अपि, (इति= एवम्प्रकारेण), अष्टविधा= गजमितप्रकारा, गतिः=परिणतिः, (भवति=जायते)।

सरलार्थः– विसर्गस्य ओकारभावः, विवृत्तिः, शकारभावः, षकारभावः, सकारभावः, रेफभावः, जिह्वामूलीयभावः, उपध्मानीयभावश्चेति अष्टप्रकारा परिणतिर्भवति।

विशेषः–वस्तुत एष विषयः सन्तान-(=संहिता =सन्धि-)प्रकरणे शिष्यधीवृद्धयेऽवान्तरप्रकरणत्वेन प्रतिपादयितुमुचितः। सन्धि-विषयस्तु अस्यां शिक्षायामुपेक्षित इत्ययं विषयोऽपि अत्र सुतरामुपेक्षितुं शक्यः। कौण्डिन्न्यायन-शिक्षायां तु विसर्गपरिणति-विशेषाः सन्तानाध्याये एव निरूपिता बोध्याः (पृ. ६७४-६८०, ७००-७१०)।

वैदिके पाठे स्वराद् अव्यवहिते स्वरे परे मध्ये लघीयान् विरामो विवृत्तिरित्युच्यते। द्वयोः स्वरवर्णयोरुच्चारणयोर्मध्ये वर्णोच्चारणरहितो रिक्तः कालविशेष एव करणव्यापारनिवृत्तियुतो विवृत्तिशब्दबोधितो वेदितव्यः।

हिन्दी– ओकार होना, विवृत्ति होना, शकार होना, षकार होना, सकार होना, रेफ होना, जिह्वामूलीय होना, और उपध्मानीय होना- इन आठ प्रकारों से विसर्ग की गति होती है।

विशेष– इस शिक्षा में शिक्षाशास्त्र के वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम और सन्तान (=संहिता=सन्धि) इन छह मुख्य विषयों में छठा मुख्य विषय सन्तान (=सन्धि) विशेष रूप में प्रतिपादित नहीं है। अतः प्रस्तुत पद्य से प्रतिपादित विषय यहां उपेक्षणीय है।

वैदिक पाठ में स्वर से अव्यवहित उत्तर में स्वर होने पर स्वरों के बीच में जो लघु विराम किया जाता है वही विवृत्ति कही जाती है॥५॥

स्वरप्रत्यया विवृत्तिः संहितायां तु या भवेत्।
विसर्गस् तत्र मन्तव्यस् तालव्यो वाऽत्र जायते॥६॥

अन्वयः– संहितायाम् तु या स्वरप्रत्यया विवृत्तिः भवेत् तत्र (पदे पूर्वपदान्ते) विसर्गः मन्तव्यः, अत्र (पूर्वपदान्ते) तालव्यः वा जायते।

शब्दार्थः– संहितायाम्=संहितापाठे, तु=हि, या=आकाङ्क्षाबुद्धिविशेष-विषयभूता, स्वरप्रत्यया=अकारादिस्वरवर्णपरा, विवृत्तिः=स्वरद्वयमध्यस्था विरतिः, भवेत्=स्यात्, तत्र=तस्मिन् स्थले, (पदे=पदपाठे, पूर्वपदान्ते=प्राग्-वर्तिनः पदस्याऽन्ते), विसर्गः=विसर्जनीयो वर्णः, मन्तव्यः=अवबोद्धव्यः, अत्र= एतादृशे स्थले, (पूर्वपदान्ते=प्राग्वर्तिनः पदस्याऽन्ते), तालव्यः=तालुस्थानको वर्ण एकारः ऐकारो वा, वा=अथवा, जायते=प्रादुर्भवति।

सरलार्थः– संहितापाठे या आकारादिस्वरपरा विवृत्तिर् भवेत् तत्र पदपाठे पूर्वपदान्ते विसर्गो भवेत्, अथवा तादृशे स्थले पूर्वपदान्ते तालव्यो वर्ण एकारो ऐकारो वा भवेत्।

विशेषः– अत्रोदाहरणानि "**विश्वस्या अरातेः, विश्वस्याः अरातेः; भरन्त एमसि, भरन्तः एमसि; वर्धास इन्दुभिः वर्धासे इन्दुभिः; वन्दध्या अग्निम् वन्दध्यै अग्निम्**" इत्यादीनि ज्ञेयानि। अत्र एकारैकारयोस्तालव्यत्वं शिक्षाग्रन्थेषु क्वचित् प्रसिद्धमस्तीति न विस्मर्तव्यम्। एकारैकारस्थानविचारः कौण्डिन्न्यायनशिक्षायाम् द्वितीये वर्णनिरूपणाध्याये 'ए ऐ ओ औ इत्त्येतेषां विवेचनम्' इति प्रकरणे (श्लो.६९-७१, पृ.२०९-२१३) पञ्चमे बलनिरूपणाऽध्याये वर्णविशेषस्थानविशेषनिरूपणे (श्लो.१०,११; पृ.४८५-४८९) च द्रष्टव्यः।

हिन्दी– संहितापाठ में जो अकारादिस्वरपरक विवृत्ति होगी वहाँ पदपाठ में पूर्व-पदान्त में विसर्ग होगा, अथवा वैसे स्थल में पूर्वपदान्त में तालव्य स्वर (ए वा ऐ) होगा॥६॥

सन्ध्यक्षरोपधे सन्धौ प्राप्तलुप्तौ यवौ यदि।
व्यञ्जनाख्या विवृत्तिस् तु स्वराख्या प्रकृतिसंहिता॥७॥

अन्वयः– सन्ध्यक्षरोपधे सन्धौ यदि यवौ प्राप्त-लुप्तौ (भवतः, तदा) विवृत्तिः तु व्यञ्जनाख्या (भवति) प्रकृतिसंहिता स्वराख्या (भवति)।

शब्दार्थः– सन्ध्यक्षरोपधे=सन्ध्यक्षरपूर्वके, सन्धौ=योगे, यदि=चेत्, यवौ=यकारवकारौ, प्राप्तलुप्तौ=पूर्वं प्राप्तौ पश्चाल् लुप्तौ, (भवतः=जायेते, तदा=तस्यामवस्थायाम्), विवृत्तिः=विरतिः, व्यञ्जनाख्या=व्यञ्जनव्यपदेश्या,

(भवति=जायते), प्रकृतिसंहिता=प्रकृतिरूपा मूलसंहिता, स्वराख्या=स्वरव्यपदेश्या (भवति=जायते)।

सरलार्थः– सन्ध्यक्षरपूर्वके सन्धौ यदि यकारवकारौ पूर्वं विहितौ पश्चाल् लुप्तौ भवतस् तदा विवृत्तिर् व्यञ्जनाख्या भवति प्रकृतिसंहिता तु स्वराख्या भवति।

विशेषः– अत्रोदाहरणानि "**अग्न आयाहि, अग्ने आयाहि; अग्न इत्था, अग्ने इत्था; वर्धास इन्दुभिः, वर्धासे इन्दुभिः; वन्दध्या अग्निम्, वन्दध्यै अग्निम्; तस्मा उ अद्य, तस्मै उ अद्य; विष्णवागहि, विष्णो आगहि; मातरावन्वेति, मातरौ अन्वेति; यावाहुः, यौ आहुः**" इत्यादीनि ज्ञेयानि। अत्र पूर्वं यकारवकारयोः प्राप्तिः "**सन्ध्यमयवायावम्**" (३।६।१) इति ऋक्तन्त्रवचनाद् ज्ञेया; पश्चाद् यवयोर् लोपश्च "**यः, रमध्ये, वमेके, अर्धं वा, वं नैगिरुस्थे**" (४।२।८-४।३।२) इति ऋक्तन्त्रवचनेभ्यो ज्ञेयः।

हिन्दी– सन्ध्यक्षरपूर्वक सन्धि में यदि यकार और वकार पहले प्राप्त होकर पीछे लुप्त हो जाते हैं तो वहाँ विवृत्ति व्यञ्जनाख्या कहलाती है औ प्रकृति संहिता स्वराख्या कहलाती है॥७॥

ऊष्मान्तं विरते यत्र सन्धावो भवते च यत्।
विवृत्तिर् या भवेत् तत्र स्वराख्यां तां विनिर्दिशेत्॥८॥

अन्वयः– यत्र विरते (पदम्) ऊष्मान्तम् (भवति), यत् सन्धौ च ओ भवते, तत्र या विवृत्तिः भवेत् ताम् स्वराख्याम् विनिर्दिशेत्।

शब्दार्थः– यत्र=यस्मिन् स्थले, विरते=विरामे, पदान्ते विरामे, (पदम्=सुबन्ततिङन्तान्यतरशब्दः), ऊष्मान्तम्=विसर्गान्तम्, (भवति=जायते), यदि=चेत्, सन्धौ=संहितावस्थायाम्, च=अपि, ओ=ओकारः, भवते=भवति=जायते, तत्र=तादृशे स्थले, या=आकाङ्क्षाबुद्धिविशेषविषयभूता, विवृत्तिः=विरतिः, भवेत्=स्यात्, ताम्=तादृशीं विवृत्तिम्, स्वराख्याम्=स्वरव्यपदेश्याम्, निर्दिशेत्=प्रतिपादयेत्।

सरलार्थः– यस्मिन् स्थले पदान्ते विरामे पदं विसर्गान्तं भवति, यदि सन्धौ तस्य पदान्तविसर्गस्य ओकारभावो भवति, तादृशे स्थले या विवृत्तिर् भवति तां विवृत्तिं स्वराख्यां वदेत्।

विशेषः– अत्रोदाहरणानि "**प्रेष्ठं वो अतिथिम्, प्रेष्ठम् वः अतिथिम्; त्वं नो अग्ने, त्वं नः अग्नेः; यज्ञायज्ञा वो अग्नये, यज्ञायज्ञा वः अग्नये; पाहि नो अग्न एकया, पाहि नः अग्ने एकया; चित्रं राधो अमर्त्य, चित्रम् राधः अमर्त्य; आनो अग्ने वयोवृधम्, आ नः अग्ने वयोवृधम्; एना वो अग्निम्, एना वः अग्निम्; प्र दैवोदासो अग्निः प्र दैवोदासः अग्निः**" इत्यादीनि ज्ञेयानि।

हिन्दी– जिस स्थल में पदान्त में विराम होने पर (पद पाठ में) पद विसर्गान्त होता हैं, यदि संहिता काल में उस पदान्त विसर्ग का ओकारभाव होता है तो उस स्थल में जो विवृत्ति होती है उस विवृत्ति को स्वराख्या विवृत्ति कहे ॥८॥

यद्योभावप्रसन्धानमुकारादिपरं पदम्।
स्वरान्तं तादृशं विद्याद् यदन्यद् व्यक्तमूष्मणः॥९॥

अन्वयः– यदि ओभावप्रसन्धानम् पदम् उकारादिपरम् (तर्हि) तादृशम् (पदम्) स्वरान्तम् विद्यात्, यद् अन्यत् (ओभावप्रसन्धानम् पदम्) तत् (पदम्) व्यक्तम् ऊष्मणः (गतिविशेषेण ओभावप्राप्तिरूपेण युक्तम् पदम् विद्यात्)।

शब्दार्थः– यदि=चेत्, ओभावप्रसन्धानम्=ओकारत्वप्राप्तिमता सन्धिना युक्तम्, पदम्=सुबन्तं तिङन्तं वा, उकारादिपरम्=परस्थितोकारादिकपदम्, (तर्हि=तदा), तादृशम्=उक्तविधलक्षणयुक्तम् (पदम्=सुबन्तं तिङन्तं वा), स्वरान्तम्=अजन्तम् (अन्त्याकारस्वरम्), विद्यात्=जानीयात्, यद्=साकाङ्क्ष-बुद्धिविशेषविषयभूतम्, अन्यत्=इतरत् (परस्थिताऽनुकारादिकपदम् ओकार-प्रसन्धानं पदम्), तत्=तादृशम् (पदम्), व्यक्तम्=स्पष्टरूपेण, ऊष्मणः= विसर्गस्य (गतिविशेषेण ओभावप्राप्तिरूपेण युक्तं पदं विद्यात्)।

सरलार्थः– यदि ओभावप्राप्तिमता सन्धिना युक्तं पदम् उकारादि-कपदपरं तर्हि तादृशं पदम् अकारस्वरान्तं जानीयात्, यत् परस्थिताऽनुकारादि-

कपदम् ओभावप्राप्तिमता सन्धिना युक्तं पदं तत् स्पष्टरूपेण विसर्गस्य ओभाव-प्राप्तिरूपेण गतिविशेषेण युक्तं पदं जानीयात्।

विशेषः– एतस्मिन् पद्ये वाक्यरचना विसंस्थुला अध्याहारेण पूरणीयेति पद्यमेतद् ग्रन्थप्रवक्तुरपरिष्कृतां शैलीं प्रमाणयति।

हिन्दी– यदि ओभावप्राप्तियुक्त सन्धि से युक्त पद से अन्यवहित परवर्ती पद उकारादि है तो उस पूर्व पदको अकारस्वरान्त जाने, जो अन्यवहित परवर्ती अनुकारादि पद से युक्त ओभावप्राप्तियुक्त सन्धि से युक्त पूर्व पद है उस को स्पष्ट रूप से विसर्ग के ओभावप्राप्तिरूप गतिविशेष से युक्त पद जाने। (यथा 'सूर्योदयः' में उत्तरपद उकारादि होने से समासान्तर्गत पूर्वपद सूर्य स्वरान्त है, 'बालको गच्छति' में उत्तरपद उकारादि नहोने से पूर्वपद बालकः ऊष्मान्त {विसर्गान्त} है यह निश्चय हो जाता है।) ॥९॥

प्रथमा उत्तमाश् चैव पदान्तेषु यदि स्थिताः।
द्वितीयं स्थानमापन्नाः शषसाः प्रत्यया यदि॥१०॥

अन्वयः– यदि प्रथमाः उत्तमाः च एव पदान्तेषु स्थिताः (भवन्ति) (तत्र) यदि शषसाः प्रत्ययाः (भवन्ति तदा ते) द्वितीयम् स्थानम् आपन्नाः (भवन्ति)।

शब्दार्थः– यदि=चेत्, प्रथमाः=स्पर्शवर्गेषु आद्या वर्णाः, उत्तमाः= स्पर्शवर्गेषु अन्तिमा वर्णाः, च=अपि, एव=हि, पदान्तेषु=पदानामन्तेषु, स्थिताः= वर्तमानाः, (भवन्ति=जायन्ते), (तत्र=तस्मिन् स्थले), यदि=चेत्, शषसाः= तालव्यशकार-मूर्धन्यषकार-दन्त्यसकाराः, प्रत्ययाः=उत्तरवर्तिनः, (भवन्ति= जायन्ते, तदा=तस्यामवस्थायाम्, ते=प्रथमाः पञ्चमाश्च, द्वितीयम्=वर्गेषु द्वयोः पूरणम्, स्थानम्=स्थलम्, द्वितीयत्वम्, आपन्नाः=प्राप्ताः, (भवन्ति=जायन्ते)।

सरलार्थः– यदि स्पर्शानां पञ्चसु वर्गेषु प्रथमाः पञ्चमाश् च वर्णाः पदान्तेषु स्थिता भवन्ति, तत्र यदि शषसाः उत्तरवर्तिनो भवन्ति तदा ते प्रथमाः पञ्चमाश्च स्वस्ववर्गद्वितीयत्वमापन्ना भवन्ति।

विशेषः– एतस्मिन् विषये कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां सप्तमे सन्तान-निरूपणाध्याये (श्लो.१०६, पृ.६८२-६८४) नानाप्रातिशाख्यशिक्षाग्रन्थवचन-

विचारेण व्यवस्था प्रदर्शिताऽस्ति। नारदीयशिक्षायां पञ्चमानामपि द्वितीयत्वप्राप्तिः केनाऽभिप्रायेणोक्तेति न विज्ञायते। पञ्चमानां पदान्तत्वे आगन्तुकानां प्रथमानां "प्रत्यङ्ख्सोमः" इत्यादाविव द्वितीयत्वापत्तिं विचार्यैव तथोक्तं स्यादिति सम्भाव्यते।

हिन्दी – यदि स्पर्शवर्णों के पाँच वर्गों में प्रथम और पञ्चम वर्ण पदान्त में आते हैं और उन के उत्तरस्थान में यदि श-ष-स आते हैं तो वे प्रथम और पञ्चम वर्ण स्व-स्ववर्ग के द्वितीय वर्ण के रूप में परिणत हो जाते हैं ॥१०॥

प्रथमानूष्मसंयुक्तान् द्वितीयानिव दर्शयेत्।
न चैनान् प्रतिजानीयाद् यथा मत्स्यः क्षुरोऽप्सरा ॥११॥

अन्वयः – ऊष्मसंयुक्तान् प्रथमान् द्वितीयान् इव दर्शयेत्। एनान् न च प्रतिजानीयात्, यथा मत्स्यः क्षुरः अप्सरा।

शब्दार्थः – ऊष्मसंयुक्तान्=ऊष्मसंज्ञकैः शषसैः सङ्गतान्, प्रथमान्=स्पर्शानां पञ्चसु वर्गेषु आद्यान् वर्णान्, द्वितीयान्=स्पर्शानां पञ्चसु वर्गेषु द्वयोः पूरकान् वर्णान्, इव=यथा=तुल्यतया, दर्शयेत्=उच्चारयेत्। एनान्=द्वितीयान्, न=नहि, च=अपि, प्रतिजानीयात्=प्रतिपादयेत्। यथा=यद्वत्, मत्स्यः=मत्स्य-शब्दः, क्षुरः=क्षुरशब्दः, अप्सरा=अप्सरा इति शब्दश्च।

सरलार्थः – ऊष्मसञ्ज्ञकैः शषसैः संयुक्तान् स्पर्शवर्गेषु प्रथमान् कादिवर्णान् द्वितीयानिव उच्चारयेत्। एनान् द्वितीयानिवोच्चरितान् प्रथमान् द्वितीयानेव तु न मन्येत। तत्रोदाहरणानि यथा– मत्स्यः, क्षुरः, अप्सरा इति।

विशेषः – ऋग्वेदप्रातिशाख्ये तु **"ऊष्मोदयं प्रथमं स्पर्शमेके द्वितीय-माहुरपदान्तभाजम्"** (६।५४) इत्युक्तमस्ति। अत्र तु द्वितीयसादृश्यमेव विहितम्, न तु सर्वथा द्वितीयत्वमेव। तथा चाऽन्येषां शाखायां क्वचित् विरफ्शी ख्सुरः अफ्सराः इत्यादिरूपेणैवोच्चारणम्, नारदीयशिक्षाऽन्वाख्यातायां सामवेदशाखायां तु तादृशे स्थले वर्गप्रथमानां वर्णानां किञ्चिदिव महाप्राणत्वं सम्पाद्योच्चारणं भवतीति विवेक्तव्यम्।

हिन्दी– ऊष्मसंज्ञक श-ष-स वर्णों से संयुक्त स्पर्शवर्ग के प्रथम वर्णों को वर्ग-द्वितीय की भाँति बोले। इस प्रकार से बोले गए वर्णों को वर्गद्वितीय वर्ण ही तो न मानें। इस में उदाहरण के रूप में मत्स्य, क्षुर, अप्सरा ये शब्द लेने चाहिए ॥११॥

॥ इति द्वितीये प्रपाठके पञ्चमी कण्डिका॥

अथ द्वितीये प्रपाठके षष्ठी कण्डिका

छन्दो मानं च वृत्तं च पादस्थानं त्रिकारणम्।
ऋचः स्वच्छन्दवृत्तास् तु पादास् त्वक्षरमानतः॥१॥

अन्वयः– छन्दः मानम् च वृत्तम् च (इति) त्रिकारणम् पादस्थानम् (भवति)। ऋचः तु स्वच्छन्दवृत्ताः (भवन्ति)। पादाः तु अक्षरमानतः (नियताः भवन्ति)।

शब्दार्थः– छन्दः=गलस्वरपरिमाणविशेषावच्छिन्नरचनारूपं गायत्री-प्रभृतिकं वाङ्मयम्, मानम्=अक्षरप्रमाणम्, वृत्तम्=लघुगुर्वक्षरनिवेशविशेष-सम्पाद्यश् छन्दःप्रकारभेदः, (इति=एवं प्रकारेण) त्रिकारणम्=त्रिभिः कारणैर् निश्चेयम्, पादस्थानम्=पादावसानम्, (भवति=वर्तते)। ऋचः=ऋचाः, तु=हि, स्वच्छन्दवृत्ताः=अनियत-लघुगुर्वक्षर-निवेशविशेष-सम्पाद्य-च्छन्दःप्रकार-भेदाः, (भवन्ति=वर्तन्ते)। पादाः=तत्तच्छन्दस्सु वर्तमानानाम् ऋचां लौकिकानां पद्यानां वा भागविशेषाः, तु=हि, अक्षरमानतः=सव्यञ्जनानां सानुस्वराणां शुद्धानामेव वाऽपि अकारादीनां स्वराणां सङ्ख्यातः, (नियताः=परिमिताः, भवन्ति=वर्तन्ते)।

सरलार्थः– छन्दः, अक्षरप्रमाणम्, वृत्तं चेत्येतैस् त्रिभिः कारणैः पादावसानं विज्ञेयं भवति, लौकिके पद्ये वृत्तस्य विचारे आवश्यकेऽपि ऋचस् तु अनियत-लघुगुर्वक्षरनिवेशविशेषसम्पाद्यच्छन्दःप्रकारभेदा भवन्ति, ऋचां लौकिकानां पद्यानां वा पादास्तु सव्यञ्जनानां सानुस्वाराणां केवलानामेव वाऽपि स्वराणां सङ्ख्यया परिमिता भवन्ति।

विशेषः– सन्धिविशेषेषु यकारोच्चारणविशेषे स्वरभक्त्युच्चारणे च पादादि-पादान्त-पादपरिमाण-ज्ञानस्याऽऽवश्यकत्वादत्र ऋक्पाद-लौकिकपद्य-पादविचारः कृतोऽवगम्यते।

हिन्दी– छन्द, अक्षरप्रमाण, वृत्त इन तीन कारणों से पाद का अवसान ज्ञेय होता है, लौकिक पद्य में लघुगुरुसन्निवेशविशेषजन्य वृत्तरूप छन्दःप्रकार का विचार आवश्यक होने पर भी ऋचाएँ अनियत-वृत्त वाली होती हैं, ऋचा के अथवा लौकिक पद्य के पाद व्यञ्जनसहित वा केवल स्वरों की सङ्ख्या से परिमित होते हैं॥१॥

ऋवर्णं स्वरभक्तिं च च्छन्दोमानेन निर्दिशेत्।
प्रत्ययेन सहाऽरेफं मिमीत स्वरभक्तिषु॥२॥

अन्वयः– छन्दोमानेन ऋवर्णम् स्वरभक्तिम् च निर्दिशेत् स्वरभक्तिषु प्रत्ययेन सह अरेफम् (अक्षरम्) मिमीत।

शब्दार्थः– छन्दोमानेन=छन्दसः सम्बद्धे पादे वर्तमानानाम् अक्षराणां सङ्ख्याया विचारेण, ऋवर्णम्=ऋकारम्, स्वरभक्तिम्=स्वरभागम्, च=अपि, निर्दिशेत्=उच्चार्यत्वेन प्रतिपादयेत्। स्वरभक्तिषु=स्वरभागेषु उच्चार्येषु, प्रत्ययेन= उत्तरवर्णेन, सह=साकम्, अरेफम्=पृथग्भूतरेफम् (अक्षरम्=व्यञ्जनसहितं स्वरवर्णम्), मिमीत=गणयेत्।

सरलार्थः– छन्दोविशेषस्य सम्बद्धे पादे वर्तमानानामक्षराणां सङ्ख्याया विचारेण ऋकारस्वरभागरूपां स्वरभक्तिमुच्चारयेत्। पादपूर्त्यै स्वरभक्तिषु उच्चार्यासु उत्तरवर्णेन सह पृथग्भूतरेफमक्षरं गणयेत् (पादपूर्त्यै स्वरभक्तिं पृथगक्षररूपेण उच्चारयेद् गणयेच्च)।

विशेषः– "**पुनानः सोम धारयाऽपो वसानो अर्षसि**" (१।५।५।१), "**इन्द्रश्च वायवेषाँ सोमानां पीतिमर्हथः**" (२।१७।२।२) इत्यादौ रेफः स्वरभक्ति-रवगम्यते। लोकेऽपि वाल्मीकिरामायणे "**हरुषसमाकुलितैर् निरीक्ष्यमाणः**" (६।९७।३८) इति, भागवते "**तमस् तीव्रं तितीरिषुः**" (४।२२।३४), "**भोज्यां कन्यामहारषीत्**" (९।२३।३६), "**कान्तं स्म रेचकजिहीरषयोपगुह्य**"

(१०।९०।१०), "**आपूर्यमाणो वरषद्भिरम्बुदैः**" (१२।९।१४) इत्यादिषु स्थलेषु वृत्तपूरणाय रेफः स्वरभक्तिरूपेणोच्चार्यते इति विज्ञायते।

हिन्दी– किसी छन्द के पाद में वर्तमान अक्षरों के विचार से छन्द की वा पाद की पूर्ति के लिए रेफ को ऋकारस्वरभागरूप स्वरभक्ति के रूप में बोले। पादपूर्ति के लिए स्वरभक्ति का उच्चारण करने पर रेफोत्तरवर्ती वर्ण से पृथक् रूप में रेफ-स्वरभक्ति को गिने॥

ऋवर्णे तु पृथग् रेफः प्रत्ययस् तु पृथग् भवेत्।
विद्याल् लघुमृकारं तु संयुतो यदि नोष्मणा॥३॥

अन्वयः– ऋवर्णे (परे) तु रेफः पृथक् (भवेत्) प्रत्ययः तु पृथक् भवेत्। (ऋकारः) यदि ऊष्मणा संयुतः न (भवति तदा तम्) ऋकारम् तु लघुम् विद्यात्।

शब्दार्थः– ऋवर्णे=ऋकारे, (परे=उत्तरवर्तिनि सति), तु=हि, रेफः= रकारः, पृथक्=विश्लिष्टः, (भवेत्=स्यात्), प्रत्ययः=उत्तरवर्ती ऋकारः, तु=हि, पृथक्=विश्लिष्टः, भवेत्=स्यात्, (ऋकारः=ऋवर्णः), यदि=चेत्, ऊष्मणा= ऊष्मसंज्ञकेन वर्णेन, संयुतः=मिलितः, न=नहि, (भवति=वर्तते, तदा=तस्या-मवस्थायाम्), ऋकारम्=ऋवर्णम्, तु=हि, लघुम्=अगुरुम्, विद्यात्=जानीयात्।

सरलार्थः– ऋकारे परे सति तु रेफः ऋकाराद् विश्लिष्ट एव भवेत्, अन्यस्मिन् स्वरे परे स्थिते इव परत्र स्थितेन ऋकारस्वरेण सम्मिलितो न भवेत्, रेफात् परत्र स्थितो ऋकारश्च रेफात् पृथगेव तिष्ठेत्, (तयोरेकाक्षरत्वं न भवेत्), यदि ऋकारः ऊष्मवर्णेन संयुतो न भवति तदा ऋकारं लघुं जानीयात्।

विशेषः– ऋकारे परेऽपि माध्यन्दिनीयवाजसनेयिनां मन्त्रसंहितायां रेफस्य स्वरभक्तिरूपेणोच्चारणं कर्तव्यमिति अन्वाख्यानं प्रतिज्ञासूत्रे (२।३) अस्ति। अत्र नारदीयशिक्षायामपि तादृश्येव व्यवस्थाऽवगम्यते। **त्रातर्ऋतः कविः** (१।१।४।८), **वेत्था हि निर्ऋतीनाम्** (१।४।५।६), **सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः** (१।४।१२।७), **प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिम्** (१।५।६।३), **वाणीर्ऋषीणाम्** (१।५।१०।१२) इत्यादौ

रेफः स्वरभक्तिरूपेणोच्चार्यते न वा, "त्रातरृतः कविः" इत्यादिरूपेणाऽलिखित्वा "त्रातर्ऋतः कविः" इत्यादिरूपेण लेखने कोऽभिप्रायः स्यादिति च लक्षणविचक्षणैर् वैदिकैः पण्डितैश्च परिचिन्तनीयम्। स्वरभक्तिविषये कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां द्वितीये वर्णनिरूपणाध्याये. स्वरभक्तिविवेकप्रकरणे (श्लो.८५, पृ.२४८-२५५) विस्तरेण विचारः कृतोऽस्ति। स तत्रैव द्रष्टव्यः।

हिन्दी– ऋकार परे रहने पर रेफ ऋकार से विश्लिष्ट ही रेहेगा, जैसे परवर्ती दूसरे स्वरों से रेफ एकाक्षराङ्ग होकर मिल जाता है वैसे ऋकार से एकाक्षराङ्ग होकर नहीं मिलेगा; रेफ से परवर्ती ऋकार भी रेफ से पृथग् ही रहेगा। यदि ऋकार ऊष्मवर्ण से युक्त नहीं है तो उस ऋकार को लघु जाने॥३॥

ऊष्मणैव हि संयुक्त ऋकारो यत्र पीड्यते।
गुरुवर्णः स विज्ञेयः शृतासोऽत्राऽनुदर्शनम्॥४॥

अन्वयः– यत्र संयुक्तः ऋकारः ऊष्मणा एवं हि पीड्यते स (ऋकारः) गुरुवर्णः विज्ञेयः (अस्ति)। अत्र अनुदर्शनम् शृतासः (अस्ति)।

शब्दार्थः– यत्र=यस्मिन् स्थले, संयुक्तः=स्वेन सह मिलितः, ऋकारः= ऋवर्णः, ऊष्मणा=ऊष्मसंज्ञकेन व्यञ्जनवर्णेन, पीड्यते=सम्बाध्यते, सः=तादृश ऊष्मणा सम्बाधितः, (ऋकारः=ऋवर्णः), गुरुवर्णः=अलघुवर्णः, विज्ञेयः=वेद्यः, (अस्ति=वर्तते)। अत्र=एतस्मिन् विषये, अनुदर्शनम्=निदर्शनम्=उदाहरणम्, शृतासः=शृतासः इत्येतस्मिन् पदे वर्तमानस् तालव्यशकाररूपेण ऊष्मवर्णेन पीड्यमानः ऋकारः, (अस्ति=वर्तते)।

सरलार्थः– यस्मिन् स्थले ऊष्मसंज्ञकेन व्यञ्जनवर्णेन स्वसंयुक्तः ऋवर्णः सम्बाध्यते, तादृश ऊष्मवर्णेन सम्बाधित ऋवर्णो गुरुर् विज्ञेयः, अत्रोदाहरणं च "भृतासः" (१।५।९।१२) इति वर्तते।

विशेषः– अत्र श्लोके स्वृचम् इति स्तृचमिति च पाठो ग्रन्थसम्पादकैर् लिखितः, स त्वनुपपन्न इति "शृतासः" इति पाठः कल्पितो ज्ञेयः। अत्र ऋकारस्य

ह्रस्वत्वेऽपि "शृ" इत्यक्षरस्य यथार्थे शुद्धे वैदिके उच्चारणे वैशिष्ट्यात् तस्य गुरुत्वं भवतीति निपुणं निभालनीयम्।

हिन्दी– जिस स्थल में ऊष्मसंज्ञक व्यञ्जनवर्ण से स्वसंयुक्त ऋवर्ण पीडित होता है, वैसे ऊष्मपीडित ऋवर्ण को गुरु उच्चरित होने वाला जानना चाहिए, इस में उदाहरण "शृतासः" इस पद में वर्तमान ऋवर्ण है ॥४॥

ऋषभं च गृहीतं च बृहस्पतिं पृथिव्यां च।
निर्ऋतिपञ्चमा ह्यत्र ऋकारा नाऽत्र संशयः ॥५॥

सरलार्थः– ऋषभम् गृहीतम् बृहस्पतिम् पृथिव्याम् इत्यत्र निर्ऋतिरूपे पञ्चमे पदे च वर्तमाना ऋवर्णा अत्र कौथुमसामवेदे स्वररूपाः शुद्धा ऋकारा हि सन्ति न स्वरभक्तिरूपा न चोष्मपीडिता ऋकारा वा, अत्र कोऽपि सन्देहो नाऽस्ति।

विशेषः– एतस्य वचनस्य किं प्रयोजनमिति बुधैः परिचिन्तनीयम्। अत्रोल्लिखितेषु पदेषु ऋषभपदं कौथुमसामवेदसंहितायामस्माभिर् न दृष्टम्। गृहीतमिति पदं तु प्रायेण न कुत्राऽपि वेदमन्त्रेषु दृष्टम्। पाणिनीयव्याकरणवार्त्तिककारोऽपि "हृग्रहोर् भश्छन्दसि हस्य" (८।२।३२) इति भणति। **बृहस्पतिम्** इति (१।१।१०।१) **पृथिव्याम्** इति (१।३।४।९), **निर्ऋतीनाम्** इति (१।४।५।६) च पदानि तु कौथुमसामवेदार्चिकसंहितायां दृश्यन्ते। कौथुमसामवेदार्चिकसंहितायामेतादृशानि ऋकारयुक्तानि पदानि तु **गृणानः, वृणीमहे, ऋञ्जसे, दृशीकम्, भृगुवत्, मृड, दृशे, ऋतम्** इत्यादीनि बहूनि दृश्यन्ते।

हिन्दी– ऋषभम्, गृहीतम्, बृहस्पतिम्, पृथिव्याम् इन चार स्थलों में और निर्ऋतिशब्द में पञ्चम स्थल में वर्तमान ऋवर्ण कौथुमसामवेद में स्वररूप शुद्ध ऋवर्ण हैं, स्वरभक्तिरूप वा ऊष्मपीडित ऋवर्ण नहीं, इस विषय में कोई सन्देह नहीं है ॥५॥

श-ष-स-ह-रादौ रेफः स्वरभक्तिर् जायते द्विपदा सन्धौ।
इ-उ-वर्णाभ्यां हीना क्वचिदेकपदा क्रमवियुक्ता ॥६॥

अन्वयः– श-ष-स-ह-रादौ सन्धौ रेफः इ-उ-वर्णाभ्याम् हीना द्विपदा स्वरभक्तिः क्वचित् जायते। (क्वचित्) (श-ष-स-ह-रादौ पदे) एकपदा क्रमवियुक्ता (स्वरभक्तिः जायते)।

शब्दार्थः– श-ष-स-ह-रादौ=श-ष-स-हाः रादयो यस्मिन् तादृशे, आदिस्थरेफयुक्त-शषसहयुक्ते, सन्धौ=संहितायाम्, रेफः=रवर्णः, इ-उ-वर्णाभ्याम्=इकारोकाराभ्यां रहिता, द्विपदा=द्वयोः पदयोर्वर्तमाना, स्वरभक्तिः=स्वरभागः, क्वचित्=कुत्र चित्, जायते=भवति। (क्वचित्=कुत्र चित्), (श-ष-स-ह-रादौ=आदिस्थरेफयुक्त-श-ष-स-हयुक्ते, पदे=सुबन्त-तिङन्तान्यतरशब्दे), एकपदा=एकस्मिन्नेव पदे वर्तमाना, क्रमवियुक्ता=पदक्रमनिरपेक्षा, वर्णद्विर्भावरहिता वा; (स्वरभक्तिः=स्वरभागः, जायते=भवति)।

सरलार्थः– आदिस्थ-रेफयुक्त-श-ष-स-ह-युक्ते सन्धौ रेफः इ-उ-वर्णयुक्तोच्चारणरहिता द्विपदा स्वरभक्तिः क्वचिज् जायते, क्वचित् पुनः रेफः स्वपूर्वस्थरेफयुक्तैः श-ष-स-हैर् युते पदे एकस्मिन्नेव पदे वर्तमाना पदक्रमनिरपेक्षा वर्णद्विर्भावरहिता वा स्वरभक्तिर् जायते।

विशेषः– संहितायां पदक्रम-विशेषादुत्पद्यमाना पदद्वयाश्रिता स्वरभक्तिः पदक्रमनिरपेक्षा एकस्मिन्नेव पदे वर्तमाना स्वरभक्तिश्चेति द्विविधा स्वरभक्तिर् भवतीत्यस्य श्लोकस्य तात्पर्यमवगम्यते। **देदिशतीर्हविष्कृतः** इति (१।१।२।३), **अरण्योर्हस्तच्युतम्** इति (१।१।७।१०), **जागृवद्भिर्हविष्मद्भिः** इति च (१।१।८।७) पूर्वायाः, **बर्हिषि** इति (१।१।१।१), **अदर्शि** इति (१।१।५।३), **विचर्षणे** इति (१।१।९।४), **वर्षिष्ठम्** इति (१।२।२।५) चोत्तरायाः स्वरभक्तेरुदाहरणानि ज्ञेयानि। दन्त्ये सकारे परे रेफस्य स्वरभक्तिताया उदाहरणस्य कौथुमसामवेदार्चिकसंहितायामदर्शनाद् मूले **"श-ष-हे रादौ रेफः"** इति पाठः सुकरः।

हिन्दी– आदिस्थ रेफ से युक्त श-ष-स-ह-युक्त सन्धि में रेफ इ-उ-वर्णयुक्त उच्चारण से रहित तथा दो पदों में आश्रित स्वरभक्ति कहीं कहीं हो जाती है, कहीं पर रेफ स्वपूर्वस्थ रेफ से युक्त श-ष-स-ह से युक्त एक ही पद में वर्तमान पदक्रमनिरपेक्ष वा वर्णद्विर्भावरहित स्वरभक्ति हो जाती है॥६॥

स्वरभक्तिस् तु द्विविधा ऋकारो रेफ एव च।
स्वरोदा व्यञ्जनोदा च विहिताऽक्षरचिन्तकैः॥७॥

अन्वयः– स्वरभक्तिः तु ऋकारः रेफ एव च (इति) द्विविधा (भवति), (सा च) अक्षरचिन्तकैः (क्रमेण) स्वरोदा व्यञ्जनोदा च विहिता (अस्ति)।

शब्दार्थः– स्वरभक्तिः=स्वरभागः, तु=हि, ऋकारः=ऋकाराख्या, रेफः=रेफाख्या, एव=हि, च=अपि, (इति=एवंरूपेण), द्विविधा=द्विप्रकारा, (भवति=जायते), (सा=तादृशी द्विविधा स्वरभक्तिः, च=अपि), अक्षरचिन्तकैः= वर्णविचारकैः, (क्रमेण=यथाक्रमम्), स्वरोदा=स्वरोदाख्या, व्यञ्जनोदा=व्यञ्जनो-दाख्या, च=अपि, विहिता=परिभाषिता, (अस्ति=वर्तते)।

सरलार्थः– ऋकारस्वरभागरूपा स्वरभक्तिः ऋकाराख्या रेफाख्या चेति द्विविधा भवति, सा चाऽक्षरचिन्तकैः क्रमेण स्वरोदा व्यञ्जनोदा चेति परिभाषिताऽस्ति।

विशेषः– ऋकारोत्तरार्धरूपा स्वरभक्तिः ऋकाराख्या स्वरोदा च स्वरभक्तिः, ऋकारपूर्वार्धरूपा स्वरभक्तिस्तु रेफाख्या व्यञ्जनोदा स्वरभक्तिश् चोक्ताऽस्त्यत्रेति ज्ञेयम्। अधिकं कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां द्रष्टव्यम् (पृ. २४८-२५५)।

हिन्दी– ऋकार स्वर के भागरूप स्वरभक्ति ऋकाराख्या स्वरभक्ति और रेफाख्या स्वरभक्ति के रूप में दो प्रकार की होती है। वह दो प्रकार की स्वरभक्ति अक्षर-चिन्तकों से क्रम से स्वरोदा और व्यञ्जनोदा के रूप में परिभाषित है॥७॥

शषसेषु स्वरोदयां हकारे व्यञ्जनोदयाम्।
शषसेषु विवृतां तु हकारे संवृतां विदुः॥८॥

अन्वयः– श-ष-सेषु (स्वरभक्तिम्) स्वरोदयाम् (विदुः), हकारे (स्वर-भक्तिम्) व्यञ्जनोदयाम् (विदुः), श-ष-सेषु (स्वरभक्तिम्) विवृताम् (विदुः), हकारे तु (स्वरभक्तिम्) संवृताम् विदुः।

शब्दार्थः– श-ष-सेषु=तालव्य-मूर्धन्य-दन्त्येषु ऊष्मवर्णेषु परेषु, (स्वर-भक्तिम्=ऋकारस्वरभागम्), स्वरोदयाम्=स्वरभागोत्तराम्, (विदुः=जानन्ति),

हकारे=कण्ठ्ये ऊष्मवर्णविशेषे परे, (स्वरभक्तिम्=ऋकारस्वरभागम्), व्यञ्जनोदयाम्=व्यञ्जनभागोत्तराम्, (विदुः=जानन्ति), श-ष-सेषु=तालव्य-मूर्धन्य-दन्त्येषु ऊष्मवर्णेषु परेषु, (स्वरभक्तिम्=ऋकारस्वरभागम्), विवृताम्=विवृत-प्रयत्नाम्, (विदुः=जानन्ति), हकारे=कण्ठ्ये ऊष्मवर्णविशेषे परे (स्वरभक्तिम्=ऋकारस्वरभागम्), संवृताम्=संवृतप्रयत्नाम्, (विदुः=जानन्ति)।

सरलार्थः– श-ष-सेषु परेषु स्वरभक्तिं स्वरोत्तरां विदुः, हकारे परे स्वरभक्तिं व्यञ्जनोत्तरां विदुः; श-ष-सेषु परेषु स्वरभक्तिं विवृतोत्तरभागां विदुः, हकारे परे स्वरभक्तिं संवृतोत्तरभागां विदुः।

विशेषः– एतस्य श्लोकस्य पूर्वार्धेन योऽर्थः प्रतिपादितोऽस्ति स एवाऽर्थ उत्तरार्धेनाऽपि भङ्ग्यन्तरेण प्रतिपादितोऽस्ति। एष श्लोकश् चारायणीयशिक्षायामपि वर्तते। एष विषयो व्यासशिक्षायां सर्वसम्मतशिक्षायामपि प्रतिपादितोऽस्ति। तद्विवरणं कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षायां (द्वितीये वर्णनिरूपणाध्याये, श्लो. ८५, पृ. २४८-२५५) द्रष्टव्यम्। कौथुमसामवेदे सकारे परे स्वरभक्तेरुदाहरणस्याऽदर्शनं तु पूर्वमेवोक्तम्। ऋग्वेदे तु "सर्सृते" इति (२।२५।१) प्राप्यते।

हिन्दी– श-ष-स परे रहने पर स्वरभक्ति को स्वरभागोत्तरा जानते हैं, हकार पर रहने पर स्वरभक्ति को व्यञ्जनभागोत्तरा जानते हैं; श-ष-स परे रहने पर स्वरभक्ति को विवृतोत्तरभागा जानते हैं और हकार परे रहने पर स्वरभक्ति को संवृतोत्तरभागा जानते हैं॥८॥

स्वरभक्तिं प्रयुञ्जानस् त्रीन् दोषान् परिवर्जयेत्।
इकारं वाऽप्युकारं च ग्रस्तदोषं तथैव च॥९॥

अन्वयः– स्वरभक्तिम् प्रयुञ्जानः (अध्येता) इकारम् वा अपि उकारम् च तथा एव ग्रस्तदोषम् च (इति) त्रीन् दोषान् परिवर्जयेत्।

शब्दार्थः– स्वरभक्तिम्=ऋकारस्वरभागम्, प्रयुञ्जानः=उच्चारयन्, (अध्येता=वेदाध्यायी), इकारम्=इवर्णम्, वा=अथवा, अपि=च, उकारम्=उवर्णम्, च=अपि, तथा=तेनैव प्रकारेण, एव=हि, ग्रस्तदोषम्=स्थानकरण-निष्पीडनपूर्वकोच्चारणरूपं दोषम्, च=अपि, (इति=एवं विधान्), त्रीन्=अगिन-मितान्, दोषान्=शुद्धोच्चारणदूषकान् धर्मान्, परिवर्जयेत्=परिहरेत्।

सरलार्थः– ऋकारस्वरभागविशेषरूपां स्वरभक्तिमुच्चारयन् वेदाध्येता स्वरभक्तेः इवर्णरूपताम्, उवर्णरूपताम्, स्थानकरणातिपीडनपूर्वकोच्चारणरूपं ग्रस्तदोषाख्यं दोषं चेत्येतान् त्रीन् दोषान् परिहरेत्।

हिन्दी – स्वरभक्ति का प्रयोग करने वाला वेदाध्यायी स्वरभक्ति की इवर्णरूपता उवर्णरूपता तथा स्थान और करण का अतिपीडन से उच्चारण करने से होने वाले ग्रस्त-दोषनामक दोष इन तीन दोषों का परिहार करे ॥९॥

संयोगपरं छपरं विसर्जनीयं द्विमात्रिकं चैव।
अवसानिकं च न लघु साऽनुस्वारं घुटान्तं च ॥१०॥

अन्वयः– संयोगपरम् छपरम् विसर्जनीयम् द्विमात्रिकम् च एव अवसानिकम् च साऽनुस्वारम् घुटान्तम् च (अक्षरम्) लघु न (भवति)।

शब्दार्थः– संयोगपरम्=संयोगः परो यस्मात् तत्, छपरम्=छकारः परो यस्मात् तत्, विसर्जनीयम्=विसर्जनीययुक्तम्, द्विमात्रिकम्=दीर्घम्, च= अपि, एव=हि, अवसानिकम्=पादावसाने भवम्, च=अपि, साऽनुस्वारम्= अनुस्वारेण सहितम्, घुटान्तम्=घुटाख्यपञ्चविधस्थितियुक्तम्, च=अपि, (अक्षरम्=अकारादिवर्णविशेषरूपमक्षरम्), लघु=लघुसंज्ञकम्, गुरुभिन्नम्, न=नहि, (भवति=वर्तते)।

सरलार्थः– संयोगपरकम्, छपरकम्, विसर्जनीययुक्तम्, दीर्घम्, पादावसाने वर्तमानम्, अनुस्वारसहितम्, घुटान्तं चाऽक्षरं लघु न भवति।

विशेषः– घुटपरिचयः पूर्वमेव (१।७।१६) प्रस्तुतोऽस्ति। लौकिकगानो-पयोगीदं निरूपणमवगम्यते। "**सानुस्वारं विसर्गान्तं दीर्घं संयुक्तपूर्वगम्। अक्षरं गुरु पादान्त्यं विभाषाऽथेतरल् लघु**" इति छन्दश्शास्त्रपरिभाषाऽप्यत्र स्मरणीया।

हिन्दी – जिस से परे संयोग हो वैसा अक्षर, जिस से परे छवर्ण हो वैसा अक्षर, विसर्जनीयान्त अक्षर, दीर्घ अक्षर, पद्य के पाद के अन्त में रहा हुआ अक्षर, अनुस्वारान्त अक्षर तथा अन्त में घुटसंज्ञक स्थिति वाला अक्षर भी लघु नहीं हो सकता है ॥१०॥

॥ इति द्वितीये प्रपाठके षष्ठी कण्डिका ॥

पथ्यापादः प्रथमो द्वादशमात्रस् तथा तृतीयोऽपि।
अष्टादशो द्वितीयः समापनः पञ्चदशमात्रः॥१॥

अन्वयः– प्रथमः पथ्यापादः द्वादशमात्रः (भवति), तथा तृतीयः अपि (पथ्यापादः द्वादशमात्रः भवति), द्वितीयः (पथ्यापादः) अष्टादशः (भवति), समापनः (पथ्यापादः) पञ्चदशमात्रः (भवति)।

शब्दार्थः– प्रथमः=आद्यः, पथ्यापादः=पथ्याख्याया जातेः पादः, द्वादशमात्रः=सूर्यमिताभिर् मात्राभिर् युतः, (भवति=अस्ति), तथा=तेनैव प्रकारेण, तृतीयः=त्रयाणां पूरणः, अपि=च, (पथ्यापादः=पथ्याख्याया जातेः पादः, द्वादशमात्रः=सूर्यमिताभिर् मात्राभिर् युतः, भवति=अस्ति), द्वितीयः=द्वयोः पूरणः, (पथ्यापादः=पथ्याख्याया जातेः पादः), अष्टादशः=अष्टादशभिर् मात्राभिर् युतः, (भवति=अस्ति), समापनः=चरमः, (पथ्यापादः=पथ्याख्याया जातेः पादः), पञ्चदशमात्रः=तिथिमितमात्राभिर् युतः (भवति=अस्ति)।

सरलार्थः– आद्यः पथ्याया पादो द्वादशभिर् मात्राभिर् युक्तो भवति, तेनैव प्रकारेण तृतीयोऽपि पथ्यायाः पादो द्वादशभिरेव मात्राभिर् युक्तो भवति, द्वितीयः पथ्यायाः पादः अष्टादशभिर् मात्राभिर् युक्तो भवति, अन्तिमः पथ्याया पादः पञ्चदशभिर् मात्राभिर् युक्तो भवति।

विशेषः– लौकिकगानोपयोगीदं प्रतिपादनमवगम्यते।

हिन्दी– पथ्या का पहला पाद बारह मात्रा वाला होता है, उसी प्रकार से पथ्या का तृतीय पाद भी बारह मात्रा वाला ही होता है, पथ्या का दूसरा पाद अठारह मात्राओं से युक्त होता है और पथ्या का अन्तिम पाद पन्द्रह मात्रा वाला होता है॥१॥

पथ्यालक्षणमुक्तं या त्वन्या सा स्मृता विपुला।२॥

सरलार्थः– पथ्याया लक्षणं पूर्वं कथितम्, या तु पथ्यातोऽन्यादृशी जातिः सा विज्ञैर् विपुला स्मृताऽस्ति।

विशेषः– यस्या आर्यायाः अन्त्येऽर्धे आद्ये चाऽर्धे त्रिषु मात्रागणेषु पादः समाप्यते विरामश्च भवति साऽऽर्या **पथ्या** नाम भवतीति पिङ्गलच्छन्दःसूत्रे "**त्रिषु गणेषु पादः पथ्याऽऽद्ये च**" (४।२२) इति प्रतिपादितमस्ति, यस्या आर्याया अन्त्येऽर्धे आद्ये वाऽर्धे द्वयोरेव वाऽर्धयोः त्रिषु गणेषु पादो न समाप्यते विरामश्च न भवति सा त्वाऽऽर्या **विपुला** नाम भवतीति च तत्रैव (४।२३) "**विपुलाऽन्या**" इति सूत्रेण प्रतिपादितमस्ति। पथ्या-विपुलोदाहरणानि तत्रैव व्याख्यानेषु द्रष्टव्यानि।

हिन्दी– प्रथम पाद में और तृतीय पाद में तीन मात्रागण में (बारह मात्राओं में) विराम होने पर आर्या पथ्या होती हैं; प्रथम और तृतीय पाद में तीन गण में वा बारह मात्राओं में विश्राम न होने से पथ्या से भिन्न आर्या विपुला कही जाती है। (पूर्वार्ध और उत्तरार्ध में कूल मात्राओं की सङ्ख्या तो पथ्या में और विपुला में समान ही होती है) ॥२॥

अक्षराणां लघु ह्रस्वमसंयोगपरं यदि।
तत् संयोगोत्तरं विद्याद् गुरु दीर्घाक्षरं च हि॥३॥

अन्वयः– अक्षराणाम् ह्रस्वम् (अक्षरम्) यदि असंयोगपरम् (तदा तत्) लघु (विद्यात्), संयोगोत्तरं तत् दीर्घाक्षरम् च हि गुरु विद्यात्।

शब्दार्थः– अक्षराणाम्=सव्यञ्जनानां केवलानां वाऽपि अकारादिस्वराणां मध्ये, ह्रस्वम्=एकमात्रम्, (अक्षरम्=सव्यञ्जनः केवलो वाऽपि स्वरवर्णः), यदि=चेत्, असंयोगपरम्=उत्तरवर्तिना संयोगने अनुपलक्षितम्, (तदा=तस्यामवस्थायाम्, तत्=तादृशमक्षरम्, लघु=गुरुभिन्नम्, (विद्यात्=जानीयात्), संयोगोत्तरम्=उत्तरवर्तिना संयोगेन युक्तम्, तत्=ह्रस्वम् अक्षरम्, दीर्घाक्षरम्=द्विमात्राक्षरम्, च=अपि, हि=एव, गुरु=अलघु, विद्यात्=जानीयात्।

सरलार्थः– अक्षराणां मध्ये ह्रस्वम् अक्षरम् यदि संयोगपरं न भवति तदा तत् लघु जानीयात्, संयोगपरं ह्रस्वमक्षरं द्विमात्राऽक्षरं च गुरु जानीयात्।

हिन्दी– अक्षरों में से हस्व अक्षर को संयोग परे नरहने पर लघु जाने, संयोग परे रहने पर हस्व अक्षर को और दीर्घ अक्षर को तो सदा ही गुरु अक्षर जाने॥३॥

विवृत्तिर् यत्र दृश्येत स्वरस्यैवाऽग्रतः स्थिता।
गुरुः स्वरः स विज्ञेयः क्षैप्रस् तत्र न विद्यते॥४॥

अन्वयः– यत्र स्वरस्य एव अग्रतः स्थिता विवृत्तिः दृश्येत स स्वरः गुरुः विज्ञेयः, तत्र क्षैप्रः (स्वरः) न विद्यते।

शब्दार्थः– यत्र=यस्मिन् स्थले, स्वरस्य=अकारादिस्वरस्य, एव=हि, अग्रतः=अग्रे, स्थिता=वर्तमाना, विवृत्तिः=स्वरमध्यस्था विरतिः, दृश्येत=विलोक्येत, सः=तादृशो विवृत्तियुतः, स्वरः=अकारादिस्वरवर्णः, गुरुः=लघुभिन्नः, विज्ञेयः=वेद्यः, तत्र=तस्मिन् स्थले, क्षैप्रः=क्षिप्रमुच्चारणीयो लघुः, (स्वरः=अकारादिस्वरवर्णः), न=नहि, विद्यते=वर्तते।

सरलार्थः– यस्मिन् स्थले अकारादिस्वरवर्णस्याऽग्रे स्थिता विवृत्तिर् भवति तादृशो विवृत्तियुक्तः स्वरो गुरुर् वेदितव्यः, तादृशे स्थले क्षिप्रमुच्चारणीयो लघुः स्वरो न वर्तते।

विशेषः– स्वारस्येत्यादिके पाठेऽपि स्वर एव स्वारः इति मन्तव्यमिति भट्टशोभाकर-व्याख्यानादवगम्यते। अक्षरगुरुत्वलघुत्व-प्रतिपादनप्रकरणानुकूलं च भट्टशोभाकरानुसारीदं व्याख्यानमवगन्तव्यम्।

हिन्दी– जिस स्थल में अकारादि स्वरवर्ण के आगे वर्तमान विवृत्ति होती है वैसे विवृत्तियुक्त स्वर को गुरु जानना चाहिए, वैसे स्थल में शीघ्र उच्चारणीय लघु स्वर नहीं रहता है॥४॥

अन्तोदात्तमाद्युदात्तमुदात्तमनुदात्तं नीचस्वरितम्।
मध्योदात्तं स्वरितं द्विरुदात्तमित्येता अष्टौ पदसंज्ञाः॥५॥

अन्वयः– अन्तोदात्तम् आद्युदात्तम् उदात्तम् अनुदात्तम् नीचस्वरितम् मध्योदात्तम् स्वरितम् द्विरुदात्तम् इति एता अष्टौ पदसञ्ज्ञाः (ज्ञेयाः)।

शब्दार्थः– अन्तोदात्तम्=अन्ते उदात्तेन स्वरेण युक्तम्, आद्युदात्तम्=आदौ उदात्तेन स्वरेण युक्तम्, उदात्तम्=उच्चस्वरमात्रयुक्तम्, अनुदात्तम्=अनुदात्तस्वरमात्रयुक्तम्, नीचस्वरितम्=क्रमेण अनुदात्तेन स्वरितेन च स्वरेण युक्तम्, मध्योदात्तम्=मध्ये उदात्तेन स्वरेण युक्तम्, स्वरितम्=स्वारमात्र-

युक्तम्, द्विरुदात्तम्=द्वाभ्यामुदात्ताभ्यां स्वराभ्यां युक्तम्, इति=एवम्प्रकारेण, एताः=उपरिनिर्दिष्टाः, अष्टौ=गजमिताः, पदसञ्ज्ञाः=पदविशेषरूपाः स्वरावस्थितिस्थानविशेषाः, (ज्ञेयाः=बोध्याः)।

सरलार्थः– अन्तोदात्तं पदम्, आद्युदात्तं पदम्, उदात्तस्वरमात्रयुतं पदम्, अनुदात्तस्वरमात्रयुतं पदम्, क्रमेण अनुदात्तेन स्वरितेन च स्वरेण युतं पदम्, मध्ये उदात्तेन स्वरेण युतं पदम्, स्वरितस्वरमात्रयुतं पदम्, द्वाभ्यामुदात्ताभ्यां युतं पदम् इति एता अष्टौ पदसंज्ञा भवन्ति। (अत्रोदाहरणानि अनुपदं मूले एव प्रस्तुतानि सन्ति)।

विशेषः– पदे स्वरस्थितिविशेषस्य विचारः संहिताप्रकरणावान्तरविषयरूपोऽस्ति। अस्यां शिक्षायां तु संहिताप्रकरणमेवोपेक्षितमित्यत्राऽस्य विषयस्योपयोगिता न्यूनैव। कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षायां तु एष विषयः संहिताप्रकरणप्रारम्भे एव प्रतिपादितः, तथा हि- "**एकोदात्तं पदं प्रायो नामाऽन्तोदात्तकं तथा। आख्यातं निहतं शिष्टावाद्युदात्तौ प्रकीर्तितौ॥ उदात्तमाद्युदात्तं च मध्योदात्तं पदं तथा। अन्तोदात्तं द्व्युदात्तं च त्र्युदात्तं स्वरितं ततः। अनुदात्तस् स्वरितकमनुदात्तमिति क्रमात्। नवप्रकाराः स्वराणां पदशय्याः प्रकीर्तिताः। प्र सोमो हविषामग्निर् बृहस्पतिरतः परम्। इन्द्राबृहस्पती स्वश् च वीर्यं वश्च निदर्शनम्**" इति (पृ.५९७-५९८)। कौहलीयशिक्षायाम् (श्लो.३४-३५), सर्वसम्मतशिक्षायाम् {श्लो. ६०–६२ (३।२९-३१)} च एष विषय आगतोऽस्ति।

हिन्दी– (उदात्तादि स्वरों के स्थितिविशेष से) अन्तोदात्त, आद्युदात्त, उदात्त, अनुदात्त, अनुदात्तस्वरित, मध्योदात्त, स्वरित, द्व्युदात्त, यें अष्ट प्रकारक-पद-संज्ञाएं होतीं हैं। (अर्थात् स्वरों के अवस्थितिविशेष से पद आठ प्रकार के होते हैं)। (इन के उदाहरण मूल में ही दिए जा रहे हैं) ॥५॥

अष्टप्रकारं विज्ञेयं पदानां स्वरलक्षणम्।
अग्निः सोमः प्र वो वीर्यं हविषा स्वर् वनस्पतिः॥६॥

अन्वयः– पदानाम् स्वरलक्षणम् अष्टप्रकारम् विज्ञेयम्। (अत्र उदाहरणानि तु) अग्निः सोमः प्र वः वीर्यम् हविषा स्वर् वनस्पतिः (इति एतानि पदानि ज्ञेयानि)।

शब्दार्थः– पदानाम्=सुबन्तनिङन्तान्यतररूपाणां शब्दानाम्, स्वर-लक्षणम्=उदात्तादिस्वरकृतं स्वरूपम्, अष्टप्रकारम्=गजमितभेदम्, विज्ञेयम्=वेद्यम्; (अत्र=एतस्मिन् विषये, उदाहरणानि=निदर्शनानि, तु=हि) अग्निः सोमः प्र वः वीर्यम् हविषा स्वर् वनस्पतिः (इति=एवंरूपाणि, एतानि=पूर्वनिर्दिष्टानि, पदानि=सुबन्ततिङन्तान्यतरशब्दाः, ज्ञेयानि=वेद्यानि)।

सरलार्थः– पदानाम् उदात्तादिस्वरकृतं स्वरूपम् अष्टविधं ज्ञेयम्, एतस्मिन् विषये उदाहरणानि तु **अग्निः सोमः प्र वः वीर्यम् हविषा स्वर् वनस्पतिः** इत्येतानि पदानि ज्ञेयानि।

विशेषः– अग्निः इति अन्तोदात्तम्, सोमः इति आद्युदात्तम्, प्र इति उदात्तम्, वः इति अनुदात्तम्, वीर्यम् इति नीचस्वरितम्, हविषा इति मध्यमोदात्तम्, स्वर् इति स्वरितम्, वनस्पतिः इति द्व्युदात्तम् पदं ज्ञेयम्। अत्र व इत्यक्षरं प इत्यक्षरं चोदात्तं ज्ञेयम्। पाणिनीयशिक्षायां तु नव पदशय्याः प्रोक्ताः सन्ति (श्लो.४५) तत्र इन्द्राबृहस्पती इति त्र्युदात्तं पदमधिकं प्रदर्शितमस्ति। तत्र **इन्** इति **बृ** इति **प** इति चाक्षराणि उदात्तानि सन्ति।

हिन्दी– पदों का उदात्तादि स्वरों के स्थितिविशेष से होने वाले स्वररूपविशेष आठ प्रकार के जानने चाहिए। इस विषय में उदाहरण तो अग्निः सोमः प्र वः वीर्यम् हविषा स्वर् वनस्पतिः ये पद हैं॥६॥

अन्तमध्यमयोर् नापि उदमनुदनिपाते।
आद्यात् स्वरितमुपसर्गे द्विर् नीचमाख्यात इति॥७॥

सरलार्थः– अनुदात्ते निपाते अन्त्ये मध्यमे चाऽक्षरेऽपि आदौ च कुत्राऽपि उदात्तं न भवति। उपसर्गे द्व्यक्षरे अन्तोदात्तमभीत्युपसर्गं विहायाऽन्यत्र आद्याक्षरात् परमक्षरं स्वरितं भवति। उदात्तवति आख्याते परे उपसर्गाक्षरं सर्वं नीचं भवति।

विशेषः– एतस्य नारदीयशिक्षावचनस्य पाठो भ्रष्टः प्रतीयते। एतस्य वचनस्य भट्टशोभाकरकृतं विवरणमपि नोपलब्धम्। पीताम्बरापीठसंस्करणे चाऽस्य वचनस्य मूलत्वेनार्धं विवरणत्वेनेवाऽर्धं मुद्रितं दृश्यते। सामश्रमिसंस्करणे

दत्तात्रेयशास्त्रिसंस्करणे च मूलत्वेनैव एतद् वचनं मुद्रितं दृश्यते। बृहन्नारदीय-पुराणेऽपि (१।५०।२०४) एतद् वचनम् "**अंतर्मध्यमयोताम्युदमनुनिपात्य आद्यात्स्वरितमुपसर्गे द्विर्न्नीचमाख्यात इति**" इतिरूपेण मुद्रितं दृश्यते (श्रीनारदीयमहापुराणम्, नागप्रकाशकाः, दिल्ली, १९८४, ८७ पत्रे पूर्वपृष्ठे)। दत्तात्रेय-शास्त्रिणाऽप्येतस्य वचनस्य तदीयभाषावृत्तौ अर्थो नैव वर्णितः। अस्माभिस्तु यथाकथञ्चिद् ऋग्वेदप्रातिशाख्य-शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्य-पाणिनीयव्याकरण-फिट्सूत्रादिग्रन्थविचारेणाऽत्रोक्तः सरलार्थः प्रतिपिपादयिषितः स्यादिति प्रकल्प्याऽर्थो वर्णितः। अत्र उदमिति उदात्तम्, अनुदमिति अनुदात्तमुक्तं प्रतीयते। एतस्य वचनस्य शुद्धं रूपं समृद्धसंस्कृतहस्तलिखितग्रन्थागारेषु स्थितेषु नारदीयशिक्षा-कोषेषु विद्वद्भिरन्वेष्टव्यम्। एतस्मिन् विषयेऽधोऽलिखितानि वचनानि स्मरणीयानि-

"**अनुदात्तं पदमेकवर्जम्**" इति पाणिनीयव्याकरणे (६।१।१५८), "**फिषोऽन्त उदात्तः**" इति फिट्सूत्रे (१।१) "**न त्विदं लक्षणमस्ति प्रातिपदिकस्याऽऽदिरुदात्तो भवतीति, इदं पुनरस्ति प्रातिपदिकस्याऽन्त उदात्तो भवतीति**" इति पाणिनीयव्याकरणभाष्ये (६।१।१२३), "**निपाता आद्युदात्ताः, उपसर्गाश्चाऽभिवर्जम्, एवादीनामन्तः वावादीनामुभावुदात्तौ, चाऽऽदयोऽनुदात्ताः, यथेति पादान्ते**" इति फिट् सूत्रे (४।१२-१७), "**विंशतेरुपसर्गाणामुच्चा एकाक्षरा नव। आद्युदात्ता दशैतेषामन्तोदात्तस्त्वभीत्ययम्**" इति ऋग्वेदप्रातिशाख्ये (१२।२२-२४)। "**वा-च-कम्-उ-चित्-समस्मात्-घ-ह-स्म-त्वः-इम्-मर्याः-अरे-स्वित् निपाताश् चेत् (अनुदात्तानि पदानि)**" इति शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्ये (२।१६), "**गतिर् गतौ, तिङि चोदात्तवति**" इति (८।१।७०,७१), "**न लुट्, निपातैर् यद्-यदि-हन्त-कुविन्-नेच्-चेच्-चण्-कच्चिद्-यत्रयुक्तम्**" इत्यादि च (८।१।२९, ३०) पाणिनीयव्याकरणे। "**नाम चाऽऽख्यातमपि चोपसर्गश्च निपातकः। इति चत्वारि हि पदजातानि कथितानि हि**" इति, "**एकोदात्तं पदं प्रायो नामाऽन्तोदात्तकं तथा। आख्यातं निहतं शिष्टावाद्युदात्तौ प्रकीर्तितौ**" इति च कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां सप्तमे सन्तानाध्याये (श्लो.७;१२, पृ.५९४, ५९७)।

हिन्दी– अनुदात्त निपात में अन्त्य के अक्षर में अथवा मध्य के अक्षर में, अथवा आदि के अक्षर में भी कहीं भी उदात्त स्वर नहीं होता है; दो अक्षर वाले उपसर्ग में

अभि उपसर्ग को छोडकर आद्य अक्षर से परवर्ती अक्षर स्वरित होता है, उदात्त स्वरयुक्त आख्यात (तिङन्त) उत्तरवर्ती होने पर उपसर्ग का अक्षर नीच (अनुदात्त) होता है॥७॥

स्वरितात् पराणि यानि तानि धार्याक्षराणि तु।
सर्वाणि प्रचयस्थानि उपोदात्तं निहन्यते॥८॥

अन्वयः– यानि स्वरितात् पराणि (अक्षराणि) तानि तु धार्याक्षराणि (ज्ञेयानि)। (तानि) सर्वाणि प्रचयस्थानि (भवन्ति), उपोदात्तम् (अक्षरम्) निहन्यते।

शब्दार्थः– यानि=आकाङ्क्षाबुद्धिविशेषविषयभूतानि, स्वरितात्=उदात्ताऽनुदात्तसमाहाररूपस्वरात्, पराणि=उत्तराणि, (अक्षराणि=सव्यञ्जनाः सानुस्वाराः शुद्धा वाऽपि अकारादिस्वराः), तानि=आकाङ्क्षापूरणबुद्धिविषयभूतानि अक्षराणि, तु=हि, धार्याक्षराणि=एकस्मिन्नेव स्वरविशेषे उच्चार्याणि अक्षराणि, (ज्ञेयानि=वेद्यानि)। तानि=उक्तविधानि अक्षराणि, सर्वाणि=निखिलानि, प्रचयस्थानि=प्रचयस्वरयुतानि, (भवन्ति=जायन्ते)। उपोदात्तम्=उत्तरवर्त्युदात्तसमीपस्थम्, (अक्षरम्=सव्यञ्जनः सानुस्वारः शुद्धो वाऽपि अकारादिकः स्वरः), निहन्यते=नितरां हन्यते, विशेषेण नीचैर् भवति।

सरलार्थः– यानि स्वरितात् पराणि अक्षराणि तानि तु धार्याक्षराणि ज्ञेयानि, तानि सर्वाणि अक्षराणि प्रचयस्थानि भवन्ति, उत्तरवर्त्युदात्तसन्निहितमक्षरं तु नितरां हन्यते।

हिन्दी– जो स्वरित स्वर से उत्तरवर्ती अक्षर हैं उन को एकस्वर में उच्चार्य धार्याक्षर जानना चाहिए, वे सभी धार्याक्षर प्रचयस्वर में होते हैं, उत्तरवर्ती उदात्त से सन्निहित अक्षर तो निघात (सन्नतर) होता है॥८॥

प्रचयो यत्र दृश्येत तत्र हन्यात् स्वरं बुधः।
स्वरितः केवलो यत्र मृदुं तत्र निपातयेत्॥९॥

अन्वयः– यत्र (स्वरितात् परः) प्रचयः दृश्येत तत्र बुधः स्वरम् हन्यात्, यत्र स्वरितः केवलः (दृश्येत) तत्र (स्वरितम्) मृदुम् निपातयेत्।

शब्दार्थः– यत्र=यस्मिन् स्थले, (स्वरितात्=उदात्तानुदात्तसमाहाररूपस्वरात्, परः=उत्तरः), प्रचयः=प्रचयाख्यः स्वरः, दृश्येत=विलोक्येत, तत्र=तस्मिन् स्थले, बुधः=विज्ञो वेदाध्यायी, स्वरम्=स्वरितस्वरम्, हन्यात्=वेगेन पातयेत्, यत्र=यस्मिन् स्थले, स्वरितः=उदात्तानुदात्तसमाहाररूपः स्वरः, केवलः=परवर्तिप्रचयस्वरविहीनः, (दृश्येत=अवलोक्येत), तत्र=तस्मिन् स्थाने, (स्वरितम्=उदात्तानुदात्तसमाहाररूपं स्वरम्), मृदुम्=कोमलम्, निपातयेत्=वेगहीनतया पातयेत्।

सरलार्थः– यस्मिन् स्थले स्वरितात् परः प्रचयः स्वरो दृश्येत तत्र विज्ञो वेदाध्यायी तं स्वरितं स्वरं वेगेन पातयेत्, यस्मिन् स्थले तु स्वरितः परवर्तिप्रचयस्वरविहीनो दृश्येत तस्मिन् स्थले स्वरितं मृदुं निपातयेत्।

हिन्दी– जिस स्थल में स्वरितोत्तरवर्ती प्रचय स्वर देखा जाता है, वहाँ विज्ञ वेदाध्यायी उस स्वरित को वेग से नीचे लाए, जिस स्थल में तो स्वरित स्वर परवर्ती प्रचय स्वर से रहित देखा जाता है वहाँ उस स्वरित को मृदु रूप से नीचे लाए॥९॥

पञ्चविधमाचार्यकं नाम मुखं न्यासः करणं प्रतिज्ञोच्चारणा॥१०॥

अन्वयः– आचार्यकम् नाम मुखम् न्यासः करणम् प्रतिज्ञा उच्चारणा (इति) पञ्चविधम् (भवति)।

शब्दार्थः– आचार्यकम्=सदाचारवतः साङ्गसरहस्यसामवेदाध्यापकस्य गुरोः कर्म, नाम=एवं प्रसिद्धं वस्तु, मुखम्=हस्ताग्रनिविष्टदृष्टिकादिकमास्यम्, न्यासः=अङ्गुलिपर्वसु स्वराणां न्यासः (सङ्केतः), करणम्=सम्यग् अधीतं विज्ञातं च लक्षणशास्त्रम्, प्रतिज्ञा=गुरुपरम्परागतमन्त्रस्वरवर्णानुपूर्वीस्वरूपावधारणा, उच्चारणम्=लक्षणशास्त्रानुसारं गुरुपरम्परागतसम्प्रदायानुसारं च मन्त्राणां मौखः प्रयोगः, (इति=एवंरूपेण), पञ्चविधम्=बाणमितप्रकारम्, (भवति=अस्ति)।

सरलार्थः– सदाचारवतः साङ्गसरहस्यसामवेदाध्यापकस्य गुरोः कर्म खलु हस्ताग्रनिविष्टदृष्टिकादिकं मुखम्, अङ्गुलिपर्वसु क्रुष्टादीनां स्वराणां सङ्केतः, सम्यगधीतं विज्ञातं च लक्षणशास्त्रम्, गुरुपरम्पराऽऽगतमन्त्रस्वरवर्णाऽऽनुपूर्वी-

स्वरूपावधारणा, लक्षणशास्त्रानुसारं गुरुपरम्परागतसम्प्रदायानुसारं च मन्त्राणां मौखः प्रयोगः इति पञ्चप्रकारकं भवति।

हिन्दी– सदाचारवान् साङ्ग सरहस्य सामवेद के अध्यापक गुरु का कर्म (१) हस्ताग्र में दृष्टिनिवेश इत्यादि से युक्त मुखधारण, (२) अङ्गुलि के पर्वों में क्रुष्टादि स्वरों का सङ्केत, (३) ठीक प्रकार से अधीत और ज्ञात लक्षणशास्त्र का धारण, (४) गुरु-परम्परा से आए हुए मन्त्रों की स्वर-वर्णाऽऽनुपूर्वी के स्वरूप का अवधारण, और (५) लक्षण-शास्त्र के तथा गुरुपरम्पराऽऽगत सम्प्रदाय के अनुकूल रूप में मन्त्रों का उच्चारण इन पाँच प्रकारों से युक्त होता है॥१०॥

अत्रोच्यते श्रेयः खलु वै सप्रतिज्ञोच्चारणा॥११॥

अन्वयः– अत्र सप्रतिज्ञा उच्चारणा खलु श्रेयः उच्यते वै।

शब्दार्थः– अत्र=एतस्मिन् विषये, सप्रतिज्ञा=गुरुपरम्पराऽऽगतमन्त्र-स्वरवर्णा-ऽऽनुपूर्वीस्वरूपावधारणसहिता, उच्चारणा=मौखः प्रयोगः, खलु=हि, श्रेयः=कल्याणम्, उच्यते=कथ्यते, वै=ह।

सरलार्थः– एतस्मिन् विषये गुरुपरम्पराऽऽगतमन्त्रस्वरवर्णाऽऽनुपूर्वी-स्वरूपावधारणसहितो मन्त्राणां मौखः प्रयोग एव श्रेष्ठ उच्यते।

हिन्दी– इस विषय में गुरुपरम्परा से आए हुए मन्त्रों की स्वरवर्णाऽऽनुपूर्वी के स्वरूप का अवधारण से युक्त लक्षणशास्त्र के और गुरुपरम्पराऽऽगत सम्प्रदाय के अनुकूल रूप में मन्त्रों का उच्चारण सब से श्रेष्ठ बात है॥११॥

यस्य कस्य चिद् वर्णस्य करणं नोपलभ्यते।
प्रतिज्ञा तत्र वोढव्या करणं हि तदात्मकम्॥१२॥

अन्वयः– (यत्र) यस्य कस्य चित् वर्णस्य करणम् न उपलभ्यते, हि करणम् तदात्मकम् (तस्मात्) तत्र प्रतिज्ञा वोढव्या।

शब्दार्थः– (यत्र=यस्मिन् स्थले), यस्य कस्य चित्=यादृशस्य तादृशस्य कस्याऽपि, वर्णस्य=स्वरव्यञ्जनान्यतररूपस्य शब्दविशेषस्य, करणम्=लक्षणम्

न=नहि, उपलभ्यते=प्राप्यते, हि=यतः, करणम्=लक्षणशास्त्रम्, तदात्मकम्=पूर्वोपात्तप्रतिज्ञास्वरूपबोधनमात्रपरम्, (तस्मात्=ततः कारणात्), तत्र=तस्मिन् स्थले, प्रतिज्ञा=गुरुपरम्पराऽऽगत-मन्त्रस्वरवर्णा-ऽऽनुपूर्वी-स्वरूपावधारणा एव वोढव्या=निर्वहणीया=पालनीया।

सरलार्थः– यस्मिन् स्थले यस्य कस्य चिद् वर्णस्य लक्षणं न प्राप्यते तत्र लक्षणस्य गुरुपरम्पराऽऽगतमन्त्रवर्णस्वरूपबोधनमात्रपरत्वाद् गुरुपरम्परा-ऽऽगतमन्त्रवर्णस्वरूपावधारणैव परिपालनीया।

हिन्दी– क्यों कि लक्षणशास्त्र गुरुपरम्परा से आए हुए मन्त्र के वर्णों के स्वरूप का प्रतिपादक मात्र है, इस लिए यदि कहीं पर किसी वर्ण का लक्षण नहीं मिलता है तो वहाँ गुरुपरम्परा से आए हुए मन्त्रों के वर्ण का स्वरूपावधारण को ही परिपालित करना चाहिए॥

तुम्बुरु-नारद-वसिष्ठ-विश्वावस्वादयश् च गन्धर्वाः।
सामसु निभृतं करणं स्वरसौक्ष्म्यात् तेऽपि हि न कुर्युः॥१३॥

अन्वयः– तुम्बुरु-नारद-वसिष्ठ-विश्वावस्वादयः च (ये श्रेष्ठाः) गन्धर्वाः, ते अपि सामसु स्वरसौक्ष्म्यात् निभृतम् करणम् न हि कुर्युः।

शब्दार्थः– तुम्बुरु-नारद-वसिष्ठ-विश्वावस्वादयः=तुम्बुरुः नारदः वसिष्ठः विश्वावसुः इत्येवमादिकाः, च=अपि, (ये=आकाङ्क्षाबुद्धिविशेषविषयभूताः, श्रेष्ठाः=उत्तमाः), गन्धर्वाः=दिव्यगायनाः, ते=आकाङ्क्षापूरणबुद्धिविषयभूताः दिव्यगायनाः, अपि=च, सामसु=वैदिकगीतिषु, स्वरसौक्ष्म्यात्=क्रुष्टादिस्वराणाम् अतिसूक्ष्म-वैशिष्ट्ययुक्तत्वात्, निभृतम्=परिपूर्णम्, करणम्=लक्षणशास्त्रयोजनम्, न हि=नैव, कुर्युः=कर्तुं शक्नुयुः।

सरलार्थः– तुम्बुरु-नारद-वसिष्ठ-विश्वावसुप्रभृतयो ये श्रेष्ठा दिव्य-गायनास् तेऽपि सामसु प्रयोज्यानां क्रुष्टादिस्वराणामतिसूक्ष्मवैशिष्ट्ययुतत्वात् परिपूर्णरूपेण लक्षणशास्त्रानुसारं सामसु तेषां स्वराणामुच्चारणं कर्तुं न शक्नुयुः।

विशेषः– लक्षणशास्त्रस्य पूर्णरूपेण सामगाने लक्ष्ये योजनं कृत्वो-च्चारणं कर्तुं दिव्यगायनानां कृतेऽपि दुश्शकमिति अस्मादृशैर् मानुषैः प्रतिज्ञायाः

पूर्वोक्तविधाया निर्वहणे विशेषतोऽवधानं देयमिति एतस्य पद्यस्य तात्पर्यमवगम्यते।

हिन्दी – तुम्बुरु, नारद, वसिष्ठ, विश्वावसु इत्यादि जो श्रेष्ठ गन्धर्व कहे जाते हैं वे भी सामों में प्रयोज्य क्रुष्टादि स्वर अतिसूक्ष्म वैशिष्ट्य से युक्त होने से उन का पूर्ण रूप से लक्षणशास्त्रानुसारी रूप में सामों में प्रयोग तो नहीं कर सकेंगे॥१३॥

॥ इति द्वितीये प्रपाठके सप्तमी कण्डिका॥

अथ द्वितीये प्रपाठके अष्टमी कण्डिका

कौक्षेयाऽग्निं सदा रक्षेदश्नीयादशनं हितम्।
जीर्णाहारः प्रबुद्धः सन्नुषसि ब्रह्म चिन्तयेत्॥१॥

अन्वयः– (वेदाध्यायी) सदा कौक्षेयाऽग्निम् रक्षेत्, हितम् अशनम् अश्नीयात्, जीर्णाहारः प्रबुद्धः सन् उषसि ब्रह्म चिन्तयेत्।

शब्दार्थः– (वेदाध्यायी=वेदाध्ययनशीलो द्विजः), सदा=सर्वदा, कौक्षेयाऽग्निम्=जाठरवह्निम्, रक्षेत्=पालयेत्, हितम्=स्वशरीर-स्वास्थ्य-रक्षकम्, अशनम्=भोज्यम्, अश्नीयात्=भुञ्जीत। जीर्णाहारः=परिणतभोजनः, प्रबुद्धः= विबुद्धः=गतनिद्रः, सन्=वर्तमानः, उषसि=उषःकाले, ब्रह्म=वेदम्, चिन्तयेत्= वाङ्मनसव्यापारेणाऽवधारयेत्।

सरलार्थः– सदा जाठराग्निं हितमितभोजनेन परिपालयेत्, शरीरस्वास्थ्यरक्षकं भोज्यं भुञ्जीत, जीर्णाहारो गतनिद्रः सन् उषःकाले वेदं चिन्तयेत्।

विशेषः– बृहन्नारदीयपुराणे तु (१।५०।२०८) एतस्य श्लोकस्याऽतीव भ्रष्टः पाठोऽधुना दृश्यते।

हिन्दी – सदाकाल पेट के अग्नि को हित और परिमित भोजन से रक्षित करे, हितकारी भोजन करे, आहार पच जाने पर निद्रात्याग कर के उषःकाल में वेद का मनन करे॥१॥

शरद्विषुवतोऽतीतादुषस्युत्थानमिष्यते।
यावद् वासन्तिकी रात्रिर् मध्यमा पर्युषस्थिता॥२॥

अन्वयः– अतीतात् शरद्विषुवतः (प्रभृति) यावद् वासन्तिकी मध्यमा रात्रिः पर्युपस्थिता (भवति तावत् कालम्) उषसि (वेदाध्ययनाय) उत्थानम् इष्यते।

शब्दार्थः– अतीतात्=गतात्, शरद्विषुवतः=शरदृतौ भवात् समरात्रिन्दिवात् कालात्, (प्रभृति=आरभ्य), यावत्=यावत्कालपर्यन्तम्, वासन्तिकी=वसन्तर्तुभवा, मध्यमा=दीर्घतमह्रस्वतमरात्रिमध्यस्था, दृक्सिद्धवास्तविकसौरवसन्तर्तुमध्यस्था समेन दिवसेनोपलक्षिता वा, रात्रिः=निशा, पर्युपस्थिता=समागता, (भवति=जायते, तावत्कालम्=तावत्समयम्), उषसि=उषःकाले, (वेदाध्ययनाय=वेदाभ्यासाय), उत्थानम्=शय्यात्यागेनाऽवस्थानम्, इष्यते=वाञ्छ्यते।

सरलार्थः– शरदृतुभवात् समरात्रिन्दिवात् कालात् प्रभृति वसन्तर्तुभवं समरात्रिन्दिवं कालं यावत्, उषःकाले वेदाध्ययनायोत्थानमिष्टं भवति।

हिन्दी– शरद् ऋतु के विषुवकाल बीतने से वसन्त ऋतु की विषुवरात्रि आने तक उषःकाल में वेदाध्ययन के लिए जागना इष्ट होता है॥२॥

आम्रपौलासबिल्वानामपामार्गशिरीषयोः।
वाग्यतः प्रातरुत्थाय भक्षयेद् दन्तधावनम्॥३॥

अन्वयः– (वेदाध्यायी) प्रातः उत्थाय वाग्यतः (सन्) आम्रपौलासबिल्वानाम् अपामार्गशिरीषयोः (वा कस्य चित् एकस्य वृक्षस्य) दन्तधावनम् भक्षयेत्।

शब्दार्थः– (वेदाध्यायी=वेदाध्ययनशीलो द्विजः), प्रातः=प्रभाते, उत्थाय=उत्थितो भूत्वा, वाग्यतः=वाचंयमः, (सन्=भवन्), आम्र-पौलास-बिल्वानाम्=चूतवृक्ष-आम्रातकवृक्ष-मालूरवृक्षाणाम्, अपामार्ग-शिरीषयोः=शैखरिक-कपीतनयोः, (वा=अथवा, कस्य चित्=कस्याऽपि, एकस्य=एकतमस्य, वृक्षस्य=महीरुहस्य), दन्तधावनम्=दशनमार्जनम्, भक्षयेत्=खादेत्।

सरलार्थः– वेदाध्ययनशीलो द्विजः प्रातःकाले उत्थाय वाचंयमः सन् आम्राऽऽम्रातक-बिल्वा-ऽपामार्ग-शिरीषाणामेकतमस्य काष्ठस्य दन्तधावनं खादेत्।

विशेषः– पलाशवृक्षस्य दन्तधावनं क्वचिन् निषिद्धमस्ति, अतः पालाश इति पाठो भ्रष्टोऽवगम्यते, तत्र पौलास इति पाठः साधुः प्रतीयते। पौलासः=आम्रातकवृक्ष इति वीरमित्रोदये आह्निकप्रकाशे व्याख्यातमस्ति। किन्त्वन्येषु ग्रन्थेषु पालाशं दन्तधावनं विहितमपि दृश्यते। तथाऽपि नारदीय-शिक्षावचनमेवोद्धृत्य वीरमित्रोदये तथा व्याख्यानं कृतमित्येतस्मिन् विषये सुधीभिर् विचारः कर्तव्यः।

हिन्दी– वेदाध्यनशील द्विजाति प्रातःकाल में उठकर चूप रहकर आम, अमरा, बेल, चिचिडा, सिरस इन में से किसी एक का दतौन लगाए॥३॥

खदिरस्य कदम्बस्य करवीर-करञ्जयोः।
सर्वे कण्टकिनः पुण्याः क्षीरिणश्च यशस्विनः॥४॥

अन्वयः– खदिरस्य कदम्बस्य करवीर-करञ्जयोः (वा एकतमस्य दन्तधावनं खादेत्)। (दन्तधावने प्रयुक्ताः) सर्वे कण्टकिनः (वृक्षाः) पुण्याः (भवन्ति), (सर्वे) क्षीरिणः (वृक्षाः) च यशस्विनः (भवन्ति)।

शब्दार्थः– खदिरस्य=बालतनयस्य, कदम्बस्य=नीपस्य, करवीर-करञ्जयोः=हयमारक-चिरिबिल्वयोः, (वा=अथवा, एकतमस्य=कस्याऽप्येकस्य, दन्तधावनम्=दशनमार्जनकाष्ठम्, खादेत्=भक्षयेत्)। (दन्तधावने=दशनमार्जने, प्रयुक्ताः=उपयुक्ताः), सर्वे=निखिलाः, कण्टकिनः=कण्टकयुक्ताः, (वृक्षाः= महीरुहाः), पुण्याः=पवित्रीकरणाः, (भवन्ति=जायन्ते), (सर्वे=निखिलाः), क्षीरिणः=दुग्धाभनिर्यासवन्तः, (वृक्षाः=महीरुहाः), यशस्विनः=यशस्करा, (भवन्ति=जायन्ते)।

सरलार्थः– खदिरस्य कदम्बस्य करवीरस्य नक्तमालस्य चेत्येतेषा-मेकतमस्य वा दन्तधावनं प्रयुञ्जीत। दन्तधावने प्रयुक्ताः सर्वेऽपि कण्टकिनो वृक्षाः पवित्रीकरणा भवन्ति, क्षीरिणो वृक्षाश्च यशःप्रदा भवन्ति।

विशेषः– करवीर आयुर्वेदे उपविषेषु गणितोऽस्तीति तस्य दन्तधावने प्रयोगः कर्तुं शक्यो न वेति विवेचनीयं प्रतीयते।

हिन्दी– खैर, कदम्बवृक्ष, कनेर, चिलबिल इन में से किसी एक का दतौन भी विकल्प से प्रयोग में लाए। दतौन में प्रयुक्त काँडेदार वृक्ष पवित्रता देने वाले और दूध वाले वृक्ष यश देने वाले होते हैं॥४॥

तेनाऽस्य करणे सौक्ष्म्यं माधुर्यं चोपजायते।
वर्णांश् च कुरुते सम्यक् प्राचीनौदव्रजिर् यथा॥५॥

अन्वयः– तेन अस्य करणे सौक्ष्म्यम् (स्वरे) माधुर्यम् च उपजायते। (अयम्) यथा प्राचीनौदव्रजिः (वर्णान् सम्यक् कुरुते स्म) (तथा) वर्णान् च सम्यक् कुरुते।

शब्दार्थः– तेन=पूर्वोक्तेन आम्रादिदन्तधावनकाष्ठप्रयोगेण, अस्य= वेदाध्यायिनः, करणे=उच्चारणोपयोगिनि अङ्गे, सौक्ष्म्यम्=लघुत्वम्, (स्वरे= कण्ठध्वनि-विशेषे), माधुर्यम्=मधुरत्वम्, च=अपि, उपजायते=उत्पद्यते। (अयम्=आम्रादीनां दन्तधावन-काष्ठानां प्रयोक्ता वेदाध्यायी), यथा=येन प्रकारेण, प्राचीनौदव्रजिः=पुराकालभवः शिक्षाशास्त्रविशेषज्ञः औदव्रजिर् नाम आचार्यः, (वर्णान्=अकारादिकान् ध्वनिविशेषान्, सम्यक्=सुष्ठु, कुरुते स्म= उच्चारयति स्म), (तथा=तेनैव प्रकारेण), वर्णान्=अकारादिकान् ध्वनिविशेषान्, च=अपि, सम्यक्=सुष्ठु, कुरुते=उच्चारयति।

सरलार्थः– तेनाऽऽम्रादिदन्तधावनकाष्ठप्रयोगेणाऽस्य वेदाध्यायिनः उच्चारणोपयोगिनि अङ्गे जिह्वोष्ठादिके लघुत्वं स्वरे मधुरत्वं च जायते। आम्रादि-दन्तधावनस्योपयोक्ता वेदाध्यायी प्राचीनः शिक्षाशास्त्रविशेषज्ञ आचार्य औदव्रजिरिव वर्णान् सम्यगुच्चारयितुं समर्थश्च भवति।

विशेषः– वर्णानां पदानां वाक्यानां च सम्यगुच्चारणस्य महिमा वाल्मीकिरामायणेऽपि किष्किन्धाकाण्डे (३।२९-३४) एवं ध्वनितः–

नाऽनृग्वेदविनीतस्य नाऽयजुर्वेदधारिणः।
नाऽसामवेदविदुषः शक्यमेवं प्रभाषितुम्॥
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरताऽनेन न किञ्चिदपशब्दितम्॥
न मुखे नेत्रयोश्चाऽपि ललाटे च भ्रुवोस् तथा।
अन्येष्वपि च सर्वेषु दोषः संविदितः क्वचित्॥
अविस्तरमसन्दिग्धमविलम्बितमद्रुतम्।
उरस्स्थं कण्ठगं वाक्यं वर्तते मध्यमस्वरम्॥
संस्कारक्रमसम्पन्नामद्रुतामविलम्बिताम्।
उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदयहारिणीम्॥
अनया चित्रया वाचा त्रिस्थानव्यञ्जनस्थया।
कस्य नाऽऽराध्यते चित्तमुद्यतासेररेरपि॥ इति।

हिन्दी– उस दतौन के प्रयोग से वेद पढने वालों के उच्चारण के अवयवों में लघुता और स्वर में मधुरता उत्पन्न होती है। आम्रादि के दतौन के प्रयोक्ता वेदाध्यायी प्राचीन शिक्षाशास्त्रविज्ञ आचार्य औदव्रजि की भाँति वर्णों का सम्यक् उच्चारण करने में समर्थ होता है॥५॥

त्रिफलां लवणाख्येन भक्षयेच् छिक्षकः सदा।
अग्निमेधाजनन्येषा स्वरवर्णकरी तथा॥६॥

अन्वयः– शिक्षकः सदा लवणाख्येन त्रिफलाम् भक्षयेत्। एषा अग्नि-मेधाजननी तथा स्वरवर्णकरी (च अस्ति)।

शब्दार्थः– शिक्षकः=अध्यापकः, सदा=सर्वदा, लवणाख्येन=लवण-नामकेन सैन्धव-सौर्वचल-सामुद्र-शाम्भरादिना द्रव्येण सह, त्रिफलाम्=हरीतकी-विभीतका-ऽऽमलकरूपफलत्रिकम्, भक्षयेत्=खादेत्। एषा=इहोक्ता त्रिफला, अग्नि-मेधा-जननी=जाठराग्नि-बुद्धि-वर्धिनी, तथा=तेनैव प्रकारेण, स्वरवर्ण-करी=स्वरमाधुर्य-वर्णसौष्ठवजननी, (च=अपि, अस्ति=वर्तते)।

सरलार्थः– शिक्षकः सर्वदा सैन्धवादिना सुयुक्तेन लवणेन सह (सायं भोजनोत्तरकाले) त्रिफलां भक्षयेत्। एषा त्रिफला जाठराग्नि-बुद्धि-वर्धिनी स्वरमाधुर्य-वर्णसौष्ठवजननी चाऽस्ति।

हिन्दी – शिक्षक सदाकाल ठीक मात्रा में मिलाए हुए सैन्धवादि किसी नमक के साथ (सायंकाल के भोजन के बाद) त्रिफला खाए। यह त्रिफला भूख और मेधा को बढाने वाली तथा स्वरमाधुर्य तथा वर्णसौष्ठव करने वाली भी है॥६॥

कृत्वा चाऽऽवश्यकान् धर्मान् जाठरं पर्युपास्य च।
पीत्वा धूमं घृतं चैव शुचिर् भूत्वा ततो वदेत्॥७॥

अन्वयः– (सामवेदाध्यायी) आवश्यकान् धर्मान् च कृत्वा जाठरम् च पर्युपास्य धूमम् घृतम् च एव पीत्वा ततः शुचिः भूत्वा वदेत्।

शब्दार्थः– (सामवेदाध्यायी=सामवेदस्याऽध्येता द्विजः), आवश्यकान्= अवश्यमेव सम्पाद्यान्, धर्मान्=मूत्रपुरीषोत्सर्जन-शौचा-ऽऽचमन-दन्दधावन-स्नान-सन्ध्योपासनरूपान् धर्मान्, च=अपि, कृत्वा=विधाय, जाठरम्=औदर्य-मग्निम्, च=अपि, पर्युपास्य=लघुना पवित्रेण भोज्येन पेयेन वा सम्पूज्य, धूमम्=कफच्छेदकरं चरकसंहिताद्युक्तप्रकारं धूमम्, घृतम्=आज्यम्, च= अपि, एव=हि, पीत्वा=निपीय, ततः=तदनन्तरम्, शुचिः=आचमनेन शुद्धः, भूत्वा=सम्पद्य, वदेत्=सामवेदम् उच्चारयेत्।

सरलार्थः– सामवेदाध्यायी द्विजः अवश्यमेव सम्पाद्यान् मूत्रपुरीषोत्सर्जन-शौचा-ऽऽचमन-दन्तधावन-स्नान-सन्ध्योपासनरूपान् धर्मान् सम्पाद्य जाठराग्निं च लघुना भोज्येन पेयेन वाऽपि सम्पूज्य कफच्छेदकरमायुर्वेदोक्तं धूमं पीत्वा घृतं च पीत्वा तदनन्तरं शुचिर् भूत्वा सामवेदमुच्चारयेत्।

विशेषः– धूमपानविधिश् चरकसंहितायां सूत्रस्थाने पञ्चमे अध्याये (श्लो. २०-५६) प्रतिपादितोऽस्ति। वेदाध्यायिना मधुरं स्निग्धं च भोजनं सेव्यमिति शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्येऽपि (१।२५) उक्तमस्ति। यत् तु दत्तात्रेयशास्त्रिणा "मधुघृतं चैव" इति पाठं प्रकल्प्यार्थो वर्णितः, तत् तु आयुर्वेदोक्त-धूमपान-विधेरज्ञानादिति बोध्यम्। यच्च चारुदेवेन बृहन्नारदीयपुराणे (१।५०।२१४)

"धूमम्" इत्यस्य स्थाने "मधु" इति कृतं तदप्यतत्त्वाभिनिवेशमूलकमेवाऽवगम्यते।

हिन्दी– सामवेद पढने वाला द्विजाति अवश्यमेव सम्पाद्य मूत्रपुरीषोत्सर्जन-शौच-आचमनादि धर्म सम्पादित कर के लघु और पवित्र भोज्य-पेय से जाठराग्नि की पूजा भी सम्पादित कर के कफच्छेद करने वाले आयुर्वेदोक्त धूम और घृत भी पीकर उस के बाद आचमन से शुद्ध होकर सामवेद पढे॥७॥

मन्द्रेणोपक्रमेत् पूर्वं सर्वशाखास्वयं विधिः।
सप्त मन्त्रानतिक्रम्य यथेष्टां वाचमुत्सृजेत्॥८॥

अन्वयः– (वेदाध्यायी) पूर्वम् मन्द्रेण उपक्रमेत्, अयम् विधिः सर्वशाखासु (साधारणः अस्ति), सप्त मन्त्रान् अतिक्रम्य वाचम् यथेष्टाम् उत्सृजेत्।

शब्दार्थः– (वेदाध्यायी=वेदस्याऽध्येता), पूर्वम्=प्रथमम्, मन्द्रेण=गभीरेण स्वरेण, उपक्रमेत्=प्रारभेत, अयम्=अत्र निर्दिष्टः, विधिः=विधानम्, सर्वशाखासु=निखिलेषु वेदचरणेषु, (साधारणः=सामान्यः, अस्ति=वर्तते)। सप्त=ऋषिमितान्, मन्त्रान्=मनून्, अतिक्रम्य=अतीत्य, वाचम्=वाणीम्, यथेष्टाम्=इच्छानुरूपाम्, उत्सृजेत्=मुञ्चेत्।

सरलार्थः– वेदस्याऽध्येता प्रथमं गम्भीरेण स्वरेण प्रारभेत, एतद् विधानं सर्वशाखासाधारणम् अस्ति, सप्त मन्त्रान् अतीत्य तु वाणीं यथेष्टां मुञ्चेत्।

हिन्दी– वेद का अध्येता पहले गम्भीर स्वर से प्रारम्भ करे। सात मन्त्र लाँघकर तो वाणी को सुभीता के अनुसार प्रवर्तित करे॥८॥

न तां समीरयेद् वाचं या प्राणमुपरोधयेत्।
प्राणानामुपरोधेन वैस्वर्यं चोपजायते।
स्वरव्यञ्जनमाधुर्यं लुप्यते नाऽत्र संशयः॥९॥

अन्वयः– (वेदाध्यायी) या (वाक्) प्राणम् उपरोधयेत् ताम् वाचम् न समीरयेत्। प्राणानाम् उपरोधेन वैस्वर्यम् उपजायते, स्वरव्यञ्जनमाधुर्यम् लुप्यते च अत्र संशयः न (अस्ति)।

शब्दार्थः– (वेदाध्यायी=वेदस्याऽध्येता), या=आकाङ्क्षाबुद्धिविशेषविषयभूता, (वाक्=वाणी), प्राणम्=प्रश्वासनिश्श्वासगतिम्, उपरोधयेत्=पीडयेत्, ताम्=आकाङ्क्षापूरणबुद्धिविषयभूताम्, वाचम्=वाणीम्, न=नैव, समीरयेत्=उच्चारयेत्। प्राणानाम्=प्रश्वासनिश्श्वासानाम्, उपरोधेन=पीडनेन, वैस्वर्यम्=विस्वरत्वम्=स्वरविकारः, उपजायते=उत्पद्यते, स्वर-व्यञ्जन-माधुर्यम्=अकारादीनां स्वराणाम्, कादीनां व्यञ्जनानां च मधुरत्वम्, लुप्यते=नश्यति, च=अपि, अत्र=एतस्मिन् विषये, संशयः=सन्देहः, न=नैव, (अस्ति=वर्तते)।

सरलार्थः– वेदस्याऽध्येता या वाणी प्रश्वासनिश्श्वासगतिं पीडयेत् तां वाणीं नैव उच्चारयेत्। प्रश्वासनिश्श्वासानाम् उपरोधेन स्वरविकार उत्पद्यते, अकारादिस्वराणां कादिव्यञ्जनानां च माधुर्यमपि नश्यति। अस्मिन् विषये सन्देहो नाऽस्ति।

विशेषः– अत्र शिक्षकाणां साधारणा आचारा एव प्रतिपादिताः। **"ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च"** इति (पाणिनीयव्याकरणभाष्ये पस्पशाह्निके), **"वेदस्वीकरणं पूर्वं विचारोऽभ्यसनं जपः। तद्दानं चैव शिष्येभ्यो वेदाभ्यासो हि पञ्चधा"** इति (दक्षस्मृतौ २।३४), **"उपनीय गुरुः शिष्यं महाव्याहृतिपूर्वकम्। वेदमध्यापयेदेनं शौचाचाराँश् च शिक्षयेत्"** इति (याज्ञवल्क्यस्मृतौ १।१५), **"ब्रह्मचारी धनदायी मेधावी श्रोत्रियः प्रियः। विद्यया वा विद्यां यः प्राह तानि तीर्थानि षण् मम"** इति (संहितोपनिषद्ब्राह्मणे तृतीयखण्डे), **"अधीयीरँस् त्रयो वर्णाः स्वकर्मस्था द्विजातयः। प्रब्रूयाद् ब्राह्मणस् त्वेषां नेतराविति निश्चयः"** इति (मनुस्मतौ १०।१), **"अब्राह्मणादध्ययनमापत्काले विधीयते। अनुव्रज्या च शुश्रूषा यावदध्ययनं गुरोः"** (मनुस्मृतौ २।२४१) इत्यादयश् चाऽन्येऽपि आचारा धर्मशास्त्रग्रन्थेभ्योऽवगन्तव्याः। एतस्मिन् विषये कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां च उपक्रमाध्यायेऽध्यापनविधिनिरूपणप्रकरणे विशेषेण विवरणं कृतमस्ति।

हिन्दी– वेद का अध्येता जो वाणी श्वास-प्रश्वास की गति को पीडित करती है उस वाणी को प्रयोग में न लाए, श्वास-प्रश्वास-गति के उपरोध से स्वरविकार उत्पन्न होता है, और अकारादि स्वरों का और कादि व्यञ्जनों का मधुरत्व भी नष्ट होता है, इस विषय में सन्देह नहीं है॥९॥

कुतीर्थादागतं दग्धमपवर्णं च भक्षितम्।
न तस्य पाठे मोक्षोऽस्ति पापाहेरिव किल्बिषात्॥१०॥

अन्वयः– कुतीर्थात् आगतम् दग्धम् अपवर्णम् भक्षितम् च (यद् ब्रह्म) तस्य पाठे पापाहेः इव किल्बिषात् मोक्षः न अस्ति।

शब्दार्थः– कुतीर्थात्=अनधिगतसाङ्गवेदाद् उच्चारणगुणदोषाद्यनभिज्ञाद् अयोग्याद् अध्यापकात्, आगतम्=प्राप्तम्, दग्धम्=दग्धरज्जुन्यायेन स्थितम् आभासमात्रं निर्वीर्यम्, अपवर्णम्=अपगतवर्णम्, भक्षितम्=अन्तर्दन्तकेनाऽस्पष्टमुच्चारितम्, च=अपि (यत्=साकाङ्क्षबुद्धिविशेषस्थम्, ब्रह्म=वेदः), तस्य=तादृशस्य ब्रह्मणः, पाठे=अध्ययने, पापाहेः=दुष्टसर्पाद्, इव=यथा, किल्बिषात्=पापात्, मोक्षः=मुक्तिः, न=नैव, अस्ति=भवति।

सरलार्थः– अनधिगतसाङ्गवेदाद् उच्चारणगुणदोषाद्यनभिज्ञाद् अयोग्याद् अध्यापकाद् अधीतं दग्धरज्जुन्यायेन स्थितमाभासमात्रं निर्वीर्यं वर्णविकलम् अन्तर्दन्तकेनाऽस्पष्टतयाऽधीतं च यद् ब्रह्म तस्य पाठे प्रकोपिताद् दुष्टसर्पादिव पापान् मुक्तिर्न भवति।

विशेषः– एतत् पद्यं पाणिनीयशिक्षायां माण्डूकीयशिक्षायां चोपलभ्यते। गुरुमुखोच्चारणानूच्चारणं गुरुसंश्रवे स्थित्वा सम्यगभ्यासं च कृत्वा गुरुणा येन विधिना योग्यादाचार्यात् साङ्गो वेदोऽधीतः तस्मादेव गुरोर् वेदोऽध्येयः, अन्यथा पापमेवाऽऽत्मनि लिप्यते इत्यस्य पद्यस्य भावः। अत एव "**तमसो वा एष तमः प्रविशति यमविद्वानुपनयते यश्चाऽविद्वानिति हि ब्राह्मणम्**" इति आपस्तम्बधर्मसूत्रे प्रोक्तम् (१।१।१।११)।

हिन्दी– अनधिगतसाङ्गवेद और उच्चारणगुणदोषाद्यनभिज्ञ अयोग्य अध्यापक से पढा हुआ, दग्धरज्जु जैसा आभासमात्र और स्वकार्यासमर्थ, वर्णविकल, अस्पष्टोच्चारित जो वेद है उस के पाठ करने पर क्रुद्ध गोमन सर्प से जैसे छुटकारा नहीं मिलता है वैसे ही पाप से छुटकारा नहीं मिलता है॥१०॥

सुतीर्थादागतं व्यक्तं स्वाम्नातं सुव्यवस्थितम्।
सुस्वरेण सुवक्त्रेण प्रयुक्तं ब्रह्म राजते।।११।।

अन्वयः— सुतीर्थात् आगतम् व्यक्तम् स्वाम्नातम् सुव्यवस्थितम् सुस्वरेण सुवक्त्रेण (द्विजेन) प्रयुक्तम् ब्रह्म राजते।

शब्दार्थः— सुतीर्थात्=धर्माधिगतसाङ्गवेदकाद् उच्चारणगुणदोषाभिज्ञाद् योग्याद् अध्यापकात्, आगतम्=प्राप्तम्, व्यक्तम्=स्पष्टम्, स्वाम्नातम्=शुद्ध-रूपेणाऽभ्यस्तम्, सुव्यवस्थितम्=सम्यक् कण्ठे स्थितम्, सुस्वरेण=शोभन-स्वरयुक्तेन, सुवक्त्रेण=शोभन-दन्तोष्ठादिवद्-वदनेन, (द्विजेन=द्विजातिजनेन), प्रयुक्तम्=उच्चारितम्, ब्रह्म=वेदः, राजते=दीप्यते।

सरलार्थः— (गुरुमुखोच्चारणानूच्चारणं गुरुसंश्रवे स्थित्वा सम्यगभ्यासं च कृत्वा येन विधिना योग्यादाचार्यात् साङ्गो वेदोऽधीतस् तादृशाद्) योग्याद् गुरोर् विधिनाऽधीतः, स्पष्टः, शुद्धरूपेणाऽभ्यस्तः, सम्यक् कण्ठस्थीकृतः शोभन-स्वरेण शोभनदन्तोष्ठादिवाणीकरणयुतेन द्विजेन (प्रकर्षेण विधिपूर्वकं यज्ञादिषु) समुच्चारितो वेदः (शब्देनाऽर्थेन प्रभावेण च) दीप्यते।

हिन्दी— (यथाविधि गुरुमुखोच्चारण सुनकर तदनुसार उच्चारण और गुरु के श्रवणगोचर स्थल में रहकर तदनुसार अभ्यास करके जिन्हों ने साङ्गवेद का अध्ययन किया है और जो उच्चारण गुणदोषादि के अभिज्ञ हैं ऐसे) सद्गुरु से विधिवत् प्राप्त, स्पष्ट, शुद्धरूप से अभ्यस्त, कण्ठस्थ रूप में अध्येतृवश में अवस्थित, तथा मधुर स्वर वाले और शोभन दन्तोष्ठादि वदनावयव वाले अध्येता से उच्चरित वेद (शब्द अर्थ और प्रभाव की दृष्टि से) विराजित होता है।।११।।

न करालो न लम्बोष्ठो न च सर्वानुनासिकः।
गद्गदो बद्धजिह्वश् च प्रयोगान् वक्तुमर्हति।।१२।।

अन्वयः— करालः प्रयोगान् वक्तुम् न अर्हति, लम्बोष्ठः (प्रयोगान् वक्तुम्) न (अर्हति), सर्वानुनासिकः च (प्रयोगान् वक्तुम्) न (अर्हति), गद्गदः बद्धजिह्वः च (प्रयोगान् वक्तुम् न अर्हति)।

शब्दार्थः– करालः=दन्तुरो जनः, प्रयोगान्=छान्दसशब्दान्, वक्तुम्=उच्चारयितुम्, न=नहि, अर्हति=योग्यो भवति, लम्बोष्ठः=प्रलम्बदशनच्छदो जनः, (प्रयोगान्=छान्दसशब्दान्, वक्तुम्=उच्चारयितुम्), न=नहि, (अर्हति=योग्यो भवति), सर्वानुनासिकः=सर्वेषामेव स्वराणामनुनासिकत्वं कृत्वा व्याहर्ता जनः, च=अपि, (प्रयोगान्=छान्दसशब्दान्, वक्तुम्=उच्चारयितुम्), न=नहि, (अर्हति=योग्यो भवति), गद्गदः=पदादौ अक्षरेऽक्षरे वा द्वित्वं त्रित्वं वाऽपि कृत्वा भाषिता जनः, बद्धजिह्वः=वाक्स्तम्भवान् जनः, च=अपि, (प्रयोगान्=छान्दसशब्दान्, वक्तुम्=उच्चारयितुम्, न=नहि, अर्हति=योग्यो भवति)।

सरलार्थः– दन्तुरो जनो वेदशब्दान् उच्चारयितुं योग्यो न भवति, प्रलम्बदशनच्छदो जनश्च वेदशब्दान् उच्चारयितुं योग्यो न भवति, सर्वेषामेव स्वराणामनुनासिकत्वं कृत्वोच्चारयिता जनोऽपि वेदशब्दानुच्चारयितुं योग्यो न भवति, पदादौ अक्षरेऽक्षरे वाऽक्षरस्य द्वित्वं त्रित्वं वा कृत्वा भाषिता जनः, वाक्स्तम्भवान् जनश्च वेदशब्दान् उच्चारयितुं योग्यो न भवति।

विशेषः– एष श्लोकः स्वल्पेन पाठभेदेन याज्ञवल्क्यशिक्षायामपि पठ्यते। कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां प्रथमे उपक्रमाध्याये (श्लो.३५, पृ.११५) चाऽयं श्लोकः सङ्गृह्य व्याख्यातोऽस्ति।

हिन्दी– ज्यादा लम्बे दाँत वाला मनुष्य वेदशब्दों का ठीक प्रकार से उच्चारण करने के लिए योग्य नहीं होता है, ज्यादा लम्बे होंठ वाला मनुष्य भी वेदशब्दों का ठीक प्रकार से उच्चारण करने के लिए योग्य नहीं होता है, सदा नकियाने वाला मनुष्य भी वेदशब्दों का ठीक प्रकार से उच्चारण करने के लिए योग्य नहीं होता है, हकलाने वाला मनुष्य और जीभ की चेष्टा में समय-समय में आनेवाले रुकावट से युक्त मनुष्य भी वेदशब्दों का ठीक प्रकार से उच्चारण करने के लिए योग्य नहीं होता है॥१२॥

एकचित्तो निरुद्भ्रान्तस् तान-गान-विवर्जितः।
स तु वर्णान् प्रयुञ्जीत दन्तोष्ठं यस्य शोभनम्॥१३॥

अन्वयः– यस्य दन्तोष्ठम् शोभनम् स तु एकचित्तः निरुद्भ्रान्तः तान-गान-विवर्जितः (सन्) वर्णान् प्रयुञ्जीत।

शब्दार्थः– यस्य=आकाङ्क्षाबुद्धिविशेषविषयभूतस्य द्विजस्य, दन्तोष्ठम्=दन्ताश्च ओष्ठौ च, शोभनम्=अविकृतम्, सः=आकाङ्क्षापूरणबुद्धिविषयो द्विजः, तु=हि, एकचित्तः=स्वाध्यायैकमनाः, निरुद्भ्रान्तः=उद्वेगादिरहितः, तान-गान-विवर्जितः=अतिविलम्बितोच्चारण-रागयुक्तोच्चारण-रहितः, (सन्=भवन्), वर्णान्=वेदमन्त्रवर्णान्, प्रयुञ्जीत=उच्चारयेत्।

सरलार्थः– यस्य द्विजस्य दन्ता अविकृताः ओष्ठौ चाऽविकृतौ स हि द्विजः स्वाध्यायैकमना उद्वेगादिरहितः अतिविलम्बितोच्चारण-रागरञ्जितोच्चारण-रहितश्च सन् वेदमन्त्रवर्णान् उच्चारयेत्।

हिन्दी– जिस द्विजाति के दाँत और होंठ अविकृत हों वह द्विजाति ही स्वाध्याय में एकचित्त और उद्वेगरहित होकर ज्यादा विलम्बित उच्चारण और गाने के जैसे उच्चारण से रहित होता हुआ वेदमन्त्र के वर्णों को बोले॥१३॥

पञ्च विद्यां न गृह्णन्ति चण्डाः स्तब्धाश् च ये नराः।
अलसाश् चाऽनरोगाश् च येषां च विसृतं मनः॥१४॥

अन्वयः– चण्डाः, ये नराः स्तब्धाः (ते) च अलसाः च अनरोगाः च येषाम् मनः विसृतम् (ते) च (इति) पञ्च विद्याम् न गृह्णन्ति।

शब्दार्थः– चण्डाः=अत्यन्तकोपनाः, ये=आकाङ्क्षाबुद्धिविशेषविषयाः, नराः=मनुष्याः, स्तब्धाः=गुर्वाज्ञासम्पादने सुखेनाऽप्रवर्तितारः, (ते=आकाङ्क्षा-पूरणबुद्धिविषयाः नराः), च=अपि, अलसाः=उद्योगे रसमननुभवन्तो जनाः=आलस्याऽभिभूता जनाः, च=अपि, अनरोगाः=अरोगत्वरहिताः=सदा रोगाक्रान्ताः, च=अपि, येषाम्=आकाङ्क्षाबुद्धिविशेषविषयाणां जनानाम्, मनः=चित्तम्, विसृतम्=विविधेषु विषयेषु गतम्=चञ्चलम्, (ते=आकाङ्क्षापूरणबुद्धिविषयाः जनाः), च=अपि, (इति=एवम्प्रकाराः), पञ्च=बाणमितप्रकाराः जनाः, विद्याम्=शास्त्रज्ञानम्, न=नहि, गृह्णन्ति=समाददते।

सरलार्थः– अत्यन्तकोपनाः, स्तब्धाः, अलसाः, सदा सरोगाः, चञ्चल-चित्ताश्चेति पञ्चप्रकारका जना विद्यां ग्रहीतुं समर्था न भवन्ति।

विशेषः– "अलसाश् चाऽनरोगाश् च" इत्यस्य स्थाने "अलसाश् च सरोगाश् च" इति बृहन्नारदीयपुराणे पाठः (१।५०।२२१)।

हिन्दी – चिडचिडा मनुष्य, ढीठ मनुष्य, आलसी मनुष्य, व्याधिग्रस्त मनुष्य और चञ्चलचित्त वाला मनुष्य ये पाँच प्रकार के मनुष्य विद्या का ग्रहण नहीं कर सकते हैं॥१४॥

शनैर् विद्यां शनैरर्थानारोहेत् पर्वतं शनैः।
शनैरध्वसु वर्तेत योजनानां परं व्रजेत्॥१५॥

अन्वयः– विद्याम् शनैः (साधयेत्), अर्थान् शनैः (साधयेत्), पर्वतम् शनैः आरोहेत्, (यः) अध्वसु शनैः वर्तेत (स) योजनानाम् परम् व्रजेत्।

शब्दार्थः– विद्याम्=ज्ञानम्, शनैः=अद्रुतम्, (साधयेत्=सिद्धां कुर्यात्), अर्थान्=धनानि, शनैः=अद्रुतम्, (साधयेत्=सिद्धान् कुर्यात्), पर्वतम्=शैलम्, शनैः=अद्रुतम्, आरोहेत्=अधिक्रामेत्, (यः=आकाङ्क्षाबुद्धिविषयभूतो जनः), अध्वसु=मार्गेषु, शनैः=अद्रुतम्, वर्तेत=गच्छेत्, (सः=आकाङ्क्षापूरणबुद्धिविषयभूतो जनः), योजनानाम्=चतुष्क्रोशात्मकाध्वपरिमाणविशेषाणाम्, परम्=परतो वर्तमानं देशम्, व्रजेत्=गच्छेत्।

सरलार्थः– विद्यां शनैः साधयेत्, धनमपि शनैः साधयेत्, पर्वतं च शनैरारोहेत्, यो हि मार्गेषु शनैर् गच्छेत स हि योजनानां परं प्राप्नुयात्।

विशेषः– एतस्मिन्नेवाऽर्थेऽधोलिखितं सुभाषितं प्रसिद्धं वर्तते–

शनैः पन्थाः शनैः कन्था शनैः पर्वतलङ्घनम्।
शनैर् विद्या शनैर् वित्तं पञ्चैतानि शनैःशनैः॥ इति।

अत्र मूले **"योजनान् न परं व्रजेत्"** इति वा चतुर्थचरणपाठः सम्भाव्यते। तत्पक्षे **"शनैरध्वसु वर्तेत"** इति पृथग् वाक्यम्, ततः **"योजनान् न परं व्रजेत्"** इति वाक्यम्। वेदाध्यायी एकस्मिन् दिने योजनमात्रं गच्छेत्, न त्वरयाऽधिकं गच्छेत्, अधिकगमने श्रमाधिक्येनाऽऽस्वास्थ्यादध्ययने विघ्नस्य सम्भवादिति चतुर्थचरणवाक्यभावोऽवगन्तव्यः। अधीयानो योजनादधिकमध्वानं न गच्छेदिति शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्येऽपि **"योजनान् न परम्"** इति सूत्रेण

(१।२४) प्रोक्तमस्ति। बृहन्नारदीयपुराणेऽपि "**योजनान् न परं व्रजेत्**" इत्येव पाठो दृश्यते (१।५०।२२२)।

हिन्दी– विद्या को आहिस्ता से सिद्ध करे, धन को भी आहिस्ता से सिद्ध करे, पर्वत को भी आहिस्ता से चढे। जो व्यक्ति आहिस्ता से रास्ते में चलेगा वह चार कोस की दूरी वाले कई योजनों से दूर रहे हुए स्थान को भी प्राप्त कर लेगा।।१५।।

योजनानां सहस्राणि शनैर् याति पिपीलिका।
अगच्छन् वैनतेयोऽपि पदमेकं न गच्छति।।१६।।

अन्वयः– पिपीलिका शनैः योजनानां सहस्राणि याति। अगच्छन् वैनतेयः अपि एकं पदम् न गच्छति।

शब्दार्थः– पिपीलिका=पिपीलिकाख्यः कीटविशेषः, शनैः=अद्रुतम्, योजनानाम्=चतुष्क्रोशप्रमाणकानामध्वपरिमाणविशेषाणाम्, सहस्राणि=दश-शतकानि, याति=गच्छति, अगच्छन्=अयान्, वैनतेयः=गरुडः, अपि=च, एकम्=चन्द्रमितम्, पदम्=एकेन पादन्यासेन परिमितं देशम्, न=नैव गच्छति=याति।

सरलार्थः– पिपीलिकाऽपि शनैःशनैर् गच्छन्ती सती योजनानां सहस्राणि अपि याति, अगच्छँस् तु गरुडोऽपि एकं पदमपि न हि याति।

विशेषः– एतस्मिन्नेवाऽर्थे मार्कण्डेयपुराणेऽपि (१८।३८-३९) अधोलिखितः श्लोको दृश्यते–

योजनानां सहस्राणि याति गच्छन् पिपीलिकः।
अगच्छन् वैनतेयोऽपि पदमेकं न गच्छति।। इति।

हिन्दी– चींटी भी आहिस्ता से चलती हुई हजारों योजन पार करती है, न चलने वाला तो गरुड भी एक पग भी नहीं चलता है।।१६।।

न हि पार्ष्णिहता वाणी प्रयोगान् वक्तुमर्हति।
बधिरस्येव तल्पस्था विदग्धा वामलोचना।।१७।।

अन्वयः– तल्पस्था विदग्धा बधिरस्य वामलोचना इव पार्ष्णिहता वाणी प्रयोगान् वक्तुम् न हि अर्हति।

शब्दार्थः– तल्पस्था=शयनीयगता, विदग्धा=कामशास्त्रे प्रवीणा चतुरा, बधिरस्य=एडस्य, वामलोचना=कामिनी, इव=यथा, पार्ष्णिहता=पूर्वमुच्चैरुच्चारिता पश्चाद् विक्षीणा, वाणी=वाक्, प्रयोगान्=वेदमन्त्रप्रयोगान्, वक्तुम्=उच्चारयितुम्, न हि=नैव, अर्हति=योग्या भवति।

सरलार्थः– यथा शयनीयगता कामशास्त्रे प्रवीणा चतुराऽपि बधिरस्य कामिनी कामशास्त्रप्रयोगान् वक्तुं नार्हति, तथैव पूर्वमुच्चैरुच्चारिता पश्चाद् विक्षीणा वाणी च वेदमन्त्रप्रयोगान् वक्तुं नार्हति।

विशेषः– पार्ष्णिरिति पादपश्चाद्भाग उच्यते। पार्ष्णिहता इति पूर्वमुच्चैः कृतेनोच्चारणेन पीडिता प्राणपरिक्षयेण पश्चात् क्षीणतयोच्चारिता उच्यते। पश्चाद्भागप्रतिपादनाय पार्ष्णिशब्दो दण्डनीतिशास्त्रेऽपि प्रयुज्यते।

हिन्दी– जैसे बिस्तरे में स्थित और कामशास्त्र में कुशल तथा चतुर भी बहरे की स्त्री कामशास्त्रप्रयोग कुछ नहीं बोल सकती है, वैसे ही पहले उच्च स्वर में उच्चारित होने से प्राणक्षय से पीछे क्षीणता में पहुँची हुई वाणी वेदमन्त्रप्रयोगों को बोलने में योग्य नहीं रहती है ॥१७॥

उपांशु त्वरितं चैव योऽधीते वित्रसन्निव।
अपि रूपसहस्रेषु सन्देहेष्वेव वर्तते ॥१८॥

अन्वयः– यः उपांशु त्वरितम् वित्रसन् इव च एव अधीते (सः) रूपसहस्रेषु (अधीतेषु) अपि सन्देहेषु एव वर्तते।

शब्दार्थः– यः=आकाङ्क्षाबुद्धिविशेषविषयभूतो जनः, उपांशु=जिह्वादिव्यापारसहितत्वेऽपि स्पष्टेन श्रवणीयेनोच्चारणेन रहितम्, त्वरितम्=अतिद्रुतम्, वित्रसन्=सन्त्रस्यन्, इव=यथा, च=अपि, एव=हि, अधीते=पठति, (सः=आकाङ्क्षापूरणबुद्धिविषयभूतो जनः), रूपसहस्रेषु=प्रयोगाणां दशशतकेषु, (अधीतेषु=पठितेषु), अपि=च, सन्देहेषु=संशयेषु, एव=हि, वर्तते=अवतिष्ठते।

सरलार्थः– यः खलु समीपस्थेनाऽपि परेणाऽश्रवणीयतया, अतिद्रुततया, बिभ्यदिव चाऽपि अधीते स रूपाणां सहस्रेषु अधीतेष्वपि रूपाणां शुद्धस्य रूपस्य विषये संशयेष्वेव पतितो भवति।

हिन्दी– जो मन्द स्वर से गुप्त रूप से, अतिशीघ्रता से और सन्त्रासयुक्त सा होकर पढता है, वह हजारों रूपों को पढने पर भी रूपों के शुद्ध स्वरूप के विषय में संशय में ही पडा रहता है ॥१८॥

पुस्तकप्रत्ययाऽधीतं नाऽधीतं गुरुसन्निधौ।
राजते न सभामध्ये जारगर्भा इव स्त्रियः॥१९॥

अन्वयः– गुरुसन्निधौ न अधीतम् पुस्तकप्रत्ययाधीतम् जारगर्भाः स्त्रियः इव सभामध्ये न राजते।

शब्दार्थः– गुरुसन्निधौ=उपाध्यायसमीपे, न अधीतम्=अपठितम्, पुस्तकप्रत्ययाधीतम्=लिखितग्रन्थविश्वासेन पठितम् पाठ्यं वस्तु, जारगर्भाः= उपपतिकृतगर्भाधानाः, स्त्रियः=नार्यः, इव=यथा, सभामध्ये=विद्वज्जनसंसदि, न=नहि, राजते=दीप्यते=शोभते।

सरलार्थः– अध्यापकाद् अनधीतं पुस्तकविश्वासेन पुस्तकं विलोक्यैव पठितं वेदमन्त्रादिकं पाठ्यं वस्तु जाराहितगर्भा नार्य इव विज्ञजनसमुदाये न भ्राजते।

विशेषः– "**भ्राजते न सभामध्ये जारगर्भ इव स्त्रियाः**" इति स्मृति-चन्द्रिकायामध्ययनविधिप्रकरणे उत्तरार्धपाठः। "**जारगर्भा इव स्त्रियः**" इत्यस्य स्थाने "**जारगर्भेव कामिनी**" इति बृहन्नारदीयपुराणे पाठः (१।५०।२२६)।

हिन्दी– गुरु के मुह से नहीं पढा गया, केवल पुस्तक देखकर पढा गया वेदमन्त्रादि पाठ्यवस्तु उपपति से गर्भ लेने वाली स्त्रियाँ जैसे सभा में शोभित नहीं होतीं हैं वैसे ही विज्ञजनों के समुदाय में शोभित नहीं होता है ॥१९॥

अञ्जनस्य क्षयं दृष्ट्वा वल्मीकस्य तु सञ्चयम्।
अवन्ध्यं दिवसं कुर्याद् दानाऽध्ययनकर्मसु॥२०॥

अन्वयः– (जनः) अञ्जनस्य क्षयम् वल्मीकस्य तु सञ्चयम् दृष्ट्वा दानाऽध्ययनकर्मसु दिवसम् अवन्ध्यम् कुर्यात्।

शब्दार्थः– (जनः=मनुष्यः), अञ्जनस्य=कज्जलकोषस्य, क्षयम्=अप-चयम्, वल्मीकस्य=उपोदिकाकृतमृत्तिकाराशेः, सञ्चयम्=उपचयम्, दृष्ट्वा=

विलोक्य, दानाऽध्ययनकर्मसु=द्रव्यत्याग-वेदपठनादि-कृत्येषु, दिवसम्=दिनम्, अवन्ध्यम्=अरिक्तम्, कुर्यात्=विदधीत।

सरलार्थः– विचारशीलो मनुष्यः प्रतिदिनं स्वल्पस्वल्पेनाऽपि ह्रासेन जातमञ्जनकोषस्य क्षयं प्रतिदिनं जातया स्वल्पस्वल्पयापि वृद्ध्या जातम् उपोदिका-कृतमृत्तिकागोलस्य उपचयं च दृष्ट्वा दानाऽध्ययनादिकृत्यैर् दिनमरिक्तं कुर्यात्।

विशेषः– अतः परं भाण्डारकरप्राच्यविद्यासंशोधनमन्दिरसंस्करणे दृश्यमानः **"योजनानां शतं साग्रम्"** इत्यादिकः श्लोकः अन्यसंस्करणेषु अदृश्य-मानः **"योजनानां सहस्राणि"** (२।८।१६) इत्यादिना श्लोकेनैव प्रतिपादितमर्थं प्रतिपादयन् निष्प्रयोजनश्चेत्यत्र नोपात्तः।

हिन्दी – विचारशील मनुष्य प्रतिदिन बहूत थोडा-थोडा ही ह्रास होने पर भी अञ्जन का पूर्ण क्षय, और प्रतिदिन बहूत थोडी-थोडी वृद्धि होने पर भी दीमकों से बनाए गए मिट्टी के टीले के सञ्चय को देखकर दान-अध्ययन इत्यादि सत्कर्म से दिन को अशून्य बनाए ॥२०॥

यत् कीटैः पांसुभिः श्लक्ष्णैर् वल्मीकः क्रियते महान्।
न तत्र बलसामर्थ्यमुद्योगस् तत्र कारणम् ॥२१॥

अन्वयः– कीटैः श्लक्ष्णैः पांसुभिः महान् वल्मीकः यत् क्रियते, तत्र बलसामर्थ्यम् न (अस्ति), तत्र उद्योगः कारणम् (अस्ति)।

शब्दार्थः– कीटैः=उपोदिकाख्यैः कृमिभिः, श्लक्ष्णैः=मसृणैः, पांसुभिः= मृत्तिकाकणैः, महान्=वड्रः, वल्मीकः=उपोदिकाकार्यमृत्तिकागोलः, यत् क्रियते= यत् सम्पाद्यते, तत्र=तस्मिन् कार्ये, बलसामर्थ्यम्=शक्तेराधिक्यस्य कारणत्वम्, न=नहि, (अस्ति=वर्तते), तत्र=तस्मिन् कार्ये, उद्योगः=उद्यमः, कारणम्=हेतुः, (अस्ति=वर्तते)।

सरलार्थः– उपोदिकाख्यैः कृमिभिर् मसृणैर् मृत्तिकाकणैर् महान् मृत्तिकागोलको यत् क्रियते तत्र बलस्याऽऽधिकता कारणं नास्ति, तत्र अविश्रान्त उद्योग एव कारणमस्ति।

विशेषः– विद्यासाधनेऽपि बलाधिक्यं कारणं न भवति, निरन्तरो-ऽभियोग एव कारणं भवति, तस्मात् सततमध्ययनं कर्तव्यमिति भावः।

हिन्दी– दीमकों से चिकनी मिट्टी के सूक्ष्म कणों से बहूत बडा टीला जो बनाया जाता है, उस में बल की अधिकता कारण नहीं है, उस में निरन्तर उद्योग कारण है॥२१॥

सहस्रगुणिता विद्या शतशः परिकीर्तिता।
आगमिष्यति जिह्वाग्रे स्थलान् निम्नमिवोदकम्॥२२॥

अन्वयः– सहस्रगुणिता शतशः परिकीर्तिता विद्या उदकम् स्थलान् निम्नम् इव जिह्वाग्रे आगमिष्यति।

शब्दार्थः– सहस्रगुणिता=दशशतवारं घुष्टा, शतशः=परश्शतवारम्, परिकीर्तिता=शिष्येभ्यः प्रोक्ता, विद्या=ज्ञानप्रतिपादको ग्रन्थः, उदकम्=जलम्, स्थलात्=उच्चप्रदेशात्, निम्नम्=नीचं स्थानम्, इव=यथा, जिह्वाग्रे=रसनाग्रे, आगमिष्यति=आयास्यति।

सरलार्थः– दशशतवारं घुष्टा परश्शतवारं शिष्येभ्यः प्रोक्ता च विद्या जलमुच्चात् स्थानान् नीचं स्थानमिव जिह्वाग्रे आगमिष्यति।

विशेषः– अत्र दक्षस्मृतौ (२।३४) प्रतिपादितं वेदाभ्यासस्वरूपमपि स्मरणीयम्। तद् यथा–

वेदस्वीकरणं पूर्वं विचारोऽभ्यसनं जपः।
तद्दानं चैव शिष्येभ्यो वेदाभ्यासो हि पञ्चधा॥ इति।

हिन्दी– हजार बार दुहराई गई और सैकडों बार शिष्यों को पढाई गई विद्या उच्च स्थान से नीचे स्थान की ओर पानी की भाँति जिह्वाग्र में आ जाती है॥२२॥

हयानामिव जात्यानामर्धरात्रार्धशायिनाम्।
न हि विद्यार्थिनां निद्रा चिरं नेत्रेषु तिष्ठति॥२३॥

अन्वयः– अर्धरात्रार्धशायिनाम् जात्यानाम् हयानाम् इव विद्यार्थिनाम् निद्रा नेत्रेषु चिरम् न हि तिष्ठति।

शब्दार्थः– अर्धरात्रार्धशायिनाम्=अर्धरात्रस्यार्धमेव कालम् शयितृणाम्, अथवा रात्रेरर्धं भागमेव अर्धेन पार्श्वेन शयितुं शीलं येषां तेषाम्, जात्यानाम्=श्रेष्ठजातिकानाम्, हयानाम्=घोटकानाम्, इव=यथा, विद्यार्थिनाम्=विद्या-

भिलाषिणां छात्राणाम्, निद्रा=स्वापः, नेत्रेषु=अक्षिषु, चिरम्=चिराय, न=नैव, हि=एव, तिष्ठति=अवतिष्ठते।

सरलार्थः– रात्रेरर्धं भागमेव एकेनैव पार्श्वेन शयितॄणां श्रेष्ठजातिकानां घोटकानामिव विद्याभिलाषिणां छात्राणां निद्रा अक्षिषु चिरकालं न तिष्ठति।

हिन्दी– रात के आधे भाग समय में ही एक पार्श्व से ही सोने वाले घोडों की भाँति विद्याभिलाषी छात्रों की निद्रा आखों में बहूत देर तक नहीं रहती है॥२३॥

न भोजनविलम्बी स्यान् न चाऽशननिबन्धनः।
सुदूरमपि विद्यार्थी व्रजेद् गरुडहंसवत्॥२४॥

अन्वयः– विद्यार्थी भोजनविलम्बी न स्यात्, (विद्यार्थी) अशननिबन्धनः च न (स्यात्), (विद्यार्थी) सुदूरम् अपि गरुडहंसवत् व्रजेत्।

शब्दार्थः– विद्यार्थी=विद्याभिलाषी जनः, भोजनविलम्बी=अदने दीर्घस्य कालस्य गमयिता, न=नैव, स्यात्=भवेत्, (विद्यार्थी=विद्याभिलाषी जनः), अशननिबन्धनः=पर्याप्तस्वादुभोजनप्राप्तिपरतन्त्रः, च=अपि, न=नैव, (स्यात्=भवेत्), (विद्यार्थी=विद्याभिलाषी जनः), सुदूरम्=अतिविप्रकृष्टं देशम्, अपि=च, गरुडहंसवत्=गरुडस्येव वेगेन हंसस्येव धैर्यवत्त्वेन च, व्रजेत्=गच्छेत्।

सरलार्थः– विद्याभिलाषी जनो भोजने दीर्घस्य कालस्य गमयिता न भवेत्, विद्याभिलाषी जनः पर्याप्तस्वादुभोजनप्राप्तिपराधीनश्च न भवेत्, विद्याभिलाषी जनोऽतिविप्रकृष्टं देशमपि विद्यार्थं गरुडस्येव वेगवत्या गत्या हंसस्येव धैर्यवत्या गत्या च गच्छेत्।

विशेषः– **"न चाऽशननिबन्धनः"** इति पीताम्बरापीठसंस्करणानुकूलः पाठः। अन्येषु संस्करणेषु तु **"न च नारीनिबन्धनः"** इति पाठः। ब्रह्मचारिणां नारीनिबन्धनत्वं सामान्यतयाऽप्राप्तमिति तन्निषेधोऽप्रसक्तप्रतिषेधः स्यादिति **"न चाऽशननिबन्धनः"** इति पाठोऽत्र गृहीतोऽवगन्तव्यः।

हिन्दी– विद्यार्थी भोजन में विलम्ब करने वाला न हो, विद्यार्थी पर्याप्त और स्वादु भोजन के लिए ही कहीं ठहरने वाला न हो, विद्यार्थी गरुड की भाँति और हंस की भाँति सुदूर देश में भी विद्या के लिए पहुँचे॥२४॥

योऽहेरिव गणाद् भीतः सौहित्यान् नरकादिव।
राक्षसीभ्य इव स्त्रीभ्यः स विद्यामधिगच्छति॥२५॥

अन्वयः– यः गणात् अहेः इव भीतः (भवति), सौहित्यात् नरकात् इव (भीतः भवति), स्त्रीभ्यः राक्षसीभ्यः इव (भीतः भवति) सः विद्याम् अधिगच्छति।

शब्दार्थः– यः=आकाङ्क्षाबुद्धिविशेषविषयभूतो जनः, गणात्=जनसमूहविशेषात्, अहेः=सर्पात्, इव=यथा, भीतः=त्रस्तः, (भवति=जायते), सौहित्यात्=अतितृप्तिजनकाद् अतिभोजनात्, नरकात्=निरयात्, इव=यथा, (भीतः=त्रस्तः, भवति=जायते), स्त्रीभ्यः=नारीभ्यः, राक्षसीभ्यः=रक्षःस्त्रीभ्यः, इव=यथा, (भीतः=त्रस्तः, भवति=जायते), सः=आकाङ्क्षापूरणबुद्धिविषयो जनः, विद्याम्=विशिष्टज्ञानसंहतिम्, अधिगच्छति=प्राप्नोति।

सरलार्थः– यो जनसमूहविशेषरूपाद् गणात् सर्पादिव भीतो भवति, अतितृप्तिकरादतिभोजनान् नरकादिव भीतो भवति, स्त्रीभ्यो राक्षसीभ्य इव भीतो भवति स हि विद्यां प्राप्नोति।

विशेषः– स्मृतिचन्द्रिकायां वीरमित्रोदये बृहन्नारदीयपुराणे (१।५०।२३२) च "**सौहित्याद्**" इत्येव पाठः। तत्र "**योऽहेरिव गणाद्** भीतः" इत्येव च पाठः। ब्रह्मचारिणामतिभोजनं मनुस्मृतावपि (२।५७) निषिद्धमस्ति। तथा हि–

अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चाऽतिभोजनम्।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात् तत् परिवर्जयेत्॥ इति।

हिन्दी– जौन अध्येता जनसमूहविशेषरूप गण से सर्प से डरने की भाँति डरता है, अतिभोजन से नरक से डरने की भाँति डरता है, स्त्रियों से राक्षसी से डरने की भाँति डरता है, वह विद्या को प्राप्त करता है॥२५॥

न शठाः प्राप्नुवन्त्यर्थान् न क्लीबा न च मानिनः।
न च लोकरवाद् भीता न च श्वःश्वः प्रतीक्षकाः॥२६॥

अन्वयः– शठाः अर्थान् न प्राप्नुवन्ति, क्लीबाः (अर्थान्) न (प्राप्नुवन्ति), मानिनः च (अर्थान्) न (प्राप्नुवन्ति), लोकरवाद् भीताः च (अर्थान्) न (प्राप्नुवन्ति), श्वःश्वः प्रतीक्षकाः च (अर्थान्) न (प्राप्नुवन्ति)।

शब्दार्थः– शठाः=अग्रे प्रियवादिनः प्रियकारिणः पृष्ठे अप्रियवादिनः अप्रियकारिणश्च जनाः, अर्थान्=प्रयोजनानि, न=नैव, प्राप्नुवन्ति=अधिगच्छन्ति, क्लीबाः=पौरुषहीना जनाः, (अर्थान्=प्रयोजनानि), न=नैव, (प्राप्नुवन्ति=अधिगच्छन्ति), मानिनः=अतिमानवन्तो जनाः, च=अपि, (अर्थान्=प्रयोजनानि), न=नैव, (प्राप्नुवन्ति=अधिगच्छन्ति), लोकरवाद्=जनवादाद्, भीताः=त्रस्ताः जनाः, च=अपि, (अर्थान्=प्रयोजनानि), न=नैव, (प्राप्नुवन्ति=अधिगच्छन्ति), श्वःश्वः=प्रातःप्रातरिति, प्रतीक्षकाः=प्रतीक्षां कुर्वाणा जनाः, च=अपि, (अर्थान्=प्रयोजनानि), न=नैव, (प्राप्नुवन्ति=अधिगच्छन्ति)।

सरलार्थः– शठा जनाः प्रयोजनानि न प्राप्नुवन्ति, पौरुषहीना जनाश्च प्रयोजनानि न प्राप्नुवन्ति, अतिमानिनो जनाश्च प्रयोजनानि न प्राप्नुवन्ति, लोकवादाद् भीता जनाश्च प्रयोजनानि न प्राप्नुवन्ति, श्वः कर्तास्महे श्वः कर्तास्महे इति पुनःपुनः प्रतीक्षां कुर्वाणा जनाश्च प्रयोजनानि न प्राप्नुवन्ति।

विशेषः– शठत्वादीन् दोषान् परिहाय स्वाभीष्टविद्याप्राप्तये सदा यतनीयमिति भावः।

हिन्दी– धोखे वाज लोग अपने उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर सकते हैं, पौरुषहीन लोग भी अपने उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर सकते हैं, अति-अभिमानी लोग भी अपने उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर सकते हैं, सार्वजनिक अफवाह से डरने वाले लोग भी अपने प्रयोजन को प्राप्त नहीं कर सकते हैं, कल-कल कहकर प्रतीक्षा करने में ही लगने वाले लोग भी अपने प्रयोजन को प्राप्त नहीं कर सकते हैं॥२६॥

यथा खनन् खनित्रेण भूतले वारि विन्दति।
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति॥२७॥

अन्वयः– खनित्रेण खनन् (जनः) भूतले वारि यथा विन्दति, शुश्रूषुः (शिष्यः) गुरुगतां विद्यां तथा अधिगच्छति।

शब्दार्थः– खनित्रेण=खननोपकरेणेन कुद्दालादिना, खनन्=अवदारयन्, (जनः=मनुष्यः), भूतले=पृथिवीतले, वारि=जलम्, यथा=येन प्रकारेण, प्रयास-

विशेषेण, विन्दति=प्राप्नोति, शुश्रूषुः=विद्यां श्रोतुमतीवेच्छुः गुरुसेवापरः, (शिष्यः=छात्रः), गुरुगताम्=गुरौ स्थिताम्, विद्याम्=विशिष्टज्ञानसंहतिम्, तथा=तेनैव प्रकारेण, प्रयासविशेषेण, अधिगच्छति=प्राप्नोति।

सरलार्थः– खनित्रेण खनन् जनो भूतले जलं यथा प्राप्नोति शुश्रूषापरायणः शिष्योऽपि गुरौ स्थितां विद्यां तथैव प्रयासेन प्राप्तुं शक्नोति।

विशेषः– अयं श्लोकः मनुस्मृतौ (२।२१८) याज्ञवल्क्यशिक्षायां च स्वल्पेन पाठान्तरेण पठ्यते। एतस्मात् पद्यात् परं बृहन्नारदीयपुराणे (१।५०।२३५) **"गुरुशुश्रूषया विद्या पुष्कलेन धनेन वा। अथवा विद्यया विद्या ह्यन्यथा नोपपद्यते"** इति पद्यं दृश्यते।

हिन्दी– कुदाली प्रभृति खनन के उपकरण से भूमि को खोदता हुआ मनुष्य भूतल में जल को जैसे प्राप्त करता है, शुश्रूषापरायण शिष्य भी गुरु में स्थित विद्या को उसी प्रकार से प्रयास से प्राप्त कर सकता है॥२७॥

शुश्रूषारहिता विद्या यद्यपि मेधागुणैः समुपयाति।
वन्ध्येव यौवनवती न तस्य विद्या फलवती भवति॥२८॥

अन्वयः– यदि शुश्रूषारहिता अपि विद्या मेधागुणैः समुपयाति, (तथापि) तस्य विद्या वन्ध्या यौवनवती इव फलवती न भवति।

शब्दार्थः– यदि=चेत्, शुश्रूषारहिता=गुरुसेवारहिता, अपि=च, विद्या=विशिष्टज्ञानसंहतिः, मेधागुणैः=बुद्धिविशेषगुणैः, समुपयाति=आगच्छति, (तथापि=तदपि), तस्य=शुश्रूषारहितस्य जनस्य, विद्या=विशिष्टज्ञानसंहतिः, वन्ध्या=अवकेशिनी, यौवनवती=युवती, इव=यथा, फलवती=प्रसववती, न=नैव, भवति=सम्पद्यते।

सरलार्थः– यदि गुरुसेवां विनाऽपि कस्य चिद् मेधागुणप्रभावाद् विद्या आगच्छंति, तथापि तस्य गुरुसेवाहीनस्य विद्या वन्ध्या युवतिरिव फलवती न भवति।

विशेषः– विद्यायाः प्राप्तये त्रय उपाया याज्ञवल्क्यशिक्षायामुक्ताः। तथा हि–

गुरुशुश्रूषया विद्या पुष्कलेन धनेन वा।
अथवा विद्यया विद्या चतुर्थं नोपलभ्यते॥ इति।

स्मृतिचन्द्रिकायां संस्कारकाण्डे वेदाध्ययनविधिप्रकरणे तु अयं श्लोको नारदीयवचनत्वेनैव धृतोऽस्ति।

एते विद्यायाः प्राप्तौ उपायाः स्कन्दपुराणे आवन्त्यखण्डे (३।२०९।१७) चोक्ताः। तथा हि–

गुरुशुश्रूषया विद्या पुष्कलेन धनेन वा।
अथवा विद्यया विद्या भवतीह फलप्रदा॥ इति।

संहितोपनिषद्ब्राह्मणे तु षड् विद्यादानपात्राणि प्रतिपादितानि सन्ति। तथा हि–

ब्रह्मचारी धनदायी मेधावी श्रोत्रियः प्रियः।
विद्यया वा विद्यां यः प्राह तानि तीर्थानि षण् मम॥ इति।

मनुस्मृतौ तु (२।१०९) दश अध्याप्या उक्ताः। तथा हि–

आचार्यपुत्रः शुश्रूषुर् ज्ञानदो धार्मिकः शुचिः।
आप्तः शक्तोऽर्थदः साधुः स्वोऽध्याप्या दश धर्मतः॥ इति।

तथापि गुरुसमादरपरस्यैव विद्याया विशेषेण फलप्रदत्वं यास्कमुनिधृता (२।१।४) ऋग् अभावमुखेन प्रदर्शयति। तथा हि–

अध्यापिता ये गुरुं नाद्रियन्ते विप्रा वाचा मनसा कर्मणा वा।
यथैव ते न गुरोर् भोजनीयास् तथैव तान् न भुनक्ति श्रुतं तत्॥ इति।

शुश्रूषारहिता विद्येत्यादिकं पद्यमिदं याज्ञवल्क्यशिक्षायां च स्वल्पेन पाठभेदेन पठ्यते।

हिन्दी– यदि गुरुसेवा के विना भी किसी को अत्यधिक मेधागुण के बल से विद्या आ जाती है तथापि गुरुसेवारहित उस व्यक्ति की विद्या बाँझ युवती की भाँति ही फलप्रद नहीं होती है॥२८॥

गुरुशुश्रूषया विद्या पुष्कलेन धनेन वा।
अथवा विद्यया विद्या चतुर्थेन न लभ्यते॥२९॥

अन्वयः– विद्या गुरुशुश्रूषया (लभ्यते), (विद्या) पुष्कलेन धनेन वा (लभ्यते), अथवा विद्या विद्यया (लभ्यते), (विद्या) चतुर्थेन न लभ्यते।

शब्दार्थः– विद्या=विशिष्टज्ञानसंहतिः, गुरुशुश्रूषया=अध्यापकसेवया, (लभ्यते=प्राप्यते), (विद्या=विशिष्टज्ञानसंहतिः), पुष्कलेन=गुरुप्रसन्नतायै पर्याप्तेन, धनेन=वित्तेन, वा=अथवा, (लभ्यते=प्राप्यते), अथवा=वा, विद्या=विशिष्टज्ञानसंहतिः, विद्यया=स्वस्मिन् वर्तमानया विनिमये दीयमानया विशिष्टज्ञानसंहत्या, (लभ्यते=प्राप्यते), चतुर्थेन=उक्तेभ्यस् त्रिभ्य उपायेभ्यो भिन्नेन तुरीयेण उपायेन, न=नैव, लभ्यते=प्राप्यते।

सरलार्थः– विद्या गुरुसेवया प्राप्यते, विद्या गुरुप्रसन्नतायै पर्याप्तेन धनेन वा प्राप्यते, अथवा विद्या स्वस्मिन् वर्तमानया विनिमये दीयमानया विद्यया प्राप्यते, चतुर्थेनोपायेन विद्या न प्राप्यते।

विशेषः– एष श्लोकः सत्यव्रतसामश्रमिसंस्करणे, युगलकिशोरपाठकसम्पादिते रामप्रसादत्रिपाठिसम्पादितत्वेन पुनर्मुद्रिते याज्ञवल्क्यशिक्षादिशिक्षासङ्ग्रहे, दत्तात्रेयशास्त्रिसंस्करणे चाऽवर्तमानोऽपि पीताम्बरापीठसंस्कृतपरिषत्संस्करणे तु वर्तते। देवण्णभट्टकृतायां स्मृतिचन्द्रिकायां संस्कारकाण्डे उपनयनसंस्कारनिरूपणे वेदाध्ययनविधिप्रकरणे, वीरमित्रोदये च तस्मिन्नेव प्रकरणेऽयं श्लोको नारदवचनत्वेनैव धृतोऽस्ति। तत्र सर्वत्र "**चतुर्थं नोपलभ्यते**" इत्येव चतुर्थपादपाठः। याज्ञवल्क्यशिक्षायामप्येवमेव पाठः। तथाऽप्यस्माभिरर्थसौष्ठवदृष्ट्या चतुर्थः पादः "**चतुर्थेन न लभ्यते**" इति पठितो बोध्यः, स्मृतिषु शब्दापेक्षयाऽर्थस्यैव प्राधान्यात्। एष श्लोको नारदीयशिक्षाया बृहन्नारदीयपुराणस्थे पाठेऽपि प्राप्यते इति तु पूर्वमेवोक्तम् (२।८।२७)। चतुर्थचरणपाठस्तु तत्र "**ह्यन्यथा नोपपद्यते**" इति वर्तते।

नारदीयशिक्षायामेतस्य श्लोकस्य सत्त्वेऽपि एतस्य श्लोकस्य सन्निवेशस् तु "**शुश्रूषारहिता विद्या**" इत्यादिकात् पद्याद् अनन्तरमेव कर्तुमुचितो भाति। अत एव पीताम्बरापीठसंस्कृतपरिषत्संस्करणे कण्डिकान्ते क्वाचित्कत्वेन स्थितोऽप्ययं श्लोकोऽस्माभिरत्र निवेशितो बोध्यः।

हिन्दी– विद्या गुरु की सेवा से पाई जाती है, अथवा विद्या गुरु को प्रसन्न करने के लिए पर्याप्त धन से पाई जाती है, अथवा विद्या अपने में वर्तमान और विनिमय में विद्या देने वाले को दी जाने वाली विद्या से पाई जाती है, इन तीन उपाय से भिन्न चतुर्थ उपाय से विद्या नहीं पाई जा सकती है ॥२९॥

द्यूतं पुस्तकवाच्यं च नाटकेषु च सक्तिका।
स्त्रियस् तन्द्रा च निद्रा च विद्याविघ्नकराणि षट् ॥३०॥

अन्वयः– द्यूतम् पुस्तकवाच्यम् च नाटकेषु सक्तिका च स्त्रियः तन्द्रा च निद्रा च (इति) षट् विद्याविघ्नकराणि (भवन्ति)।

शब्दार्थः– द्यूतम्=दुरोदरम्, पुस्तकवाच्यम्=पुराणादिकथापुस्तक-वाचनं व्यसनरूपम्, च=अपि, नाटकेषु=नाटकप्रकरणभाणादिषु अभिनेयार्थेषु काव्येषु, सक्तिका=आसक्तिः, च=अपि, स्त्रियः=नार्यः, तन्द्रा=प्रमीला, आलस्यं वा, च=अपि, निद्रा=स्वापः, च=अपि, (इति=एवम्), षट्=वेदाङ्गमितानि वस्तूनि, विद्याविघ्नकराणि=विशिष्टज्ञानसंहतेर् ग्रहणे धारणे वर्धने चाऽन्तरायस्य जनकानि, (भवन्ति=जायन्ते)।

सरलार्थः– द्यूतम्, पुराणादिपुस्तकवाचनम्, नाटकादिष्वासक्तिः, स्त्रीषु प्रवणता, तन्द्री, निद्रा चेति षड् वस्तूनि विद्याग्रहण-धारण-वर्धनविघ्नकराणि भवन्ति।

विशेषः– एतस्मिन् श्लोके देवण्णभट्टकृतायां स्मृतिचन्द्रिकायां संस्कारकाण्डे वेदाध्ययनविधिप्रकरणे "**द्यूतं पुस्तकशुश्रूषा**" इति, "**तन्द्री**" इति च पाठः। "**पुस्तकशुश्रूषा**" इत्यस्य पुस्तकानां श्रवणे इच्छेत्यर्थस् तत्राऽऽश्रितः, तन्द्री=आलस्यमित्युक्तम्। वीरमित्रोदये संस्कारप्रकाशे उपनयन-संस्कारनिरूपणप्रसङ्गे वेदाध्यनप्रकरणे त्वयं श्लोक एवं पठितः–

द्यूतं पुस्तकशुश्रूषा वाटिकासक्तिरेव च।
स्त्रियः प्रीतिश्च तन्द्री च विद्याविघ्नकराणि षट्॥ इति।

एतस्य व्याख्याने च तत्र "**नाटकासक्तिरित्यपि पाठः। द्यूतं प्रसिद्धम्। पुस्तकशुश्रूषा लिखनशोधनादिव्यसनम्। वाटिकासक्तिरारामविहारः। नाटकासक्तिरिति पाठे गीतनृत्याद्यासक्तिः। स्त्रियः स्त्रीव्यसनम्। प्रीतिः**

स्रक्चन्दनादौ। नन्द्र्यालस्यम्। एतानि व्यस्तानि समस्तानि विद्याविघ्नकराणि भवन्तीत्यर्थः" इत्युल्लिखितमस्ति (वाराणसीसंस्करणे, पृ. ५२६)।

विद्याविघ्नरूपा विद्यायाः शत्रवो विद्यार्थिनां दोषाश्चेत्यादयो विषया महाभारते उद्योगपर्वणि (चित्रशालासंस्करणे ४०।४-७) च प्रतिपादिताः सन्ति। तथा हि–

अशुश्रूषा त्वरा श्लाघा विद्यायाः शत्रवस् त्रयः।
आलस्यं मद-मोहौ च चापलं गोष्ठिरेव च॥
स्तब्धता चाऽभिमानित्वं तथाऽत्यागित्वमेव च।
एते वै सप्त दोषाः स्युः सदा विद्यार्थिनां मताः॥
सुखार्थिनः कुतो विद्या विद्यार्थिनि कुतः सुखम्।
सुखार्थी वा त्यजेद् विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम्॥ इति।

शुश्रूषाया माहात्म्यं च महाभारते सौप्तिकपर्वणि (५।५) प्रतिपादितम्। तथा हि–

शुश्रूषुस् त्वेव मेधावी पुरुषो नियतेन्द्रियः।
जानीयादागमान् सर्वान् ग्राह्यं च न विरोधयेत्॥ इति।

हिन्दी– जुआ, कथा-आख्यायिका-पुराणादिपुस्तकों का व्यसनरूप वाचन, नाटक-प्रकरण-भाण-प्रभृति अभिनेयार्थक काव्यों के पढने में अथवा प्रयोग देखने में आसक्ति, स्त्री में ज्यादा अनुराग, आलस्य, निद्रा ये छह पदार्थ विद्या के ग्रहण में धारण में और वर्धन में भी विघ्न करने वाले होते हैं॥२९॥

यथा व्याघ्री हरेत् पुत्रान् दंष्ट्राभिर् न च पीडयेत्।
भीता पतनभेदाभ्यां तद्वद् वर्णान् प्रयोजयेत्॥३१॥

अन्वयः– पतनभेदाभ्याम् भीता व्याघ्री पुत्रान् यथा दंष्ट्राभिः हरेत्, न च पीडयेत्, तद्वद् वर्णान् प्रयोजयेत्।

शब्दार्थः– पतन-भेदाभ्याम्=अधःपतनच्छेदाभ्याम्, भीता=त्रस्ता, व्याघ्री=शार्दूलस्त्री, पुत्रान्=शावकान्, यथा=येन प्रकारेण, दंष्ट्राभिः=दशनैः, हरेत्=वहेत्, न च=न तु, पीडयेत्=दुःखयेत्, तद्वत्=तेनैव प्रकारेण, वर्णान्=अकारादिकान् वर्णान्, प्रयोजयेत्=उच्चारयेत्।

सरलार्थः– शावको मुखात् पतेद् इति, शावकस्य चर्म छिद्रितं भवेत् इति च भीता व्याघ्री यथा सावधानतया समुचितेन करणप्रयोगेण शावकान् दंष्ट्राभिर् हरेत्, हरन्ती न च तान् दंष्ट्राभिः पीडयेत्, तथैव वर्णानामुच्चारयिताऽपि समुचितेन करणप्रयोगेण समुचितेन यत्नेन च वर्णान् उच्चारयेत्, करणस्याऽतिशिथिलेन प्रयोगेण वर्णान् अस्पष्टानपि न कुर्यात्, अतिदृढेन प्रयोगेण वर्णान् रूक्षानपि न कुर्यात्।

विशेषः– एतत् पद्यं याज्ञवल्क्यशिक्षा-चारायणीयशिक्षा-पाणिनीयशिक्षादिष्वपि प्राप्यते। एतस्मिन् पद्ये सुष्ठु वर्णोच्चारणं कथं कर्तव्यमिति वर्णितमस्ति। एतत् पद्यं शिक्षाशास्त्रस्य मुख्येषु षट्सु विषयेषु पञ्चमस्य विषयस्य साम्नः प्रतिपादने प्रवृत्तं वेदितव्यम्।

हिन्दी– बच्चे के पतन और छेदन से डरती हुई व्याघ्री जैसे अपने छोटेछोटे बच्चों को अपने दाढों से हल्के रूप में पकडकर इधर उधर ले जाती है, दाढों से उन को पीडित नहीं करती है, उसी प्रकार से वर्णों के उच्चारण करने वालों को भी करणों को, ज्यादा शिथिल रूप में भी नहीं, ज्यादा दृढ रूप में भी नहीं, समुचित रूप में प्रयुक्त कर के वर्णों को उच्चरित करना चाहिए।

विशेष– यह पद्य याज्ञवल्क्यशिक्षा, चारायणीयशिक्षा, माण्डूकीयशिक्षा इत्त्यादि अन्य शिक्षाग्रन्थों में भी पाया जाता है। इस पद्य में शिक्षा के वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम, सन्तान इन छह मुख्य विषयों में पञ्चम विषय साम का प्रतिपादन हुआ है॥३१॥

एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या नाऽव्यक्ता न च पीडिताः।
सम्यग्वर्णप्रयोगेण ब्रह्मलोके महीयते॥३२॥

अन्वयः– एवम् वर्णाः प्रयोक्तव्याः, अव्यक्ता (वर्णाः) न (प्रयोक्तव्याः), पीडिताः च (वर्णाः) न (प्रयोक्तव्याः)। सम्यग्वर्णप्रयोगेण (प्रयोक्ता) ब्रह्मलोके महीयते।

शब्दार्थः– एवम्=एतेन प्रकारेण, वर्णाः=अकारादयो वर्णाः, प्रयोक्तव्याः=उच्चारणीयाः, अव्यक्ताः=अस्फुटाः, (वर्णाः=अकारादयो वर्णाः), न=नैव, (प्रयोक्तव्याः=उच्चारणीयाः), पीडिताः=परुषीकृताः, च=अपि, (वर्णाः=अका-

रादयो वर्णाः), न=नैव, (प्रयोक्तव्याः=उच्चारणीयाः)। सम्यग्वर्णप्रयोगेण=सुष्ठुवर्णोच्चारणेन, (प्रयोक्ता=उच्चारयिता), ब्रह्मलोके=परमेष्ठिभुवने (ब्राह्मणसमाजे वा), महीयते=पूज्यते।

सरलार्थः– उपरिवर्णितेन प्रकारेण अकारादयो वर्णा वेदमन्त्रस्य गुणने नित्याध्ययने जपे प्रवचने याज्ञप्रयोगे च उच्चारणीयाः, (शिथिलकरणप्रयोगेण) अव्यक्ता वर्णा नोच्चारणीयाः, (अतिदृढकरणप्रयोगेण) परुषीकृता वर्णा अपि नोच्चारणीयाः। सुष्ठु वर्णोच्चारणेन उच्चारयिता ब्रह्मलोके ब्राह्मणसमाजे वाऽपि सत्कार्यो भवति।

हिन्दी – उपरिवर्णित प्रकार से वर्णों का उच्चारण करना चाहिए। वर्णों का अस्पष्ट उच्चारण नहीं करना चाहिए। वर्णों का कठोर (परुष) उच्चारण भी नहीं करना चाहिए। वर्णों के समीचीन उच्चारण से उच्चारणकर्ता ब्रह्मलोक में (अथवा ब्राह्मणसमाज में) सत्कृत होता है ॥३२॥

॥ इति द्वितीये प्रपाठके अष्टमी कण्डिका॥

इति श्रीगुरुमुखोच्चारणानूच्चारणरूपा-ऽध्ययनसमवाप्त-स्वशाखारूपाऽऽदित्यब्रह्मसम्प्रदायाऽऽगत-माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेदशाखा-मन्त्रब्रह्मयज्ञसंहिता-ब्राह्मण-कल्पसूत्रेण श्रुतिस्मृतिपुराणादि-पारायण-परायणेना-ऽवलोकित-नानाधर्मशास्त्रनिबन्धेन कौण्डिन्न्यायनाऽऽचार्येण वासिष्ठ-मैत्रावरुण-कौण्डिन्न्येति-त्रिप्रवरेण भारतवर्षस्थ-हिमवत्खण्डाऽन्तर्गत-गण्डकीप्रदेशाभिजनेन शिवराजशर्मणा द्विजोत्तमेन कृतायां शिक्षाविवेचन्याख्यायां नारदीयशिक्षाव्याख्यायां

द्वितीयः प्रपाठकः समाप्तः॥

॥ सम्पूर्णा च शिक्षाविवेचन्याख्यव्याख्यया युता नारायण्याख्य-हिन्दीव्याख्यासहिता नारदीयशिक्षा ॥

१. नारदीयशिक्षा-गद्यपद्यसूत्रानुक्रमणिका

२. नारदीयशिक्षा-विशिष्ट-शब्दाऽनुक्रमणिका

३. शिक्षाशास्त्रसम्बद्धाः के चन पारिभाषिकाः शब्दाः सव्याख्याः

अक्षरम्– "**अक्षरं न क्षरति न क्षीयते वा, अक्षरं भवति, वाचोऽक्ष इति वा**" इति निरुक्तपरिशिष्टे (१।१३)। "**अक्षरं न क्षरं विद्यादश्नोतेर्वा सरोऽक्षरम्**" इति पाणिनीयव्याकरणभाष्ये द्वितीयाह्निकान्ते। एतच्च वर्णनित्यत्ववादिमतेनोक्तं बोध्यम्। एतद् व्याख्यानं तत्रैव द्रष्टव्यम्। अक्षरशब्दार्थस्तु "**सव्यञ्जनः साऽनुस्वारः शुद्धो वाऽपि स्वरोऽक्षरम्**" इति ऋग्वेदप्रातिशाख्ये (१८।३२) प्रतिपादितो बोध्यः। शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्ये च "**स्वरोऽक्षरम्, सहाऽऽद्यैर्व्यञ्जनैः, उत्तरैश्चाऽवसितैः**" इत्युक्तम् (१।९९-१०१)। एतस्मिन्नर्थे अक्षरशब्दः "**अग्निरेकाक्षरेण**" इत्यादौ (मा.सं.९।३१-) यजुर्वेदेषु बहुशः प्रयुक्तो दृश्यते। "**वर्णं वाऽऽहुः पूर्वसूत्रे**" इति पाणिनीयव्याकरणभाष्ये वचनाद् वर्णवाची चाऽक्षरशब्दः। अत एव वर्णसमाम्नाय इति वक्तव्ये अक्षरसमाम्नाय इति प्रयोगोऽपि उपलभ्यते।

अनुदात्तः– उदात्तस्वरविपरीतः स्वरः, "**उदात्तविपरीतः, अधस्ताद् गृहीतः**" इति पाणिनीयशिक्षा-पञ्जिकायाम् (श्लो. ११)। "**यदा तु मन्दः प्रयत्नो भवति गात्रस्य स्रंसनं कण्ठबिलस्य महत्त्वं स्वरस्य च वायोर्मन्दगतित्वात् स्निग्धता भवति तमनुदात्तमाचक्षते**" इति आपिशलीयशिक्षासूत्रेऽन्तिमप्रकरणे।

अनुनासिकः– मुखेन नासिकया च सम्भूयोच्चार्यो वर्णः। नासिकामनुगतः। अनुनासिकानां वर्णानामुच्चारणे वर्णजनकवायोर्नासिकामार्गेणाऽपि निस्सरणेन तत्राऽपि ध्वनिविशेषस्य जननात् नासिकया चोच्चार्यत्वं बोध्यम्। "**नासिकाविवरणादानुनासिक्यम्**" इति तैत्तिरीयप्रातिशाख्ये (२।५२)। अकारादयः स्वरा निरनुनासिका अनुनासिकाश्च भवन्ति। ङ-ञ-ण-न-मा नित्यमनुनासिकाः। य-व-ला अपि निरनुनासिका अनुनासिकाश्च भवन्ति। "**मुख-नासिकावचनोऽनुनासिकः**" इति पाणिनिः (१।१।८)।

अनुस्वारः– विशेषेण नासिकयोच्चार्यो वर्णविशेषः। वेदेषु मात्रिको द्विमात्रश्च। लोके तु अर्धमात्रकः। "**स्वरमनु भवतीत्यनुस्वारः, अनु अकारानुगमेनाऽनुस्वारः**" इति पाणिनीयशिक्षा-पञ्जिकायाम् (श्लो.४–५)। "**स्वारमनु भवतीत्यनुस्वारः**" इति पाणिनीयशिक्षा-प्रकाशव्याख्यायाम् (श्लो. ४–५)। "**अनुस्वर्यते पश्चार्धे स्वरवदुच्चार्यते इत्यनुस्वारः**" इति पारिशिक्षाटीकायां याजुषभूषणे चक्रः, तैत्तिरीय प्रातिशाख्यव्याख्याने वैदिकाभरणे (१।१८) गार्ग्यगोपालयज्वा च। "**स्वरमनु**

संलीनं शब्द्यते इत्यनुस्वारः" इति कातन्त्रवृत्तौ (१।१।१९), **"स्वरवर्णा एव स्वाराः, अनुगतः स्वारानिति अनुस्वारः"** इति वाचस्पत्ये।

अन्तस्था– अन्तःस्थ इति अन्तःस्था इति च क्वचिद् दृश्यते। वस्तुतस्तु 'अन्तस्था' इत्येवाऽस्य शब्दस्य स्वरूपं बोध्यम्। एष शब्द ऐतरेय्यारण्यक-ऋग्वेद-प्रातिशाख्यादिषु ग्रन्थेषु बाहुल्येन स्त्रियां प्रयुक्तः, अन्यत्र क्वचित् पुंस्यपि प्रयुक्तः। जिह्वामध्यप्रभृतीनां करणानामन्ते तिष्ठन्तीत्यन्तस्थाः य र ल वाः। यत् तु उव्वट-ह्विट्नि-सिद्धेश्वरवर्म-यालेन-सोमनाथादिभिः **"स्पर्शोष्मणामन्तर्मध्ये तिष्ठन्तीति अन्तःस्थाः"** (ऋग्प्राति.व्या.१।९) इत्याद्युक्तम्, तन् नाऽतिरमणीयम्, यथाऽन्येषां वर्णानां तदुच्चारणवैशिष्ट्यसूचकं नाम स्पर्शा इति ऊष्माण इति तथैवैतासामपि उच्चारणवैशिष्ट्यसूचकत्वेनैव नाम व्यवहृतं स्यादिति। उक्तञ्च तैत्तिरीयप्रातिशाख्यव्याख्याकारेण वैदिकाभरणे गार्ग्यगोपालयज्वना– **"निर्वचनं तु जिह्वामध्यप्रभृतीनां करणानामन्तैर्जन्यत्वाद् यरलवा अन्तस्था इत्याख्यायन्ते"** इति (१।८), **"यकारादीनां चतुर्णां करणान्तव्यापारनिष्पाद्यत्वादन्तस्था इत्याख्या"** इति च (२।४३)। **"स्वस्य-स्वस्य स्थानस्यान्ते तिष्ठन्तीत्यन्तस्थाः"** इति कातन्त्रव्याकरणटीकायामिति संस्कृतव्याकरणशब्दकोशे।

अयोगवाहः– स्वपूर्ववर्तिनः स्वरस्यैवाङ्गत्वेन प्रयुज्यमाना वर्णविशेषा अयोगवाहा उच्यन्ते। तत्र अयोगवाहानां मध्ये प्रधानयोरनुस्वारविसर्गयोर्ब्राह्म-वर्णसमाम्नाये अकारस्य योगेनोपदिष्टत्वात् तयोः अ-योगेन वहतः स्वरूपं निर्वहत इति अयोगवाहौ इति व्यवहारः। स्वपूर्ववर्तिस्वरमात्राङ्गत्वरूपेण तत्सादृश्येन चाऽन्येषामपि अयोगवाहत्वेन व्यवहारः। अथवा योगपर-वशतया योगस्य (स्वाश्रयस्वरस्य) पूर्वतः परतो वा संलग्नाः सन्तो वहन्तो वर्णाः कादयो योगवाहाः, तद्भिन्ना योगस्य परत एव संलग्नाः सन्तो वहन्तोऽनुस्वारादयो वर्णा अयोगवाहाः। **"न विद्यते योगः संयोगो वर्णान्तरेण येषां ते अयोगवाहाः"** इति पाणिनीयशिक्षापञ्जिकायाम् (श्लो. २२)। पाणिनीयव्याकरण-भाष्यकारेण तु पाणिनीयाक्षरसमाम्नायमात्रविचारेण अयोगवाहशब्दस्य **"कथं पुनरयोगवाहाः, यदयुक्ता वहन्ति अनुपदिष्टाश्च श्रूयन्ते"** इति व्युत्पत्तिः प्रदर्शिता (हयवरडिति सूत्रे षष्ठवार्त्तिकावतरणिकायाम्)। उव्वटेन शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्यभाष्ये **"अकारादिना वर्णसमाम्नायेन सहिताः सन्त एते वहन्त्यात्मलाभं प्राप्नुवन्तीत्ययोगवाहाः"** इत्युक्तम् (८।१८), तत् तु अयोगवाहोच्चारण-

वैशिष्ट्यस्य स्पष्टीकरणाय नाऽलमित्युपेक्षणीयम्। अयोगवाहशब्दः शुक्लयजुर्वेद-प्रातिशाख्ये (८।१८), ऋक्तन्त्रे (१।२), पाणिनीयव्याकरणवार्तिकभाष्ययोः (हयवरट् इत्यस्य विचारणे) प्रयुक्तो दृश्यते।

आस्यम्– ओष्ठात् प्रभृति प्राक् काकलकात् स्थितम् मुखकुहरम्। **"अस्यन्ति वर्णाननेनेति आस्यम्"** इति पाणिनीयव्याकरणभाष्ये (१।१।९)। आस्य-मस्यतेः, आ स्यन्दत एतदन्नम् इति वा" इति निरुक्ते (१।३।४)।

उदात्तः– उत् आत्तः उदात्तः। उच्चः स्वरः। **"यदा सर्वाङ्गानुसारी प्रयत्नस्तीव्रो भवति तदा गात्रस्य निग्रहः, कण्ठबिलस्य चाऽणुत्वम्, स्वरस्य च वायोस्तीव्रगतित्वाद् रौक्ष्यं भवति तमुदात्तमाचक्षते"** इति आपिशलीय-शिक्षासूत्रेऽन्तिमप्रकरणे। पाणिनीयस्य **"उच्चैरुदात्तः"** इति सूत्रस्य व्याख्याने काशिकाकारसिद्धान्तकौमुदीकारादिभिः प्रचारितस्य भ्रमस्य निराकरणम्, उक्तसूत्रस्य भाष्यानुकूलं व्याख्यानं च कौण्डिन्न्यायनशिक्षयां कृतं द्रष्टव्यम् (पृ. ३१७–३२४)।

उपध्मा– उपध्मानीयः। उपध्मानीयस्यार्थे **"उपध्मा"** इति शब्दश्च पाणिनीय-शिक्षायां प्रयुक्तो दृश्यते (श्लो. १४)। एवमेव शैशिरीयशिक्षायाम् (श्लो. ९२), नारदीयशिक्षायाम् (२।५।५), माण्डूकीयशिक्षायां च (श्लो. १०८)।

उपध्मानीयः– **"उश्च पश्च ध्मायेते अनेन, तत्र भव इति योगेन उपध्मानीय-स्यौष्ठ्यत्वम्"** इति लघुशब्देन्दुशेखरे। एवञ्च उपध्मानम् ओष्ठः उपध्माने भव उपध्मानीयः ओष्ठ्यः इति सर्वेऽपि ओष्ठ्यवर्णा योगेन उपध्मानीया वक्तुं शक्याः, तथापि रूढ्या उपध्मानीयशब्दः प-फ-परके विसर्जनीयविशेषे एव प्रवर्तते। **"उपध्मानशब्द ओष्ठवचनः"** इति वाचस्पत्ये वर्णशब्दे ४८५२ तमे पृष्ठे। **"उपध्मानीय उपध्मानेन जन्यत्वात्"** इति तैत्तिरीयप्रातिशाख्यव्याख्याने वैदिकाभरणे (१।१८) गार्ग्यगोपालयज्वा।**"उरस उपध्मानोद्भव उपध्मानीयः"** इति सोमनाथेनोक्तन्तूपेक्ष्यम्।

उपांशु– **"करणवदशब्दममनःप्रयोगमुपांशु"** इति तैत्तिरीयप्रातिशाख्ये (२३।६), **"यत् समीपस्थोऽपि परो न शृणोति तदुपांशु"** इति मनुस्मृतिव्याख्यायां कुल्लूकभट्टः (२।८५)। **"शनैरुच्चारयेन् मन्त्रमीषदोष्ठौ प्रचालयेत्। किञ्चिच्छ्रवणयोग्यः स्यादुपांशुः स जपः स्मृतः"** इति वाचस्पत्ये हारीतः। **"यस्मिनन्मन्द्रादयो न**

विज्ज्ञायन्ते नस्स्वरो नव्व्यञ्ञनङ् केवलमेवोष्ठचालनं श्वासो वा तदुपांशु" इति हौत्रिके पञ्चमाध्यायान्ते कात्त्यायनः।

ऊष्मा– शषसहेष्वन्यतमो वर्णः। विसर्गोऽपि ऊष्मशब्दप्रयोगः पाणिनीयशिक्षादिषु (श्लो.१४) दृश्यते। "**ऊष्मा वायुः, तत्प्रधाना वर्णा ऊष्माणः**" इति ऋग्वेद-प्रातिशाख्यभाष्ये उव्वटः (१।१०)। "**शादय ऊष्माणः**" इत्यापिशलीय-शिक्षासूत्रे। "**शषसहा ऊष्माणः**" इति न्यासे पदमञ्जर्यां च (१।१।९)। "**शल ऊष्माणः**" इति सिद्धान्तकौमुद्याम्। "**ह, श, ष, स, अः, ≍क, ≍प, अं**" इति अष्टौ ऊष्माण उदाहृता ऋग्वेदप्रातिशाख्यभाष्ये (१।१०)। "**निर्वचनं तु ऊष्माख्यबाह्यप्रयत्न-योगादूष्माण इत्याख्या न तु सा प्रथमद्वितीयादिषु रूढ्यभावात्**" इति "**परे षडूष्माणः**" इति तैत्तिरीयप्रातिशाख्यव्याख्याने वैदिकाभरणे (१।९)।

करणम्– वर्णाभिव्यक्तौ स्थानविशेषे वायोः प्रतिघातस्य जनने साधकतमं जिह्वामूलमध्योपाग्राग्रादिकं साधनं करणमुच्यते। "**स्वराणां यत्रोपसंहारस् तत् स्थानम्, यदुपसंहरति तत् करणम्, अन्येषां तु यत्र स्पर्शस् तत् स्थानम्, येन स्पर्शयति तत् करणम्**" इति तैत्तिरीयप्रातिशाख्ये (२।३१-३४)। "**येन निर्वर्त्यते तत् करणम्**" इति प्रक्रमप्रकरणे आपिशलीयशिक्षासूत्रे। एतद्-विषयेऽधिकं ज्ञातुमिच्छुकैः कौण्डिन्न्यायनशिक्षाया बलाध्याये करणाधिकारो द्रष्टव्यः (पृ.५०६-५१६)।

जिह्वामूलीयः– जिह्वामूले भवो वर्णः। "**जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः**" (अष्टा.४।३।६८) इति पाणिनिना व्याख्यातः। यद्यपि कवर्गीया वर्णा अपि जिह्वामूले एव भवन्ति तथापि रूढ्या विसर्गविशेषे एव जिह्वामूलीयशब्दप्रवृत्तिः। तदुक्तं निरुक्ते– "**पश्यामः समानकर्मणां नामधेयप्रतिलम्भमेकेषां नैकेषां यथा तक्षा परिव्राजको जीवनो भूमिज इति**" इति (१।४।३)।

तारः– उच्चः स्वरविशेषः। ऋग्वेदप्रातिशाख्यम् (१३।४२), तैत्तिरीयप्रातिशाख्यं च (२३।१२) द्रष्टव्यम्। कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां सामाध्याये वाचःस्थानभेदानां निरूपणे एतस्मिन् विषये सर्वेषां शिक्षाग्रन्थानां वचनानि सङ्गृहीतानि द्रष्टव्यानि (पृ.५६५–५६६)।

दीर्घः– द्विगुणितमात्रः स्वरः। "**मात्रा ह्रस्वः, द्वे दीर्घः, तिस्रः प्लुत उच्यते स्वरः**" इति ऋग्वेदप्रातिशाख्ये (१।२७–३०), "**द्विस्तावान् दीर्घः**" इति शुक्लयजुर्वेद-प्रातिशाख्ये (१।५७), तैत्तिरीयप्रातिशाख्ये च (१३५)। अत्र विस्तरः कौण्डिन्न्यायन-

शिक्षायां द्रष्टव्यः (पृ.४४७–४५०)। **"दीर्घं द्राघतेः"** इति निरुक्ते (२।५।२) यास्कः। **"दृणातीति दीर्घम्, बाहुलकाद् घक्"** इति अमरकोषव्याख्या-सुधायां भानुजी-दीक्षितः।

दुस्स्पृष्टः– **"दुस्स्पृष्ट ईषत्स्पृष्टः"** इति पाणिनीय-शिक्षाप्रकाशव्याख्यायाम् (श्लो.५), पाणिनीयशिक्षाप्रदीपे च (श्लो.५)। **"दुस्स्पृष्टं तु प्राग् घकाराच् चतुर्णाम्"** इति ऋग्वेदप्रातिशाख्ये (१३।१०), **"दुस्स्पृष्टमन्तस्थानाम्"** इति ऋक्तन्त्रे (१।३) च ईषत्स्पृष्टपर्यायवाचितया दुस्स्पृष्टशब्दप्रयोगो दृश्यते। द्विःस्पृष्ट-पर्यायतयाऽपि दुस्स्पृष्टशब्दप्रयोगो दृश्यते, तथा हि जिह्वामूलतालु-स्थानकतया द्विःस्पृष्टयोः **"जिह्वामूलं तालु चाऽऽचार्य आह स्थानं डकारस्य तु वेदमित्रः। द्वयोश्चाऽस्य स्वरयोर्मध्यमेत्य सम्पद्यते स डकारो डकारः॥ ढकारतामेति स एव चाऽस्य ढकारः सन्नूष्मणा सम्प्रयुक्तः। इडा साढा चाऽत्र निदर्शनानि वीड्वङ्गमित्येत-दवग्रहेण"** इति ऋग्वेदप्रातिशाख्ये (१।५१, ५२) प्रतिपादितयोर् डढयोः प्रयत्नस्य प्रतिपादने दुस्स्पृष्टशब्दस्य प्रयोगो **"दुस्स्पृष्टश्चेति विज्ञेयो डढयोः स्वरमध्ययोः"** इति शैशिरीयशिक्षायाम् (श्लो.७), शौनकीयशिक्षायां च (श्लो.१०) च। वर्णरत्नप्रदीपिकायां शिक्षायां तु एतस्मिन्नर्थे द्विःस्पृष्टशब्दस्य प्रयोगो दृश्यते **"द्विःस्पृष्टता च विज्ञेया डढयोः स्वरमध्ययोः। पदकाले वियुज्येत द्विःस्पृष्टो न भवेत् तदा"** इति (श्लो.१५-१६)।

नादः– कण्ठबिलस्य (स्वरयन्त्रमुखस्य) अणुभावेन स्वरतन्त्रीझङ्कारे जातं श्वासस्य गुञ्जितं ध्वनेरनुरणनं वा नादः। **"यदा कण्ठबिलं संवृतं भवति तदा नादो जायते"** इति आपिशलीयशिक्षासूत्रे। **"वायुः प्राणः कोष्ठ्यमनुप्रदानं कण्ठस्य खे विवृते संवृते वा। आपद्यते श्वासतां नादतां वा वक्त्रींहायामुभयं वाऽन्तरोभौ"** इति ऋग्वेदप्रातिशाख्ये (१३।१-२)। **"संवृते कण्ठे नादः क्रियते विवृते श्वासः"** इति तैत्तिरीयप्रातिशाख्येऽपि (२।४,५)।

नासिक्यः– नासिकास्थानो वर्णः। रूढ्या तु हुँ इति सङ्केत्यं यमसदृशं नासिक्याख्यं वर्णं नासिक्यशब्दः प्रतिपादयति। तथा हि **"हुँ इति नासिक्यः"** इति शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्ये (८।२३)। **"सानुनासिक्यो हकारः"** इति त्रिभाष्यरत्ने (२१।१४)। **"नासिक्यो वर्णः"**. इति पाणिनीयव्याकरणभाष्ये (६।१।६३)। एतद्विषयको विस्तरः कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां वर्णाध्याये वर्णविशेषविवेचनाधिकारे नासिक्य-विवेके द्रष्टव्यः (पृ.२४६–२४८)।

पार्षदम्– तत्तच्छाखाध्यायिवैदिकविद्वत्परिषदा निर्णीतस्य वेदोच्चारणसिद्धान्तस्य प्रतिपादकं शास्त्रम्, प्रातिशाख्यापरपर्यायम्। "**पदप्रकृतीनि सर्वचरणानां पार्षदानि**" इति निरुक्ते (१।६।१) यास्कः। "**पार्षदकृतिरेषा तत्र भवताम्**" इति पाणिनीयव्याकरणभाष्ये (ए ओङ् ऐ औच् इत्यत्र, वा.४) १।१।४८, वा.३) पतञ्जलिः। "**शास्त्रविशेषाध्यायिनां समवायः परिषत् पर्षद् वा तत्र भवा कृतिः**" इति उद्योते (ए ओङ् ऐ औच् इत्यत्र, वा.४) नागोजिभट्टः।

प्रातिशाख्यम्– "**शाखायांशाखायां प्रतिशाखम्, प्रतिशाखं भवं प्रातिशाख्यम्**" (द्र.- अष्टा.२।१।६, ४।३।५६, माधवीयधातुवृत्तौ १।९०)। तत्तच्छाखासम्बद्धं वर्ण-स्वर-मात्रा-बल-साम-सन्तानप्रतिपादकं शास्त्रम्। प्रातिशाख्यानां शिक्षा-ग्रन्थत्वं तेषां विवरणं च कौण्डिन्न्यायनशिक्षाया उपबन्धे प्रतिपादितं द्रष्टव्यम् (पृ.१०–३०)।

प्लुतः– प्लवनं प्राप्तस् त्रिगुणितमात्रः स्वरः। क्वचिच् चतुर्मात्रोऽपि स्वरः प्लुत इष्यते। प्लुतविवरणं कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां द्रष्टव्यम् (पृ.४४४–४५०)। "**ह्रस्वं द्विमात्रासंयुक्तं प्लुतमाहुर्मनीषिणः। दीर्घं तु मात्रासंयोगाद् वृद्धमित्यभिधीयते**" इति मात्रालक्षणग्रन्थे, चारायणीयशिक्षायां च।

मन्द्रः– मधुरगम्भीरः स्वरः। मन्द्रशब्दो मन्देरौणादिकेन स्फायितञ्चीत्यादिसूत्रेण (२।१३) प्रोक्तेन रक्प्रत्ययेन व्युत्पादितः। "**मन्द्रं मन्दनं मोदनं वा**" इति यास्काभिप्रायः (६।५।१)।

मात्रा– परिमाणविशेषः। "**मात्रा ह्रस्वः**" इति ऋग्वेदप्रातिशाख्ये (१।२७)। "**अमात्र-स्वरो ह्रस्वः, मात्रा च**" इति शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्ये (१।५५,५६)। "**रूपम् अ-इ-उ-ऋ-ऌनाम् पूर्णं लघुतमं च यत्। सा मात्रा तन्मितः कालो भक्त्या मात्रेति कीर्त्यते**" इति कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां मात्राध्यायारम्भे। तद्विस्तरस्तत्रैव द्रष्टव्यः (पृ.४४२–४४३)। "**मात्रा मानात्**" इति यास्कः (४।४।४)।

यमः– यम्यन्ते मुखभवश्रुतियमनेन निर्वर्त्यन्ते इति यमा वर्णविशेषाः। "**यच्छन्तीति यमाः, स्वयमेवोपरमेरन्, के ते यमाः, लोके कुं खुं गुं घुं इति**" इति पञ्जिकायाम् (श्लो.४–५) "**श्रुतिर्वा न मुख्या (मुखभवा)ऽस्ति समान-काला**" इति ऋग्वेद-प्रातिशाख्ये (६।३३)। यमलवर्णत्वं यमत्वमिति ह्विट्नि-सिद्धेश्वरवर्म-यालेन-सोमनाथसिरदेल-विधातृमिश्रादिधारणा तु वस्तुस्थिति-प्रतिकूला यमवर्णोच्चारण-गतवैशिष्ट्यसूचनहीनेति हेयैव। सिद्धान्त-कौमुदीस्थे यमानां व्याख्याने उदाहरणे

च स्थितो दोषोऽस्मत्कृतपाणिनीयशिक्षा-व्याख्यायां चतुर्थपञ्चमपद्यव्याख्यानं दृष्ट्वा ज्ञातव्यः। अधिकं कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां द्रष्टव्यम् (पृ. २३४–२३५)। **"यमो यच्छतीति सतः"** इति यास्कः (१०।२।६)।

योगवाहः– योगेन स्वपूर्वस्थेन स्वोत्तरस्थेन वा स्वरेण युक्ता वहन्ति व्यवहारं निर्वर्तयन्तीति योगवाहाः ककारादयो हकारान्ता व्यञ्जनवर्णाः। ऋक्तन्त्रे हि एतस्मिन्नर्थे योगवाहशब्दस्य प्रयोगो दृश्यते (१।२)।

रक्तः– अनुनासिकः स्वरः।

रङ्गः– नासिकास्थाने एवोच्चारणीयः पूर्वस्वरप्रान्तभागे ऐकारे इकार इव औकारे उकार इव च संलग्नो वेदेषु उपलभ्यमानो वर्णः। तदुच्चारणप्रकारः पाणिनीयशिक्षायां चतुर्भिः पद्यैः प्रतिपादितः (श्लो. २६–२९)। नारदीयशिक्षायां च रङ्गवर्णो विस्तरेण प्रतिपादितोऽस्ति (२।४।६-१०)। तन्निरूपणं कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां वर्णाध्याये रङ्गविवेके द्रष्टव्यम् (पृ. २२१-२३०)। रज्यतेऽस्मिन्निति रङ्गः।

वर्णः– मनुष्यस्य वाण्याः पृथक्प्रयत्नजाभ्यां भागाभ्यां तादृशैर् भागैर्वाऽपि रहितः स्वतन्त्रेण यत्नेन निर्वर्त्यः शब्दविशेषो वर्णः। **"पृथक्प्रयत्ननिर्वर्त्यं हि वर्णमिच्छन्त्याचार्याः"** इति काशिकायाम् (ऐ औच् इत्यत्र)। **"येनैव यत्नेनैको वर्ण उच्चार्यते विच्छिन्ने वर्णे उपसंहृत्य तमन्यमुपादाय द्वितीयः प्रयुज्यते तथा तृतीयस्तथा चतुर्थः"** इति पाणिनीयव्याकरणभाष्ये (१।४।१०९)। वर्णयन्ति चित्रयन्ति स्वरूपविशेषं प्रापयन्ति ध्वनिमिति वर्णा अकारादयः ककारादयश्च। **"वर्णो वृणोतेः"** इति यास्कः (२।१।३), पाणिनीयशिक्षापञ्जिकाकारश्च (श्लो. ३)। ध्वनेः स्वरूपविशेषो हि वर्णः, **"प्रजापतेर्व्वर्ण्णः"** (मा.सं. ४।२६, तै.सं. १।२।४।७, २।४।११।६, २।५।१।३,४; २।५।८।१,४) इत्यादिषु प्रयोगेषु वस्तुविशेषस्य स्वरूपविशेषे वर्णशब्दस्य वेदेषु प्रयोगस्य दर्शनात्। वर्णशब्दोऽक्षरार्थेऽपि **"तानि शुक्राण्यभ्यतपत् तेभ्योऽभितप्तेभ्यस् त्रयो वर्णा अजायन्ताऽकार उकारो मकार इति, तानेकधा समभरत् तदेतदोमिति"** इति ऐतरेयिब्राह्मणे (२५।७), "यावन्मात्रमुल्बणं तावद् ब्रूयादृचं वाऽर्धर्चं वा पादं वा पदं वा वर्णं वेति ह स्माऽऽह जातूकर्ण्यः" इति शाङ्खायनब्राह्मणे च (२६।५) प्रयुक्तो दृश्यते। गोपथब्राह्मणे (१।१।१६, १।१।२४-२७), तैत्तिरीयारण्यके (७।२) च अक्षरार्थकवर्णशब्दप्रयोगः प्रसिद्धः। यत् तु केन चित् **"लेखे कृष्णादिवर्णैरभिव्यज्यमानतयाऽकारादिरेखासङ्केता वर्णाः, तदभेदादुच्चार्य-माणा अकारादयोऽपि वर्णा उच्यन्ते"** इत्युक्तम्, तन् मन्दम्, अलेख्यायामपि श्रुतौ वर्णशब्दप्रयोगस्य दर्शनात्।

वर्णसमाम्नायः– वर्णसमुदायोपदेशः, अक्षरसमाम्नायः।

विवृत्तिः– विशेषेण वृत्तिः विवृत्तिः। पदान्ते पदमध्ये वा स्थिते स्वरपरके स्वरे स्थानकरणविमोक्षसहितो विरामो विवृत्तिः। "**विवेकेन पृथग्भावेन वर्तते इति विवृत्तिः**" इति नारदीयशिक्षाव्याख्यायां भट्टशोभाकरः (२।४।१)। अधिकं कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षायां सामाध्याये विवृत्तिरूपविरामनिरूपणे द्रष्टव्यम् (पृ.५७८–५८२)।

विसर्गः– "**विविधं सृज्यते इति विसर्गः**" इति पाणिनीय-शिक्षाप्रकाशव्याख्यायाम् (श्लो.४–५), "**विविधं सृज्यते क्षिप्यते इति विसर्गः**" इति पाणिनीयशिक्षा-पञ्जिकायाम् (श्लो.४–५)। "**विसृज्यते पुनर्वर्णैर्न संयुज्यते इति विसर्गः**" इति कातन्त्र-व्याकरणवृत्तौ दुर्गसिंहः (१।१।१६) इति संस्कृतव्याकरणशब्दकोशे। श्वासस्य विनाऽवरोधं बहिर्विसर्जनेनोच्चारणीयश् श्वासमयो वर्णविशेषो हि विसर्गः। विसृज्यते विनाऽवरोधं श्वासरूपेण बहिर्निष्काल्यते इति विसर्ग इति बोध्यम्। विसर्गोच्चारणप्रकारनिदर्शनानि कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षायां द्रष्टव्यानि (पृ.२६१)।

विसर्जनीयः– विसर्ग एव विसर्जनीय इति अभिनिष्टान इति विसृष्ट इति चोच्यते। पाणिनिना विसर्जनीयशब्द एव प्रयुक्तः सर्वत्र (अष्टा.८।३।१५,३४,३५,५८)। अभिनिष्टानशब्दसाधुत्वान्वाख्यानाय च पाणिनिना स्वतन्त्रम् महत् सूत्रं रचितम् "**अभिनिसः स्तनः शब्दसंज्ञायाम्**" (८।३।८६) इति।

वृत्तिः– येन वर्तनेन (गतिविशेषेण) वाग् वर्तते सा वृत्तिः। वृत्तिश्च त्रिधा द्रुता मध्या विलम्बितेति। नारदीयशिक्षायामपि वृत्तीनामुपयोगाः प्रतिपादिताः सन्ति (१।६।२०)। तासां स्वरूपविशेषा उपयोगविशेषाश्च कौण्डिन्न्यायन-शिक्क्षायां प्रतिपादिता द्रष्टव्याः (पृ.५६१–५६५)।

व्यञ्जनम्– स्वरात् प्राक् पश्चाद् वा गत्वा स्वरेण सहाऽक्षराङ्गत्वं गच्छन्तो वर्णा व्यञ्जनानि। "**न पुनरन्तरेणाऽचं व्यञ्जनस्योच्चारणमपि भवति, अन्वर्थं खल्वपि निर्वचनं स्वयं राजन्त इति स्वरा अन्वग् भवतीति व्यञ्जनम्**" इति पाणिनीयव्याकरणभाष्ये पतञ्जलिः (१।२।२९–३०)। "**अथवा गतिरपि व्यञ्जेरर्थः। विविधं गच्छन्त्यजुपरागवशादिति व्यञ्जनम्। उपरागश्च पूर्वपराच्सन्निधानेऽपि परेणाचा भवति न पूर्वेण**" इति तत्र कय्यटः। नागोजि-

भट्टेनाऽपि तदेव समर्थितम्। किन्तु व्यञ्जनस्य पूर्वस्वराङ्गताया अपि दर्शनात् तयोरुक्तिस्तदंशेऽबोधमूलिकैव दृश्यते। **"व्यञ्जयन्ति प्रकटान् कुर्वन्त्यर्थानिति व्यञ्जनम्"** इति ऋग्वेदप्रातिशाख्यव्याख्याने उव्वटोक्तिश्च (१।६) न समीचीना व्यञ्जनानामुच्चारणगतवैशिष्ट्यस्य प्रतिपादनेऽक्षमत्वात्।

शिक्षा – वर्ण-स्वर-मात्रा-स्थानकरणप्रयत्नानुप्रदानरूपबल-साम-सन्तानादिप्रतिपादकं शास्त्रम्। तदुक्तं कौण्डिन्न्यायनशिक्षायाम्– **"वर्णानां च स्वराणां च मात्राया बलसाम्ययोः। पदान्ताद्योः संहिताया विचारो यत्र लभ्यते॥ तत्सम्बद्धाश्चाऽपरेऽपि विषया यत्र वर्णिताः। भवन्ति सा हि प्रथमा विद्या शिक्षेति भाषिता"** इति उपक्रमाध्यायारम्भे। **"शिक्षा शिक्ष्यतेऽनयेति वर्णाद्युच्चारणलक्षणम्"** इति तैत्तिरीयोपनिषद्व्याख्याने शङ्करभगवत्पादः। **"वर्णानां स्थानकरणप्रयत्नादिभिर्निष्पत्तिनिर्णयिनी शिक्षाऽऽपिशलीयादिका"** इति काव्यमीमांसायां द्वितीयेऽध्याये राजशेखरः। **"शीक्षा वर्णानां स्थानप्रयत्नादिकमध्ययनकाले कर्मणि च मन्त्राणामुच्चारणप्रकारं शिक्षयतीति, पृषोदरादित्वाद् दीर्घः"** इत्यापस्तम्बधर्मसूत्रव्याख्याने हरदत्तः (२।४।२।११)। **"वर्णस्वराद्युचारणप्रकारो यत्रोपदिश्यते सा शिक्षा"** इति ऋग्वेदभाष्यभूमिकायां सायणः। **"शिक्ष्यतेऽनया वर्णोच्चारणमिति शिक्षा"** इति पाणिनीयशिक्षापञ्जिकायाम् (श्लो.५)। **"शिक्षा स्वरवर्णोच्चारकं शास्त्रम्"** इति, **"शिक्ष्यतेऽनया बालेभ्यो ह्रस्वदीर्घप्लुतोदात्तानुदात्तस्वरितोरःकण्ठशिरोजिह्वामूलदन्तनासौष्ठस्थानानि (सा शिक्षा)"** इति च पाणिनीयशिक्षाप्रकाशव्याख्यायाम् (श्लो.१)। **"शिक्ष्यन्ते मन्त्रब्राह्मणस्वरूपं सम्यगनयोः पाठाश्चेति शिक्षा। शिक्ष विद्योपादाने इति धातोरप्रत्यये रूपम्"** इति नारदीयशिक्षाविवरणे भट्टशोभाकरः। **"स्वरतः कालतः स्थानात् प्रयत्नाऽनुप्रदानतः। सवनाद्यैश्च सा शिक्षा वर्णानां पाठशिक्षणात्"** इति शुक्रनीतिसारे (४।२८१)। अन्येषामपि विचारकाणां शिक्षापरिभाषा अत्रैव ग्रन्थे भूमिकायां शिक्षापरिचयप्रकरणे द्रष्टव्याः।

संहिता – वर्णयोः परः सन्निकर्षः (पदयोः परः सन्निकर्षो वा)।

सन्तानः – संहिता। तैत्तिरीयारण्यके (७।२) उक्तेषु शिक्षायाः षट्सु मुख्येषु विषयेषु षष्ठो विषयः।

सन्धिः – संहिता (=वर्णयोर् वर्णलोपागमविकारप्रकृतिभावान्यतमफलकः परः सन्निकर्षः)।

साम – अतिद्रुतत्वादिदोषशून्यं माधुर्यादिगुणयुतं लययुक्तमुच्चारणम्। "**साम वर्णानां मध्यमवृत्त्योच्चारणं समता**" इति तैत्तिरीयोपनिषदः शिक्षावल्ल्या व्याख्याने शङ्करभगवत्पादः। "**सामशब्देन साम्यमुक्तम्। अतिद्रुतातिविलम्बितगीत्यादि-दोषराहित्येन माधुर्यादिगुणयुक्तत्वेनोच्चारणं साम्यम्**" इति ऋग्वेदव्याख्या-भूमिकायां सायणः। एतच्च तैत्तिरीयारण्यके (७।२) उक्तेषु शिक्षायाः प्रतिपाद्येषु मुख्येषु षट्सु विषयेषु पञ्चमो विषयः।

स्थानम् – तिष्ठन्त्यस्मिन्निति स्थानम्। फुस्फुसान् निर्गतः प्राणो यान् देशान् प्रतिहत्य वर्णीभवति ते देशा वर्णानां स्थानान्युच्यन्ते। "**स्वराणां यत्रो-पसंहारस् तत् स्थानम्, अन्येषां तु यत्र स्पर्शनं तत् स्थानम्**" इति तैत्तिरीयप्रातिशाख्ये (२।३१,३३)। "**इह यत्र स्थाने वर्णा उपलभ्यन्ते ···· तत् स्थानम्**" इत्यापिशलीयशिक्षासूत्रे। "**अधिकरणं वर्णानां स्थानशब्देनोच्यते**" इति ऋग्वेदप्रातिशाख्य-भाष्ये उव्वटः (१।४९)। "**यदुपक्रम्यते तत् स्थानम्**" इति शौनकीय-चतुरध्यायिकाभाष्यकारः (१।१८)।

स्पर्शः – येषां वर्णानामुच्चारणे जिह्वामूलमध्योपाग्रादिकं करणं तत्तद्वर्ण-सम्बद्धे स्थाने सम्यग् लग्नं भवति ते कादयो वर्णाः स्पर्शा इत्युच्यन्ते। "**जिह्वामूल-तालुमूर्धदन्तोष्ठादिभिः परस्परं स्पर्शैरभिनिष्पत्याऽऽविर्भवन्तीति स्पर्शाः**" इति पाणिनीयशिक्षापञ्जिकायाम् (श्लो. ४–५)। "**स्पृष्टप्रयत्नजन्यत्वात् स्पर्शा इत्या-ख्यायन्ते**" इति तैत्तिरीयप्रातिशाख्यव्याख्याने वैदिकाभरणे (१।७) गार्ग्यगोपाल-यज्वा। "**रूढ्यभावान् नाऽन्तस्थानां स्पर्शत्वव्यवहारः**" इति च तत्रैव।

स्पृष्टम् – वर्णोच्चारणे तत्तत्स्थाने तत्तत्करणेन स्पर्शनं स्पृष्टम्। "**तत्र ध्वनावुत्पद्यमाने यदा स्थानकरणप्रयत्नाः परस्परं स्पृशन्ति सा स्पृष्टता**" इति आपिशलीय-शिक्षासूत्रे। "**नाभिप्रदेशात् प्रयत्नप्रेरितो वायुः प्राणो नाम ऊर्ध्वमाक्रमन् नुरःप्रभृतीनि स्थानान्याहन्ति, ततो वर्णस्य तदभिव्यञ्जक-ध्वनेर्वोत्पत्तिः, तत्रोत्पत्तेः प्राग् यदा जिह्वाग्रोपाग्रमध्यमूलानि तत्तद्वर्णो-त्पत्तिस्थानन् ताल्वादि सम्यक् स्पृशन्ति तदा स्पृष्टता, ईषद् यदा स्पृशन्ति तदा ईषत्स्पृष्टता, समीपावस्थानमात्रे संवृतता, दूरत्वे विवृतता, अत एव इचुयशानां तालव्यत्वाविशेषेऽपि तालुस्थानेन सह जिह्वाग्रादीनां चवर्गोच्चारणे कर्तव्ये सम्यक् स्पर्शः, यकारे ईषत् स्पर्शः, शकारेकारयोस्तु दूरे-ऽवस्यितिरित्यादि**

अनुभवं शिक्षाकारोक्तिं चाऽनुसृत्य विवेचनीयम्" इति शब्दकौस्तुभे (१।१।९) भट्टोजिदीक्षितोऽपि।

स्वरः– **"स्वृ शब्दोपतापयोः, स्वर्यते शब्द्यतेऽनेन व्यञ्जनमिति करणेऽच्प्रत्ययः"** इति पाणिनीयशिक्षापञ्जिकायाम् (श्लो.४–५), **"स्वर्यतेः शब्दार्थस्य करणेऽच्"** इति पाणिनीयशिक्षाप्रकाशव्याख्यायाम् (श्लो.४–५), **"स्वयं राजन्त इति स्वराः"** इति पाणिनीय-व्याकरणभाष्ये (१।२।२९–३०)। **"स्वर्यन्ते शब्द्यन्त इति स्वराः"** इति ऋग्वेदप्रातिशाख्यभाष्ये (१।३), **"स्वयं राजन्ते नान्येन व्यज्यन्त इति स्वराः"** इति तैत्तिरीयप्रातिशाख्यव्याख्याने (१।५)। स्वरपरिभाषा तत्समीक्षा च कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां वर्णाध्याये वर्णवर्गीकरणाधिकारे द्रष्टव्या (पृ.२८५-२८७)।

स्वरभक्तिः– स्वरभागः। **"स्वरभक्तिः स्वरप्रकारः"** इत्युव्वटः (ऋग्वेदप्रातिशाख्य-व्याख्याने १।३२)।

स्वरितः– **"स्वरतीति स्वरित आक्षेपनिष्पाद्यो य उदात्तानुदात्तविकारः"** इति पाणिनीयशिक्षा-पञ्जिकायाम् (श्लो.११), **"स्वर्यते पार्श्वत उत्क्षिप्यते इति स्वरितः"** इति तैत्तिरीयप्रातिशाख्यव्याख्याने वैदिकाभरणे (१।४०)। स्वरित-स्वरूपभेदा-दिविवेचनं कौण्डिन्न्यायनशिक्षायां स्वराध्याये स्वरितनिरूपणे द्रष्टव्यम् (पृ.३२५–३५०)।

ह्रस्वः– **"ह्रसति ह्रस्यते वा ह्रस शब्दे उल्बादिः (उणादौ ४।९५)"** इति (२।६।४६) **"ह्रसति ह्रस शब्दे बाहुलकाद् वः"** इति च अमरसिंह-कृतनामलिङ्गानुशासन-व्याख्याने (३।१।७०) भानुजिदीक्षितः। **"ह्रस्वो ह्रसतेः"** इति निरुक्ते (३।३।१) यास्कः। **"मात्रा ह्रस्वः"** इति ऋग्वेदप्रातिशाख्ये (१।२७)। **"अमात्रस्वरो ह्रस्वः, मात्रा च"** इति शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्ये (१।५५,५६), **"ऋकारल्कारौ ह्रस्वौ, अकारश्च, तेन च समानकालः स्वरः"** इति तैत्तिरीयप्रातिशाख्ये (१।३१-३३)॥

४. आधारग्रन्थाः सहायकग्रन्थाश्च

१. **अथर्ववेदः** (शौनकिशाखारूपः), विश्वबन्धुना सम्पादितः, विश्वेश्वरानन्द-वैदिकशोधसंस्थान-होसियारपुर-पञ्जाब, १९६० सन्।

२. **आत्रेयशिक्षा**, अमुद्रिता अपूर्णा च, विश्वेश्वरानन्द-विश्वबन्धु-भारत-भारत्यनुशीलनसंस्थान, होशियारपुर, हस्तलिखितग्रन्थसंख्या ४३७१; (अन्या आत्रेयशिक्षा ह्याम्बर्गनगरे २९४ श्लोकात्मिका पूर्णा च प्राप्यते इति वेदलक्षणग्रन्थविवरणे परमेश्वर ऐतालः।)

३. **आपस्तम्बधर्मसूत्रम्**, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आपिस, वाराणसी, १९६९ सन्।

४. **आपिशलशिक्षा** (शिक्षासूत्राणि), अजमेरम्, २०२४।

५. **ऋक्तन्त्रम्**, दिल्ली, १९७० सन्।

६. **ऋग्वेदसंहिता**, वैदिक-संशोधन-मण्डल, पुणे, महाराष्ट्र, १९७२ सन्।

७. **ऋग्वेदप्रातिशाख्यम्**, वाराणसी, १९७० सन्।

८. **कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षा**, स्वाद्ध्यायशाला, च २/४१९, सरस्वतीमार्ग, लाजिम्पाट्, काठमाण्डु–२, नेपाल, फोन नं. ००९७७-१-४३३३२७; २०४९ वै.।

९. **कौहलीयशिक्षा**, कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षानुबन्धेषु मुद्रिता।

१०. **गौतमीयशिक्षा**, शिक्षासङ्ग्रहः, वाराणसी, १८८९-१८९३ सन्।

११. **चरणव्यूहसूत्रम्**, शौनककृतम्, वाराणसी, १९३८ सन्।

१२. **चारायणीयशिक्षा**, कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षानुबन्धेषु मुद्रिता।

१३. **छन्दश्शास्त्रम्**, पुनर्मुद्रितम्, दिल्ली १९८१ सन्।

१४. **छन्दस्सूत्रभाष्यम्**, श्रीयादवप्रकाशकृतम्, दि एसियाटिकसोसाइटी, कलकत्ता, १९७७ सन्।

१५. **तैत्तिरीयप्रातिशाख्यम्**, मैसूर १९०६ सन्।

१६. **तैत्तिरीयारण्यकम्**, आनन्दाश्रमः, पुण्यपत्तनम्, १९६७ सन्।

१७. **तैत्तिरीयोपनिषत्** (शङ्करभगवत्पादादिव्याख्यासहिता)।

१८. **दन्त्योष्ठविधिः**, लवपुरम् (लाहौर), १९७७ वै.।

१९. **नाट्यशास्त्रम्**, अभिनवभारतीसहितम्, चतुर्थो भागः, परिमलपब्लिकेसन्स, दिल्ली, १९८४ सन्।

२०. **नारदीयशिक्षा**, शिक्षासङ्ग्रहः, वाराणसी १८८९-१८९३ सन्।

२१. **नारदीयशिक्षा**, सामश्रमीत्युपनाम-श्रीसत्यव्रतशर्मणा सम्पादिता, कलिकाता, संवत् १९४७ (१८९० सन्)।

२२. **नारदीयशिक्षा** (भाषाटीकासमेता), पण्डितदत्तात्रेयशास्त्रिणा प्रकाशिता, गान्धर्वमहाविद्यालय, लाहौर सन् १९०९ (संवत् १९६६)।

२३. **नारदीयशिक्षा**, दतिया, मध्यप्रदेश, २०२१।

२४. **नारदीयशिक्षा**, भट्टशोभाकरव्याख्यायुता, आङ्लभाषानुवादेन टिप्पणीभिश्च सहिता, भाण्डारकर-प्राच्यविद्या-संशोधन-मन्दिर-प्रकाशिता, पुण्यपत्तनम् (पुणे), १९८६ सन्।

२५. **निरुक्तम्**, यास्ककृतम्, दुर्गाचार्यकृतवृत्तिसमेतम्, आनन्दाश्रम, पुणे, महाराष्ट्र, १९२१ सन्।

२६. **पञ्चविधसूत्र-मात्रालक्षणे**, बे.रामचन्द्रशर्मा, केन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठम्, तिरुपति, १९७० सन्।

२७. **पथ्या स्वस्ति**, राजस्थानप्राच्यविद्याप्रतिष्ठान, जोधपुर, १९६९ सन्।

२८. **पाणिनीयव्याकरणभाष्यम्**, प्रदीपोद्योतसहितम्, दिल्ली, १९६७ सन्।

२९. **पाणिनीयशिक्षा**, सज्जनलालप्रकाशिता, वाराणसी, १८५० सन्।

३०. **पाणिनीयशिक्षा**, वेबरसम्पादिता, जर्मनि, १८५८ सन्।

३१. **पाणिनीयशिक्षा**, भाष्येण सहिता, बेचनरामत्रिपाठिपरिशोधिता, वाराणसी, १८८७ सन्।

३२. **पाणिनीयशिक्षा**, शिक्षासङ्ग्रहः, वाराणसी १८८९- १८९३ सन्।

३३. **पाणिनीयशिक्षादिसङ्ग्रहः**, कनकलालशर्ममैथिलसंशोधितः, वाराणसी, १९२३ सन्।

३४. **पाणिनीयशिक्षा**, शिक्षादिवेदषडङ्ग में संलग्न, निर्णयसागर प्रेस, १९०९, १९३४ सन्।

३५. **पाणिनीयशिक्षा**, प. नारायणदत्त (नृसिंह) त्रिपाठी, वाराणसी, १९९० वै.।

३६. **पाणिनीयशिक्षा**, प. कालीप्रसादमिश्र, वाराणसी, १९९० वै.।

३७. **पाणिनीयशिक्षा**, प्रदीपसहिता, प. रुद्रप्रताप अवस्थी, वाराणसी, १९४७ सन्।

३८. **पाणिनीयशिक्षा**, प. गुरुप्रसादशास्त्री, वाराणसी, २००५ वै.।

३९. **पाणिनीयशिक्षा**, आचार्य-कौण्डिन्न्यायनकृत-वेदाङ्गशिक्षाविमर्शाख्यव्याख्या-सहिता, चौखम्बाविद्याभवनप्रकाशिता, वाराणसी, १९९८ सन्।

४०. **पारिशिक्षा**, कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षानुबन्धेषु मुद्रिता।

४१. **पुष्पसूत्रम्**, १-२ प्रपाठकौ, शेणईकुलोत्पन्न-बी.आर. शर्मा, नेपाल रिसर्च सेण्टर्, नेपाल, संवत् २०२६।

४२. **प्रतिज्ञासूत्रम्**, शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्यपरिशिष्टतया मुद्रितम्, वाराणसी, १८८८ सन्।

४३. **प्रातिशाख्यप्रदीपशिक्षा**, शिक्षासङ्ग्रहः, वाराणसी, १८८९-१८९३ सन्।

४४. **भरत का संगीत सिद्धान्त**, कैलासचन्द्रदेव बृहस्पति, सूचना-विभाग, उत्तरप्रदेश, १९५९ सन्।

४५. **भारतीय संगीत का इतिहास**, शरच्चन्द्र-श्रीधर-परांजपे, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९८५ सन्।

४६. **माण्डूकीयशिक्षा**, भगवद्दत्तसम्पादिता, लाहौर, १९२१ सन्।

४७. **माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेद-शतपथब्राह्मणम्**, सायणव्याख्या-सहितम्, खेमराज-श्रीकृष्णदास, मुम्बयी, संवत् १९९७।

४८. **माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेद-संहिता**, उव्वट-महीधर-व्याख्या-सहिता, मोतीलाल-बनारसीदास, दिल्ली, १९७१ सन्।

४९. **मुण्डकोपनिषत्**, शङ्करकृतव्याख्यासहिता, मोतीलाल-बनारसीदास, दिल्ली, १९६४ सन्।

५०. **याज्ञवल्क्यशिक्षा**, शिक्षावल्लीसहिता, वाराणसी, २०१९ वै.।

५१. **लघुऋक्तन्त्रसङ्ग्रहः**, लाहौर , १९४० सन्।

५२. **लोमशीयशिक्षा**, शिक्षासङ्ग्रहः, वाराणसी, १८८९-१८९३ सन्।

५३. **वर्णरत्नप्रदीपिका शिक्षा**, शिक्षासङ्ग्रहः, वाराणसी, पुनर्मुद्रित, १९८९ सन्।
५४. **वीरमित्रोदयः**, मित्रमिश्रः, चौखम्बा-संस्कृत-सीरीज़-आफिस, वाराणसी।
५५. **व्यासशिक्षा**, वाराणसी, १९७६ सन्।
५६. **शब्दकौस्तुभः** (नवाह्निकभागः), नेपाली-सौभाग्य-पुस्तकालय, काशी।
५७. **शम्भुशिक्षा**, अमुद्रिता, सरस्वतीविहार-पुस्तकालय, हौजखास, नई दिल्ली।
५८. **शिक्षाप्रकाशव्याख्या** (पाणिनीयशिक्षाव्याख्या), शिक्षासङ्ग्रहः, वाराणसी, पुनर्मुद्रित, १९८९ सन्।
५९ **शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्यम्**, युगलकिशोरपाठकसम्पादितम्, वाराणसी, १८८८ सन्।
६०. **शैशिरीयशिक्षा**, कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षानुबन्धेषु मुद्रिता।
६१. **शौनकीयशिक्षा**, व्याख्यासहिता, के. के. दिवाकर द्विजेन्द्र, त्रिपुणित्तुर, केरल, १९६२ सन्।
६२. **श्री(बृहन्)नारदीयमहापुराणम्**, नागपब्लिसर्स, दिल्ली १९८४ सन्।
६३. **श्रीमज्जैमिनिप्रणीतं मीमांसादर्शनम्**, शाबरभाष्यतन्त्रवार्तिकसहितम्, आनन्दाश्रम, पुणे, १९७० सन्।
६४. **संस्कृतवाङ्मयकोषः**, श्रीधर भास्कर वर्णेकर, भारतीयभाषापरिषद्, कोलकाता, १९८८ सन्।
६५. **सङ्गीतरत्नाकरः**, शार्ङ्गदेवकृतः, कल्लिनाथकृत-व्याख्यासहितः, आनन्दाश्रम, पुणे, महाराष्ट्र, १९८५ सन्।
६६. **सम्प्रदायप्रबोधिनी शिक्षा**, प. गोपालचन्द्र मिश्र, वाराणसी (१९६४ सन्)।
६७. **सर्वसम्मतशिक्षा**, कौण्डिन्न्यायनशिक्क्षानुबन्धेषु मुद्रिता।
६८. **सामतन्त्रम्**, ए.एम्. रामनाथदीक्षितः, बनारस-हिन्दू-विश्वविद्यालय, वाराणसी, १९६१ सन्।
६९. **सामप्रातिशाख्यसंग्रहः**, म. रामनाथदीक्षितः, कालटि, १९७८ सन्।
७०. **सामवेद** (अर्थ व स्पष्टीकरणसहित), श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, पारडी।

७१. सामवेदपूर्वार्चिकः, पदपाठश्च, म.रामनाथदीक्षितः, १९७८ सन्।
७२. सुश्रुतसंहिता, मुम्बई, १९३१ सन्।
७३. स्तोभभाष्यम्- अक्षरतन्त्रम्, म.रामनाथदीक्षितः मद्रास-१८, १९८४ सन्।
७४. स्मृतिचन्द्रिका, देवण्णभट्टकृता, नागप्रकाशक, दिल्ली, १९८८ सन्।
73. Critical Studies in the Phonetic Observations of Indian Grammarians, by Dr. Siddheswar Varma, London 1929, Delhi 1961.
74. Sanskrit Historical Phonology, by Franklin Edgerton, U.S.A., 1946.
75. Phonetics In Ancient India, by W.S. Allen, London, 1953.
76. A Critical Study of Sanskrit Phonetics, by Dr. Vidhata Mishra, Varanasi, 1972.
77. A Dictionary of Sanskrit Grammar, Kashinath Vasudev Abhyankar & J. M. Shukla; Baroda, 1977.
78. Vedalaksana, Vedic Ancillary Literature (A Descriptive Bibliography), K. Parameswara Aithal, Motilal Banarsidass, Delhi, 1993; (Heidelberg, 1991).

वैदिक-ग्रन्थाः

- **अथर्ववेदसंहिता** । 'सायणभाष्य' तथा पं. रामस्वरूप गौड़ कृत हिन्दी भाषानुवाद सहित ।
- **अर्थर्ववेद-संहिता** । मूलमात्र
- **ऋग्वेदसंहिता** । पदपाठ, सायणाचार्य कृत भाष्य एवं हिन्दी व्याख्या सहित । (1-9 भाग सम्पूर्ण)
- **ऋग्वेद संहिता** । मूलमात्र
- **पुरुषसूक्तभाष्य-संग्रह** । डॉ. शिवशंकर अवस्थी
- **याज्ञवल्क्यशिक्षा** । 'शान्ति' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या द्वयोपेता । व्याख्याकार— डॉ. नरेश झा
- **वेदाङ्गेतिहासः** । (शिक्षा-कल्प-व्याकरण-निरुक्त-छन्द-ज्योतिष-वेदाङ्गानि) । डॉ. नरेश झा
- **(शुक्ल) यजुर्वेदसहिंता** । मूलमात्र
- **शुक्लयजुर्वेदसंहिता** । पदपाठ-उव्वट-महीधरभाष्यसंवलित 'तत्त्वबोधिनी' हिन्दी व्याख्या सहित । डॉ. रामकृष्णशास्त्री
- **शुक्लयजुर्वेदीरुद्राष्टाध्यायी** । हिन्दी टीका । डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी
- **शुक्लयजुर्विधानसूत्र** । श्रीकात्यायनमहर्षि प्रणीतं । श्रीकालनाथप्रणीत यजुर्मञ्जर्याख्य व्याख्याकृत शुक्लयजुर्माध्यन्दिनसहित स्वाहाकार प्रयोग प्रदीपः सहितम् ।
- **सम्प्रदाय-प्रबोधिनी शिक्षा** । (शुक्लयजुर्वेदीय माध्यन्दिनी शाखा) किशोर मिश्र
- **सामवेदसंहिता** । 'सायणभाष्य' तथा पं. रामस्वरूप शर्मा 'गौड़' कृत हिन्दी भाषानुवाद सहित
- **सामवेदसंहिता** । मूलमात्र
- **गोपथब्राह्मणम्** । क्षेमकरण त्रिवेदी कृत हिन्दी भाष्य सहित । सम्पा. प्रज्ञादेवी
- **ताण्ड्यमहाब्राह्मणम्** । सायणाचार्यकृत भाष्य सहित । सम्पा. आनन्दचन्द्रवेदान्तवागीश (1-2 भाग)
- **तैत्तरीय-संहिता** । (कृष्णयजुर्वेदीय) । मूलमात्र